ओंकार सिद्धि

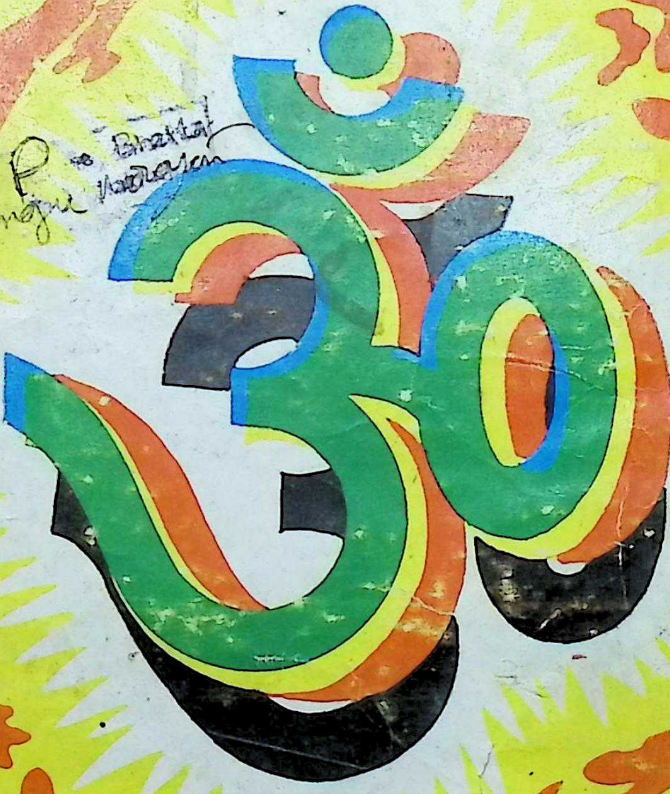

विषय-सूची

—❀—

१. ओंकार-स्तुति ९
२. ओंकार-महिमा १२
३. वेदों में ओंकार १६
४. ब्राह्मण ग्रन्थों में ओंकार १९

शतपथ, गोपथ, ताण्ड्यव, एतरेय ब्राह्मणों के उद्धरणों सहित।

५. उपनिषदों में ओंकार २५

छान्दोग्य, मुण्डक, माण्डूक्य, प्रश्न कंठ, तैत्तरीय, प्रणव अथर्वशिर, ध्यानविन्दु, ब्रह्म, ब्रह्म विद्या, नादबिन्दु, नारद परिव्राजक, अक्षय, शुक, रहस्य, मैत्रायणी, आत्मबोध, योगचूड़ामणि, योग तत्व, अमृत नाद, ब्रह्मबिन्दु, जाबाल दर्शन, शाण्डिल्य, मण्डल ब्राह्मण, रुद्र हृदय, नृसिंह, पूर्व-तापिनी, क्षुरिक, नारायण, अक्षमालिका, उपनिषदों में विभिन्न दृष्टियों से महत्व प्रतिपादन।

६. गीता में ओंकार ६९
७. योग ग्रन्थों में ओंकार ७४
८. पुराणों में ओंकार ७९

भागवत, लिङ्ग, शिव, वायु, मार्कण्डेय, भविष्य और पद्म पुराण में वर्णित महिमा सहित।

Laxmi Pd. Bhalla
Changu 8, Bhaktapur

अपनाया हुआ है। स्वामी राम का कहना है कि ईसाई धर्म और इस्लाम में 'ओ३म्' आमीन के रूप में उपस्थित है। कुछ लोगों का यह भी अनुमान है कि बाईबल में ईश्वर ने जहाँ यह कहा है कि मेरा नाम 'I am' है। यह 'ओम्' की ओर ही संकेत करता है। तिब्बत व कुछ अन्य बौद्ध देशों में 'ओ३म् मणिपद में ओम्' मन्त्र का जप किया जाता है। जैन धर्म में भी ओंकार का सम्मान है उनकी दृष्टि में पद्म-बीज अक्षर है। कबीर व चरणदास आदि संत इसका गायन करते थे। सिख सम्प्रदाय में गुरु ग्रन्थ साहब की पवित्र वाणी में 'ओंकार सतनाम'. 'ओंकार वेद निर्बल' आदि का उल्लेख आया है। हिन्दू धर्म में वेद, उपनिषद्, दर्शन स्मृतियों, पुराणों, तन्त्रों, ब्राह्मणों और गीता आदि सभी शास्त्रों में ओंकार की महान शक्ति का प्रतिपादन करते हुए उपासना की ओर प्रेरित किया है। हिन्दू धर्म में जितने भी उच्चकोटि के ऋषि महर्षि हुए हैं, उन्होंने इसी महामन्त्र द्वारा अपनी शक्तियों को विकसित किया था। कहा जाता है कि ब्रह्मा से लेकर मनु और जैमिनी तक सभी ऋषि ओंकार का ही जप करते थे। वाल्मीकि रामायण में स्पष्ट वर्णन है कि भगवान् राम सिद्धाश्रम को जाते हुए जब गङ्गा के तट पर पहुँचे तो प्रातः काल स्नानादि से निवृत्त होकर अपने छोटे भाई लक्ष्मण सहित गायत्री और ओ३म् का जाप किया। महाभारत में उल्लेख है कि चार घड़ी रात्रि शेष रहने हर भगवान् कृष्ण उठ जाते थे और अपनी सारी इन्द्रियां और चित्तवृत्तियों को एकाग्र करके 'दध्यौ ब्रह्म सनातनम्' सनातन ब्रह्म 'ओ३म्' का चिरकाल ध्यान करते थे। तभी उन्होंने 'एकाक्षरं पर ब्रह्म' की घोषणा की। गीता के पाठ से स्पष्ट है कि उस समय के धार्मिक लोग 'ओ३म् तत्सत्' का पाठ करते थे।

'ओ३म्' का उच्चारण अत्यन्त सरल है और कोई भी ऐसा मन्त्र नहीं है जिसका शुद्ध उच्चारण सहज में ही सीख लिया जाये। 'ओ३म्' शब्द अत्यन्त कोमल, महामधुर और सुगम है। हिन्दी

संस्कृत न जानने वाला कोई भी देशी व विदेशी व्यक्ति, बच्चा-बड़ा, स्त्री-पुरुष इसका उच्चारण कुछ ही क्षणों में सीख सकता है। प्रकृति का मन्त्र होने के नाते यही इसकी एक महान् विशेषता है। यह हर आयु व जाति के स्त्री-पुरुषों के लिए अभिहित परमात्मा का सर्वश्रेष्ठ व स्वाभाविक नाम है। परन्तु खेद है कि कुछ स्वार्थी तत्वों ने ईश्वर के इस सरलतम नाम भी प्रतिबन्ध लगाने का प्रयत्न किया। ईश्वर के इस सरलतम नाम पर कैसा प्रतिबन्ध ? 'ओ३म्' सा विश्व का है, सभी के लिये है, सभी को इसका नित्य नियमित जप करना चाहिए। इससे सर्वविध कल्याण होगा। प्रस्तुत पुस्तक में वेद, उपनिषद् ब्राह्मण, पुराणों, स्मृतियों, तन्त्रों, योग ग्रन्थों और गीता जैसे चोटी के प्रमाणिक शास्त्रों के आधार पर ओंकार के माहात्म्य और साधना का विवेचन किया गया है। आनन्द और अमृत के मूल स्रोत ओंकार की असाधारण सामर्थ्य तत्व ज्ञान व साधना विधान का वर्णन किया गया है। साधना से उच्च स्थिति प्राप्त करने के लिए सफल प्रयोग भी दिये गये हैं। इस पुस्तक में वर्णित सिद्धि के मूलभूत सिद्धान्त, क्रियाओं व साधनाओं पर आचरण करने से साधक प्रगतिपथ पर आरूढ़ होगा, ऐसा हमारा विश्वास है।

भूमिका

ओंकार ही एकमात्र ऐसा मन्त्र है जिसे सारे विश्व के लिये अभिहित किया जा सकता है। हिन्दू धर्म के मानने वालों में यह विशेष रूप से प्रयुक्त किया जाता है, परन्तु इसे इस जाति तक ही सीमित नहीं रखा जा सकता। यह सारे विश्व का मन्त्र है, विश्व के हर सम्प्रदाय और हर नागरिक के लिए बनाया गया है। यह संस्कृत, हिन्दी या किसी भारतीय भाषा का मन्त्र नहीं है। यह तो एक नैसर्गिक शब्द है, प्रकृति का मन्त्र है। भारतीय ऋषियों से समाधि अवस्था में यह अनुभव किया था कि प्रकृति के उच्च अन्तराल में निरन्तर एक ध्वनि होती रहती है। इसी सूक्ष्म ध्वनि को उन्होंने ॐ रूप में परिणित किया। स्वर विज्ञान के आचार्यों ने उसी ध्वनि से, सूक्ष्म प्रकृति से एकता स्थापित करने का विधान बनाया। इस तरह से स्पष्ट है कि भारतीय ऋषियों ने इसकी अनुभूति का श्रेय प्राप्त किया है। वैसे यह सारे संसार के लिये ही बनाया गया है। यह ही एकमात्र ऐसा मन्त्र है जिसके आधार पर समस्त विश्व की जातियों, सम्प्रदायों और संस्कृतियों में एकता स्थापित की जा सकती है। अतः विश्व कल्याण के लिए इसका विश्वव्यापी प्रचार होना आवश्यक है। ओंकार के झण्डे के नीचे ही शान्ति का रहस्य निहित है।

कोई समय था जब लोकहित की दृष्टि से भारतीय ऋषियों ने भारतीय संस्कृति का विश्वव्यापी प्रचार किया था। आज भी विश्व के हर देश में उनके अवशेष देखे जा सकते हैं। यही कारण है कि ओंकारोपासना को विश्व के हर सम्प्रदाय ने किसी न किसी रूप में

९. स्मृतियों में ओंकार ९०
१०. तन्त्रों में ओंकार ९१
११. ओंकार की असाधारण सामर्थ्य ९८

मन्त्रों का राजा, मन्त्रों का बीज, मन्त्रों का सेतु, समस्त मन्त्रों और भाषाओं का जनक, प्रथम परम पावन ध्वनि, सर्वश्रेष्ठ और स्वाभाविक नाम, जीवन की सर्वप्रथम आवश्यकता, विजय, समृद्धि, आनन्द और ज्ञान के प्रदाता शक्ति व सिद्धि का प्रतीक, प्रकृति का मन्त्र, ईश्वर का सर्वोत्तम नाम, समस्त आवृत्तियों का मूल, सृष्टि रचना का कारण, अनाहत ध्वनि से सम्बन्ध, स्वास्तिक से अनुकूलता, मृत्यु से निर्भयता प्राप्ति, स्वास्थ्य से सम्बन्ध, सन्तान प्राप्ति, सूर्य से अभिन्नता आदि।

१२. आनन्द और अमृत का मूल स्रोत—ओंकार १२५

ओ३म्, अमृतमय गो दुग्ध, ओ३म् आत्म संजीवनी है, ओ३म् से प्रभु दर्शन और ओ३म् से समाधि व मुक्ति अवस्था में पहुँचाने में समर्थ।

१३. ओंकर-विज्ञान १३६
१४. प्रणव की शास्त्रीय व्याख्या १४१
१५. ओंकार के उन्नीस अर्थ १४८
१६. ओंकार की शब्द योजना का तत्व-दर्शन १५७
१७. ओंकार गायत्री की अभिन्नता १७०
१८. ओंकार और ब्रह्म की एकता १७५
१९. ओंकार के ब्रह्म वाचक दस नामों की व्याख्या १८३
२०. ओंकार और विकास की चार अवस्थायें १८७

२१. ओंकार साधना के कुछ सफल प्रयोग १६४

दैवी वाणी सुनना, इच्छित वस्तु की प्राप्ति, मनोकामना की पूर्ति, देवी देवताओं का साक्षात्कार, एक वर्ष में पर-ब्रह्म दर्शन, नवग्रह शान्ति, स्वप्न में प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने का उपाय।

२२. साधना स्थल का चुनाव २०५

२३. ओंकार साधना के विधि संकेत २१०

२४. ओंकार की ध्वनि साधना २१६

ओंकार की ध्वनि और जप के लाभ, प्राणायाम युक्त ओंकार साधना, त्राटक विधि, स्थूल और सूक्ष्म ध्यान

२५. ओंकार ध्यान में सहायक मन्त्र २२८

२६. सिद्धि के मूलभूत सिद्धान्त व क्रियाएँ २३१

संकल्प व दृढ़ इच्छा शक्ति, अटूट श्रद्धा भावना, तपश्चर्या, एकाग्रता, प्राणायाम, ध्यान, अर्थ, चिन्तन, संस्कारित साधनास्थल, असंक्रामक आसन, दिशा, उपवास, संयम, मौन और आहार शुद्धि पर गम्भीर विवेचन।

२७. साधना के आवश्यक नियम २४७

———

ओंकार सिद्धि

ॐ

ओंकार स्तुति

ओंकारं बिन्दु-संयुक्त, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमो नमः ।1

'जिस ओंकार का नाद-विन्दु के साथ योगीजन नित्य ध्यान करते हैं, वह सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला और मोक्ष देने वाला है। मैं उस ॐ ब्रह्म को बार-२ नमस्कार करता हूँ' ।1

ओङ्कारं यः स्मरेन्नित्यं श्रद्धया नियमेन च।
ओङ्कार-रूपमाधाय स भवेल्लोकतारकः ।२

जो मनुष्य नित्य नियमपूर्वक श्रद्धा (उत्कृष्ट भावों) के साथ स्मरण करता है, वह गुणशील, स्वभाव में ओंकार रूप होकर संसारी लोंगों को तारने वाला बन जाता है' ।२

ओङ्कारजपध्यानेन ब्रह्मज्ञानमवाप्नुयात्।
मोक्षञ्च तत एव स्यात् ओङ्काराय नमो नमः ।।३

ओंकार के जप-ध्यान से वह ब्रह्म ज्ञान को प्राप्त करता है। ब्रह्म ज्ञान से वह जीवन्मुक्ति, मोक्ष पाता है। उस ओ३म् ब्रह्म को बार-२ प्रणाम करता हूँ ।३

अर्थं विचारयन् जप्त्या तन्मयो जायते नरः।
क्षिज समाधिमाप्नोति ओङ्काराय नमो नमः ।।४

'अर्थ पर विचार करते हुए प्रेमभाव से जो ॐ का जप करता है और जप करते-२ तमन्य (बेसुध-सा) हो जाता है, अपनेपन को सर्वथा भूल जाता है, वह शीघ्र ही असम्प्रज्ञात समाधि को अपने आप प्राप्त कर लेता है। अतः मैं ॐ ब्रह्म को बार-बार प्रणाम करता हूँ ।४

स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्राः पापयोनय एव ये ।
आश्रित्योङ्कारमेवान्ते सर्वे यान्ति परां गतिम् ।।५

'स्त्री, वैश्य और शूद्रादिक तथा पाप योनि वाले जो भी कोई होवें, ओ३म् देव का आश्रय लेकर निश्चय ही परम गति को प्राप्त होते हैं ।५

बुद्धिं ददाति निजदोषमपाकरोति
मार्गं प्रकाशयति चित्तमलं निरस्य ।
योगं वह त्यपि छिनत्ति कठोरपाशान्
ओङ्कार एष सकलं कुशलं विधत्ते ।।६

'ओ३म् मनुष्य मात्र को सुबुद्धि देता है । दोषों-दुर्गुणों को दूर करता है । उत्कर्ष का मार्ग सुजाता है । चित्त को निर्मल बनाता है । अन्तःकरण को शुद्ध करता है । योग के साधन जुटाता है, मार्ग के विघ्नों को नष्ट करता है, कुशलता का वहन कराता है, वह ओ३म् देव क्या नही साधते (जुटाते) हैं ऐसे कृपालु ओ३म् को प्रणाम करता है' ।५

कविं पुराणं सकलाभिरामम्
अणोरणीयांसमनादिधेनम् ।
सच्चित्स्वरूपपं भवबीज रूपम्
सर्वज्ञमोंकारमहं नमामि ।।७

'जो कवि (कलात्मक रचना करने में कुशल) है । अनादि है, सबका नियन्ता है, सूक्ष्मातिसूक्ष्म है, सबका भरण-पोषण करने वाला है, सर्वगत (सब जगह व्यापक) है, सर्वज्ञ है, उस सत् चित् आनन्द रूप ओंकार को मैं प्रणाम करता हूँ ।७

सुखे वा दुःखे वा परिषदि नृणां वातिबिजने,
गृहे वा बाह्ये वा गिरि-सुशिखरे वा सुपुलिने ।

दिने वा रात्रो वा उषसि दिवसान्तेऽथरमणे,
भजध्वं हे धीराः सुमतिविमला ओं हृदि सदां ।८

'सुख में, दुःख में जनसमूह में या निर्जन स्थान में, घर में, या बाहर, पर्वत के सुन्दर शिखर पर या नदी के मनोहर तट पर दिन में या रात में, प्रातःकाल या सुन्दर सायंकाल में, हे सुमति से विमल धैर्यशील विद्वान् पुरुषो ! तुम सदा ओ३म् की स्तुति, प्रार्थना और उपासना किया करो' ।८

रवौ चन्द्रे ज्योतिर्विविधगणरम्ये वियति च
समीरेऽग्नौ भूमाविह निखिल-देहे समुदिते
वयं पश्यामस्ते शुभ-महिमशाक्तित्वमुदितं,
भजध्वं हे धीराः सुमतिविमला ओं हृदिसदा ।६

'सूर्य में, चन्द्रमा में, विविध नक्षत्र गण्डों में, रमणीक आकाश में, वायु, अग्नि और भूमि में, प्राणयुक्त इस सुन्दर समग्र शरीर में, प्रमुदित होकर सर्वत्र ही हम ओ३म् की सुभग महिमा को देखते हैं। हे सुन्दर बुद्धि वाले धीर पुरुषो ! तुम हृदय से ओ३म् का भजन किया करो' ।६

स नो वन्धुमाता भुवनमखिलं यो रचयति
प्रजानां संहारे पुनरपि स एवाति बलवान् ।
तमेकं जानीध्वं सकलसुखदं, दुःखहरणं,
भजध्वं हे धीराः सुमति विमला ओं हृदि सदा ।१०

'वही हम लोगों का बन्धु है, वही समस्त संसार का रचयिता और पालक है ; प्रजाओं का संहार करता है। हे पुरुषो ! तुम एक उसी प्रभु को जानो। वही सब सुखों का देने वाला है सब प्रकार के सकल दुःखों को दूर करने वाला है। हे सुन्दर बुद्धि वाले धीर पुरुषो ! तुम सदा ही हृदय से ओ३म् का भजन करो' ।१०

इमं देवं रुद्रं गणपतिमजं विष्णुमजरं,
सुपर्णं ब्रह्माणं शिवं दितिमोशानमनघम् ।

तमेकं व्याचष्टे बहुविधसुनाम्ना कुशलधीः ।
भजध्वं हे धीराः सुमति विमला ओं हृदि सदा ।११

'इस एक देव को रुद्र, गणपति, अज, सुपर्ण, ब्रह्म, शिव, अदिति, ईशान, अनघ आदि विविध नामों से विद्वान् लोग जानते और बखानते हैं । हे सज्जनो ! सुन्दर बुद्धि वाले धीर पुरुषो ! तुम सदा ही हृदय से ॐ का स्मरण किया करो' ।११

त्वमेकः पूज्योऽसि त्वमिह सदयस्त्वं हितकरः
त्वमेको ध्येयोऽसि त्वमसि रमणो योगिहृदये ।
रमस्व त्वं चित्ते त्वमसि ममचित्तं बहुमतं
भजध्वं हे धीराः सुमति विमला ओं हृदि सदा ।।१२

'हे भगवान् ! तू ही पूज्य है । तू ही करुणाकर है । तू ही सब का हितकारी है । तू ही एकमात्र जीवन का ध्येय है । योगियों के हृदय में तू ही प्रकाशित होता है । हे भगवन् ! मेरे चित्त में तुम सदा रमण करो । तू ही महान् धन है । हे सुन्दर बुद्धि वाले धीर पुरुषो ! तुम सदा ही हृदय से ॐ का स्मरण किया करो ।१२

ओंकार महिमा

ॐ इत्येकाक्षरध्यानात् विष्णुर्विष्णुत्वमाप्तवान् ।
ब्रह्मा ब्रह्मत्वमापन्नः शिवतामभजत् शिवः ।१

ॐ के ध्यान से विष्णु ने विष्णुत्व, ब्रह्मा ने ब्रह्मत्व तथा शिव ने शिवत्व की सम्प्राप्ति की है ।१

ॐ स्मरणात् कीर्तनाद्वापि श्रवणाच्च जपादपि ।
ब्रह्म प्राप्नोति सन्नित्यमोमित्येतत्परायणम् २।

नित्यप्रति ॐ के स्मरण, कीर्तन, श्रवण तथा जप के द्वारा परब्रह्म की प्राप्ति होती है ।२

ॐ इतिस्मरणेनैव ब्रह्मज्ञानं परावरं ।
तदेकं मोक्षसिद्धिं च तदेवामृतमश्नुते ।३

ॐ के ध्यानमात्र से मनुष्य ब्रह्मज्ञान की परम स्थिति तथा मुक्ति और अमरता की प्राप्ति कर लेता है ।३

बुद्धतत्वेन धीदोष शून्येनंकान्तवासिना ।
दीर्घं प्रणवमुच्चार्य मनोराज्यं विजीयते ।।४

ॐ के निरन्तर उच्चारण से पर ब्रह्म का ज्ञान, मौनी बुद्धि के दोष से भ्रमित मन पर पूर्ण विजय प्राप्त कर लेता है ।३

तैलधारामिवाच्छिन्नं दीर्घघण्टानिनादवत् ।
उपास्यं प्रणवस्याग्रं यस्त वेद स वेदवित् ।५

जो मनुष्य एक बर्तन से दूसरे बर्तन में निरन्तर गिरने वाली तेल की धारा की भाँति अथवा घण्टा के दीर्घ निदान की भाँति प्रणवमन्त्र ॐ के ध्यान में लीन रहता है, वही वास्तव में देवज्ञ है ।५

नासाग्रे बुद्धिमारोप्य हस्तपाद च संयमेत् ।
मनः सर्वत्र संगुह्य ॐकारं तत्र चिन्तयेत् ।६

हाथ तथा पैर के संयम के साथ, नाक के आगे के भाग पर ध्यान केन्द्रित कर मन को सब क्रियाओं से हीन कर साधक को ॐ का चिंतन करना चाहिये ।६

प्रेमकारुण्ययोर्धाम तत्वं विश्वनिकायभम् ।
यत् तेन निर्मितामेतां शुभ्रां दोलायितां तथा ।७
श्वासप्रश्वासयोर्दोलामारूढो मोदनिर्भरद् ।
गायाम्योंकारसंगीतं मधुर मधुराक्षरम् ।८

साधन की कितनी उच्चकोटि की मधुर कल्पना है कि प्रेम और करुणा के धाम और जगत् के नियामक ईश्वर ने हमारे लिए एक दिव्य झूला बनाया जिसमें श्वास और प्रश्वास कों दो डोरियाँ लगायी। इस झूले का संचालन वह स्वयं करते हैं । ईश्वर ने स्वयं हमें इस झूले में बिठाया है । आनन्द मग्न होकर ओंकार का मधुर गान मैं गा रहा हूँ । यह सङ्गीत मेरे लिए-मधुर से मधुर सिद्ध हो रहा है ।७-८।

यासौ सर्वजगन्माता सर्वदेवनमस्कृता ।

ऋषिभिर्मुनिभिर्गीता सर्वशास्त्रोपवर्णिता ।६
नानासन्तापसन्तप्तस्तस्या आह्वानमुत्तमम् ।
ओंकारमाश्रये नित्यं भक्तिप्रवणमानसः ।१०

समस्त जगत् की माता को देवता नमस्कार करते हैं, ऋषि और मुनि उनका गुणगान करते हैं, शास्त्र उनकी महिमा का वर्णन करते हैं। ओंकार उस जगन्माता की प्राप्ति का श्रेष्ठ माध्यम है। मुझे अनेकों प्रकार के संताप घेरे हुए हैं। इनसे निवृत होने के लिए मैं ओंकार की शरण में जाता हूँ। वे ही मेरा उद्धार करेंगे।६।१०।

योगिनामपि दुर्गम्यं भक्तानामपि दुर्लभम् ।
ज्ञानिनामपि दुश्चिन्त्यं जगतः प्रभवाप्ययम् ।११
कूटस्थं शाश्वतं दिव्यं विष्णोर्यत् परमं पदम् ।
ओमित्युद्गीथिनं प्राहुस्तस्य सोपानमद्भुतम् ।।१२

जो योगियों के लिए भी अत्यन्त कठिन है, भक्तों के लिए दुर्लभ है, ज्ञानियों के लिए दुश्चिन्त्य है और जहाँ से संसार का प्रादुर्भाव होता है और जिसमें वह विलीन हो जाता है।११। कूटस्थ शास्त्र और दिव्य परम पद की उपलब्धि के लिए ओंकार साधना एक उत्तम व अद्भुत सोपान है, माध्यम है, ऐसा ओंकार का गायन करने वाले साधकों का अनुभव है।१२।

आन्तराणामरातीनां विजयव्रतधारिणाम् ।
भवबन्धविनाशार्थं मुनीनां धर्मचारिणाम् ।१३
ओंकारं परमं प्राहुराश्रयं तद्विदो बुधाः ।
तमेनं सुदृढं मन्ये 'ब्रह्मवर्म ममान्तरम्' ।१४

ओंकार के सत्वज्ञान के समझने वाले ज्ञानियों का विचार है कि जो साधक आंतरिक शत्रुओं से संघर्ष करके उन पर विजय प्राप्त करने और सांसारिक बन्धनों से मुक्त होने का जीवन उद्देश्य निर्धारित करते हैं ऐसे धार्मिक सिद्धान्तों के अनुकूल जीवन को ढालने वाले मुनिजनों

के लिए ओंकार ही एक परम आश्रय है। निर्विघ्न साधना के लिए ओंकार ब्रह्मरूप में एक शक्तिशाली आध्यात्मिक कवच है।१३-१४।

ज्ञानविज्ञानवृक्षस्य सुगन्धि कुसुमं शुभम् ।
ज्योतिषामपि यज्ज्योतिरमृतं भोज्यमात्मनः ।१५
नानासन्तापतप्तानां यच्चाप्यौषधमुत्तमम् ।
पाहौघं भस्मसात्कर्तं ब्रह्मशस्त्रं तपस्विनाम् ।१६

ज्ञान-विज्ञान को यदि एक वृक्ष की संज्ञा दी जाय तो ओंकार एक सुगन्धि युक्त फूल है जो अपनी सुगन्धि से साधक के अन्तःकरण को सुवासित कर देता है। विश्व में जितने ज्योतिर्मय पदार्थ दृष्टिगोचर होते हैं ओंकार उनकी भी ज्योति है, उनका मूल है। इसे आत्मा का अमृतमय भोज्य कहा जाए तो अधिक उपयुक्त रहेगा विभिन्न प्रकार के सांसारिक कष्टों व रोगों से निवृत्ति के लिए ओंकार एक श्रेष्ठ दवा का काम करता है। हजारों जन्मों में संस्कार रूप से निवास करने वाले पाप समूह को जड़मूल से नष्ट करने के लिए ब्रह्मज्ञानियों की दृष्टि में ओंकार साधना एक ब्रह्मास्त्र है।१५-१६।

सर्वदेवात्मकं शान्तं तत्वमेकं रसायनम् ।
अथवा बहुनोक्तेन कोऽर्थ एवं विचिन्त्यताम् ।।१७
त्रिलोक्यामपि यत्किंचित् तदादाय समन्ततः ।
तिष्ठन्तं प्रणवं ध्यायन् ब्रह्मभूयाय कल्पते ।१८

ओंकार सर्वदेवात्मक, शान्त व अद्भुत रसायन है। इतना कहना ही पर्याप्त समझना चाहिये कि भूः, भुवः, स्वः तीनों में जो कुछ स्थित है, उसे अपने में समन्वित किये हुए हैं, उस ओंकार के ध्यान साधना से साधक ब्रह्मभावको प्राप्त करने की सामर्थ्यवाला होजाता है।१७-१८।

एतदोंकारमाहात्म्यं प्रातः काले पठेन्नरः ।
सावधानेन मनसा शान्त एकान्तसंस्थितः ।१९
गुरूपदिष्टमार्गेण प्रव्रजन् ब्रह्मणोऽध्वनि ।
जपेनार्थभावेयोन जपत्येवं च नित्यशः ।२०

उत्तरोत्तरमुत्कृष्टं स्थानं प्राप्य परं पदम् ।
अक्षय्यममृतं दिव्यं लब्ध्वा तिष्ठत्यनामयम् ।२१

एकान्त स्थान में स्थित होकर और सावधान होकर जो साधक ओंकार माहात्म्य का शान्त मन व श्रद्धा भक्ति से प्रातःकाल पाठ व चिन्तन करता है वह गुरु द्वारा निर्दिष्ट मार्ग से विरक्ति प्राप्ति की ओर पग बढ़ाता है। नित्यप्रति अर्थ चिन्तन सहित जप साधना करने से वह उत्तरोत्तर उत्कृष्ट स्थान प्राप्त करता हुआ परम पद की ओर तीव्रगति से बढ़ता है--अन्त में ऐसे उत्तम साधक को अक्षय्य, अमृत दिव्य और समस्त दुःखों से रहित परमपद की उपलब्धि होती है। १९-२१।

स एव सरलो मार्गः सर्वकण्ठकवर्जितः ।
अत एव सदा सद्भिः सम्प्रदायैः समर्थितः ।।२२

ओंकार साधना का मार्ग अत्यन्त सरल, सीधा व बाधाओं से रहित है। यहीं कारण है कि सभी सम्प्रदाय वाले इसका यथेष्ट सम्मान करते हैं।२२।

प्रणवाद्यं गृहस्थानां नो चेत् शून्ये फलं भवेत् ।
आद्यान्तयोर्वनस्थानां यतीनां महतामपि ।।२३

गृहस्थों की साधना के लिए शास्त्र का विधान है कि जिस मन्त्र की भी साधना कर रहे हों उसके आरम्भ में ओंकार अवश्य लगाना चाहिये। यदि वह ऐसा नहीं करते हैं तो उस मन्त्र का जप निष्फल जाता है। वानप्रस्थी और संन्यासी महापुरुषों के लिए भी आदेश है कि वह इष्टमन्त्र के आदि और अन्त में ओंकार लगायें।२२।

वेदों में ओंकार

वेद हमारी प्राचीनतम धर्म पुस्तक है। ऐसा विदेशी इतिहासकार भी मानते हैं। वेद सदा अपौरुषेय हैं। वेदों में ओंकार साधना का स्थान-स्थान पर बड़ा प्रेरणादायक उल्लेख मिलता है। यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के पन्द्रवें मन्त्र में संयम-साधना या आत्म-निरीक्षण

के साथ ही ओ३म् की उपासना पर बल दिया गया है—

ओम क्रतो स्मरे क्लिवे स्मर कृत्ँ स्मर ।

इसी वेद के सत्रहवें मन्त्र में बताया गया है कि ओ३म् ही ब्रह्म है, वह आकाश के समान सर्वत्र व्याप्त है—

ऋग्वेद में भी ओ३म् की महिमा का वर्णन करते हुए मधुच्छंदा ऋषि कहते हैं—

ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आ गत ।
दाश्वांसो दाशुषः सुतम् ।

महर्षि परमेष्ठी प्रजापति, देवल और वामदेव यज्ञ की निर्विघ्न समाप्ति की प्रार्थना करते हुए ओंकार रूप परमेश्वर को अपने हृदयों में प्रतिष्ठित करते हैं—

मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञँ
समिमं दधातु । विश्वे देवास इह मादयन्ताम् ओ३म् प्रतिष्ठ ।
(यजुर्वेद अध्याय २।१३)

अर्थात्—"यज्ञ में आहूत किया हुआ यह आज्य (घृत) समष्टि रूप प्रभु की सेवा करें । बृहस्पति इस यज्ञ का विस्तार करें । वे इस यज्ञ को निर्विघ्न सम्पूर्ण करें । इसे निरुपद्रव बनावें । सभी देवता हमारे इस यज्ञ से तृप्ति लाभ करें । विश्वदेव (विश्व के मनीषीगण, विद्वान् लोग) इस यज्ञ से आनन्द पावें और हम, याज्ञिकों द्वारा प्रार्थित ओ३म् रूप परब्रह्म हमारे हृदयों में प्रतिष्ठित हों ।"

वेद के इन अन्तसाक्ष्यों से स्पष्ट बोध होता है कि वेद ने ओ३म् को ईश्वरवाची माना है । ओ३म् और चिन्मय ईश्वर सर्वथा अभिन्न है । ओ३म् ईश्वर का अग्नि, वायु, वरुण, इन्द्र आदि के समान पर्याय है । वेदों में ओंकार-उपासना का विशद प्रतिपादन हुआ है । ओ३म् की महनीयता इसी से स्वतः सिद्ध हो जाती है कि चारों वेदों में कुल मिलाकर जितने मन्त्र हैं, उनमें 'ओ३म् शब्द का प्रयोग उनके दो गुनेसे

अधिक ही हुआ है। विद्वानों के अनुसार 'ओ३म्' प्रत्येक वेद मन्त्र का अवयव ही है। सभी वेद मन्त्र ओ३म् रूप हैं।

महर्षि श्रीकृष्ण द्वैपायन वेदव्यास ने 'ओ३म्' को 'समन्वयात्मक पद' माना है—तत्तुसमन्वयात्। (वेदान्त सूत्र—३।१।) तदनुसार जैसे ईश्वर का सम्बन्ध समस्त विश्व से है, जैसे 'सूत्रे मणिगणा इव' वेद मन्त्रों का समन्वय रूप है। सारे वेदों का वही सार है। वही वैदिक मन्त्रों का प्राण है। ॐ ब्रह्म का मुख्य नाम है।

ॐ ब्रह्म का चिन्मय विग्रह है। यह मात्र शब्द या ध्वनि ही नहीं है। उसकी शक्ति अपार हैं। वैदिक साहित्य के सभी तपःपूत विद्वान 'ओ३म्' के विषय में ऐसा ही कहते हैं।

ऋग्वेद में 'परमे' विशेषण् 'वि' उपसर्ग और 'अन्' प्रत्यय के साथ ॐ का स्पष्ट प्रयोग हुआ है—

ऋचो अक्षरे परमे व्योमत् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदु।
तस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति, य इत्त द्विदुस्त इमे समासते ।।

ऋचा या वेदमन्त्र के अनुसार महान्, सर्वविशेष ॐ रूप अक्षर (अविनाशी) ब्रह्म में समस्त लोक और सारे देवता निवास करते हैं। जो इस रहस्य को नहीं समझता है, उसके लिये वेद मन्त्र क्या लाभ पहुँचा सकते हैं। जो अक्षर ब्रह्म के इस स्वरूप को पहचानता है, वह उसी में लीन (समाहित) हो जाता है। उसी में सर्वतोभावेन समा जाता है ब्रह्ममय हो जाता हैं। उसकी आत्म-स्थिति के विषय में भी कुछ कहा नहीं जा सकता।"

यहाँ परमे=महान्, वि=विशेष, सबसे अलौकिक, ओ३म् रूप अविनाशी ब्रह्म में, ऐसी पद योजना करके तत्वदृष्टः ऋषि ने ओ३म् की भगवत्ता का ही प्रतिपादन किया है।

अथर्ववेद में भी कई स्थानों पर (यथा ५।१७।६, ६।२३।१ और ७।५।३) परमे व्योमन् का प्रयोग हुआ है, जो ओ३म् की महानता

और सर्वविशिष्टता को ही प्रकट करता है। 'व्योमन' का अर्थ व्योम के समान सर्व व्यापक ब्रह्म भी किया गया है। इस अर्थ में भी परमात्मा की सूक्ष्मता और विशालता, अणुमयता और अतिशयता (सर्वव्यापकता) का ही बोध होता है। जो ॐ का अनोखा रूप ही है।

इस तरह से वेदों में ओंकार की महान् महिमा का गान हुआ है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में ओंकार

शतपथ ब्राह्मण--

शतपथ ब्राह्मण में ओ३म् की व्यापकता का रूपक अलङ्कार में इस प्रकार वर्णन किया गया है—

ॐ खं ब्रह्म घं पुराणं वायुरं खमिति ह्स्याह कौरव्याणी पुत्रोवेदोऽयं ब्राह्मणा विदुर्वेदनेन यद्वेदितव्यम्।

(शतपथ ब्राह्मण १४।८।१।१)

ॐ सर्वव्यापक परब्रह्म है। वह आकाश रूप है, वह आकाश के समान अरूप, अदृश्य और सर्व समाविष्ट है। सब ओर छाया हुआ, सब में समाया हुआ है। वह पुराण पुरुष है। सर्व प्राचीन है। वह आकाश रूप ब्रह्म वायु के समान सर्वगत है, नित्य स्पन्दमान है। वायुवत् सबका प्राण-प्रदाता है। कौरव्याणी के पुत्र ने उस ओ३म् को ऐसा बताया है। निश्चय ही यह ॐ वेदस्वरूप है। सर्व ज्ञानमय है। जो व्यक्ति ॐ के इस तत्व को समझता है। वह यथार्थ में वेद का जानने वाला है। ॐ की उपासना से ही जानने योग्य रहस्यों को, गुह्यतम विज्ञान को ज्ञानीजन जान लेते हैं। ॐ के ज्ञान से ही सबका ज्ञान हो जाता है। ॐ के अतिरिक्त जानने योग्य (वेदितव्यम्) इस धरा में और कुछ नहीं है।

गोपथ ब्राह्मण--

चार वेद हैं। उनके मन्त्रों में प्रकीर्णता, विविधता और सूत्रा—

त्मकता है। उनके व्याख्याता ब्राह्मण ग्रन्थ हैं। ये भी चार ही हैं। तथा ऋग्वेद का एतरेय ब्राह्मण, यजुर्वेद का शतपथ ब्राह्मण, सामवेद का ताण्ड्य महाब्राह्मण और अथर्व वेद का गोपथ ब्राह्मण है। इन ब्राह्मण ग्रन्थों में ओ३म् का माहात्म्य जैसी सुबोध भाषा में किया गया है, वैसा अन्य प्राचीन धर्म ग्रन्थों में दुर्लभ है। गोपथ ब्राह्मण में तो ओ३म् की श्रेष्ठता का प्रतिपादन कलात्मक शैली में निरूपित है।

गोपथ ब्राह्मण में वर्णित 'ओ३म् की गाथा' इस प्रकार है—

प्राचीन काल की बात है। असुरों के दैनन्दिन वर्धमान अत्याचारों को देखकर देवता लोग बड़े चिन्तित हुए। वे सदाचरण की प्रतिष्ठा के साथ जो भी उपाय करते थे, असुर लोग प्रथम तो उसे पूरा ही नहीं होने देते थे और यदि किसी प्रकार वह पूर्ण भी हो जाता था तो अपने आतंकवादी हथकण्डों से उसके जनमानस पर होने वाले प्रभाव को निर्मूल कर देते थे भय, आतंक, संत्रास, उत्पीड़न और शोषण का ही समाज में चारों ओर बोलबाला था। अपने यज्ञों को विध्वंस हुआ देखकर अपने पुण्य प्रयत्नों को विफल हुआ देखकर देव समुदाय किंकर्त्तव्य विमढ़ हो गया था। उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि जन समुदाय को असुरों से कैसे त्राण दिलायें। उनके स्वयं के प्राण भी संकट में थे। 'हारे के बल राम' के अनुसार उन्होंने ओ३म् की उपासना की। ओ३म् का आवाहन किया।

देवताओं की प्रार्थना से प्रसन्न होकर ओ३म् प्रकट हुए। उन्होंने उनसे पूछा—आप लोगों को क्या कष्ट है? आपने मुझे किस लिए पुकारा है? देवताओं ने असुरों की संहार-लीला, समाज की विशृंखलता और अपनी निरुपायता का चित्र उनके समक्ष रखते हुए धर्म कार्य में सहायता करने को कहा। इस पर देवाधिपति ओ३म् ने कहा—यदि मैं तुम्हारी सहायता करूँगा, तो इससे मुझे क्या लाभ होगा? इस पर देवताओं ने उन्हें वचन दिया कि हम हर तरह से आपके हैं और सदा को आपके अनुगृहीत रहेंगे। यही नहीं, आप जो आज्ञा दें, सो हम

आपकी सन्तुष्टि के लिए करने को तैयार हैं।

इस पर ओ३म् ने कहा--मुझे कुछ नहीं चाहिए। असुरों के भय व त्रास के नाश का एक उपाय मैं आपको बताता हूँ। आप आज से अपने यज्ञों में, वेदों की शिक्षा में प्रत्येक वैदिक मन्त्र के आरम्भ में ओ३म् का उच्चारण किया करें। ऐसा करने से लोगों की ओ३मुपासना की ओर प्रवृत्ति होगी। ज्यों-ज्यों वे उपासना करेंगे, त्यों-त्यों उनमें मेरी शक्ति का अधिकाधिक अवतरण होता चलेगा। वे सभी प्रकार के भयों से मुक्त हो जावेंगे। उनमें आत्म-विश्वास का उदय होगा, सूझ-बूझ आवेगी। विवेक, बुद्धि और आत्मबल पाकर वे अपनी समस्त समस्याओं का, कष्टों और संकटों का सहज में निराकरण कर सकेंगे। ओ३मोपासना के प्रचार-प्रसार से ही असुरों का (समाज विरोधी तत्वों का) समूल नाश किया जा सकता है।

ओ३म् की यह बात सुनकर देवताओं को अपनी गलती ज्ञात हुई। वह कर्मकाण्ड को ही सब कुछ मान बैठे थे। वे भूल गये थे कि यज्ञादि कर्मकाण्ड तो धर्म-प्रचार के साधन मात्र हैं। साध्य नहीं है। साध्य तो एकमेव ओ३म् ही है। सो उसी दिन से उन्होंने ओ३म् ब्रह्म, द्वारा निर्दिष्ट उपाय का अवलम्बन किया। फलतः उनमें अद्भुत सामर्थ्य जगी। लोगों में नवीन चेतना आई। सभी ने सम्मिलित होकर असुर समुदाय का नाश करके सामाजिक अवस्था की रक्षा की।

'ओ३म् की उपासना समाज के लिए ही उपयोगी नहीं हैं, व्यक्ति के अपने उत्थान के लिए भी परमावश्यक है।'--यह शिक्षा भी हमें उक्त कथा से मिलती है हम सबके मन में देवासुर संग्राम बराबर चलता रहता है। काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा और अहङ्कार ही असुर हैं तथा प्रेम, सद्भाव, आत्मीयता, धैर्य श्रद्धा, शान्ति और नम्रता ही सुर या देवगण हैं जब हमारे मन में दुष्टवृत्तियों की अधिक वृद्धि और उत्कृष्ट-वृत्तियों की न्यूनता होती है, तब दुष्ट स्वभाव रूप असुर उत्तम स्वभाव रूप देवों को दबा लेते हैं। यही

असुरों की विजय है। निम्नगामी वृत्तियों के प्रबल होने पर अन्य क्षोभ बढ़ जाता है कुण्ठा और किंकर्तव्य-विमूढ़ता आती है। जीवन में निराशा, आत्मग्लानि और तज्जन्य अकर्मण्यता में बढ़कर विनाशकारी तत्व कोई नहीं हैं। इनके निर्मूलन के लिए ओ३मुपासना आशुफल-दायिनी है। सद्भावों की वृद्धि और दुर्भावों के नाश के लिए ओ३म् की उपासना निश्चय ही सुखसाध्य और सरलतम उपाय है। गोपथ-ब्राह्मण का यह आख्यान जीवन के इस जीवन्त सत्य पर विपुल प्रकाश डालता है।

गोपथ ब्राह्मण में स्पष्ट उल्लेख है कि—

योहवा एतमोङ्कारं न वेदावशः स्यादिति।
अथ य एवं ब्रह्मवशः स्यादित।
तस्मादोङ्कार ऋचि ऋग्भवति। यजुषि यजुः
साम्नि साम। सूत्रे सूत्रम्। ब्राह्मणे ब्राह्मणम्।
श्लोके श्लोकः। प्रणवे प्रणव इति ब्राह्मणम्

(गोपथ ब्राह्मण १।२३)

जो व्यक्ति ओंकार को नहीं जानता, वह अपने को दीन, हीन, अबल और अवश (कमजोर) मानता है। जो इसे तत्वतः समझ लेता है, वह ब्रह्मबल अर्थात् आत्मबल से बलवान् हो जाता है। वस्तुतः ऋग्वेद के अध्ययन के समय ओंकार ही ऋग् रूप होता है। यजुर्वेद में यजुः स्वरूप और सामवेद में वही साम रूप है। सूत्र ग्रन्थों में ओ३म् ही सूत्र रूप है प्रत्येक ब्राह्मण ग्रन्थों में वही ओत-प्रोत है। श्लोक में वही समाविष्ट है। प्रत्येक ग्रन्थ में, छन्द में, शब्द में; रूप में सर्वत्र ओ३म् है।

एक और स्थान पर असाधारण महत्ता का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है—

आत्म-भैषज्यमात्मकैवल्यमोङ्कारः।

(कण्डिका ३०)

ओंकार आत्मा की रामबाण औषधि है। वह कैवल्य-रूप है। मल विक्षेप और आवरण नाम से प्रथित आन्तरिक रोगों के निर्मूलन के लिए ॐ से बढ़कर और कोई भैषज्य नहीं है। मानसिक विकारों के उपशमन के लिये ॐ का ही पथ्य पूर्वक (संयम के साथ) सेवन करना चाहिए। ॐ के सेवन से मनः क्षोभ, मनोव्यथा ही नष्ट नहीं होती, साधक को ब्रह्मपद (मोक्ष) की भी प्राप्ति होती है। यही इस कण्डिका का अर्थ है।

इसी ब्राह्मण के पूर्वभाग के पहले अध्याय की २२ वीं कण्डिका में ॐ की उपासना तथा जप व कीर्तन की महिमा का वर्णन करते हुये कहा गया है कि ब्राह्मण की यदि कोई इच्छा हो तो उसे उपवास करते हुये तीन रातों में ॐ का एक हजार बार ध्यान पूर्वक जप करना चाहिए। जप पूर्व की ओर मुख करके, मौन रहकर, कुशासन पर बैठ कर किया जाना चाहिए। ऐसा करने से सारे मनोरथों की सिद्धि और सारी समस्याओं की शान्ति होती है।

ताण्डव महाब्राह्मण-

ताण्डव महाब्राह्मण का ब्राह्मण ग्रन्थों में बड़ा मान है। इसे साम ब्राह्मण भी कहते हैं क्योंकि यह सामवेद से सम्बन्धित है। इस ब्राह्मण ग्रन्थ में ॐ शब्द की व्याख्या, उसकी चमत्कारी शक्तियों का निरूपण और ओंकारोपासना के विविध-विधान का विशद वर्णन किया गया है। इसमें ॐ के निराकार और साकार दोनों ही रूपों का उपदेश किया गया है। इस ब्राह्मण के अनुसार समस्त स्थावर जंगम प्राणियों और पदार्थों का सार (सारांश) पृथ्वी है। पृथ्वी का रस या कारण जल है। जल का रस औषधियां (अन्न) हैं। औषधियों का रस यह मनुष्य देह है। मनुष्य का रस (सार) वाणी है वाणी का सार ऋचा है। ऋचा का सार साम है और साम का सार उद्गीथ या ॐ है।

ॐ को उद्गीथ इसलिए कहा गया है क्योंकि यह उत्+गीथ है। 'उत्' अर्थात् ऊँचे स्वर से और 'गीथ' अर्थात् गाने योग्य है।

ओमित हि उदक्षरमुद्गीथमुपासीत ।
ओमित्युद्गायति तस्योपाख्यानम् ।

सब के गाने योग्य उस अविनाशी अक्षर ब्रह्म रूप की सभी मनुष्य उपासना करें । ओ३म् ही परमात्मा का नाम और प्रतीक है । 'ओ३म्' नाम में प्राचीन ऋषियों ने उसे गाया है । अब भी वह ओ३म् नाम से गाया जाता है और आगे भी गाया जावेगा । उसी का व्याख्यान इस ताण्डव महाब्राह्मण में किया जाता है ।

आगे कहा गया है—

ओ३म् ओ३म् ओ३म् पिबाम ।

"हम सब ओ३म, हाँ इस ओ३म् सुधा का पान करते हैं ।"

ओङ्कार एवेदं सर्वम् ।

यह सब कुछ ओङ्कार ही है । वही अग्नि है । वही वरुण है । वही प्रजापति है, सूर्य है, वही वायु है, प्राण है । ओ३म् के अतिरिक्त कहीं भी कुछ नहीं है ।

ऐतरेय ब्राह्मण में बताया गया है कि ब्रह्म से ही उस लोक में त्रयी-विद्या (तीन वेद) प्रकाश में आये । सर्व प्रथम अग्नि नाम के ऋषि के द्वारा ऋग्वेद प्रकाशित हुआ । वायु नाम के ऋषि ने यजुर्वेद और आदित्य नामक ऋषि ने सामवेद को प्रकाशित किया । वेदों के प्रादुर्भाव से लोगों का विवेक जगा । उन्हें त्रिलोकी का ज्ञान हुआ । ऋग्वेद से भूलोक प्रकाशित हुआ । पार्थिव पदार्थों का ज्ञान बढ़ा । यजुर्वेद से अन्तरिक्ष प्रकाश में आया । अन्तरिक्ष और तत्सम्बन्धी तत्वों की जानकारी मनुष्य मात्र को यजुर्वेद के पठन-पाठन से हुई । सामवेद से द्युलोक प्रकाशित हुआ । अन्तरिक्ष से परे जो अत्यन्त सूक्ष्म ज्योतिर्मय जगत् है, उसकी गतिविधियों का ज्ञान जन समुदाय को सामवेद (उपासना वाचन और प्रवचन) के द्वारा प्राप्त हुआ । तब लोगों ने अनुभव किया कि—

तानि शुक्राण्यभ्यतपत् । तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयो वर्णा अजायन्त । अकारः उकारो, मकार इति तानेकधा समभरत् । तदेतद् ओ३म् इति ।

(ऐतरेय ब्राह्मण ५।३५)

इन तीनों लोकों भूलोक, अन्तरिक्ष और द्युलोक को एकमात्र ब्रह्म ने ही प्रकाशित किया, स्वयं भी तीन वर्णों (अनाहूत ध्वनि कम्पनों) में व्यञ्जित हो रहा है। अकार, उकार और मकार ही वे तीन पद हैं। वे तीन मूल प्रकर्ष (चुम्बक) हैं। उन्हीं तीन पदों या प्रकर्षों का एक में समरित रूप ओ३म् है। दूसरे शब्दों में, यह ओ३म् ही वह तत् (ब्रह्म) है।

इसी ब्राह्मण में ओ३म् की इस व्युत्पत्ति के वर्णन से पूर्व ओ३म् की प्रभावात्मकता का प्रतिपादन निम्न शब्दों में किया है—

तस्मादोमिति प्रणौति ।
ओमिति वै स्वर्गो लोकः ।
ओमित्यसौ यों ऽसौ तपति ।

(ऐतरेय ब्राह्मण ५।३२)

ओ३म् के द्वारा ही ब्रह्म की स्तुति की जाती है। यह ओ३म् ही स्वर्ग को देने वाला है। वह ओ३म् ही है जो सम्पूर्ण जगत् को तपा रहा है। वही जगत् का सार–सर्वस्व है।

इस तरह से सशक्त शब्दों में ब्राह्मणों में ओंकारोपासना की ओर प्रेरित किया है।

उपनिषदों में ओंकार

ओंकार की महत्ता का प्रतिपादन और विधि संकेत वेद, पुराण, तन्त्र, स्मृतियों और ब्राह्मण ग्रन्थों आदि में उपलब्ध होता है परन्तु ऐसा लगता है कि उपनिषद्कारों ने प्रणव योग के विवेचन को अपना प्रमुख विषय बताया है। इसकी पुष्टि इस तथ्य से होती है किछान्दोग्य

मुण्डक, माण्डूक्य, प्रश्न, कठ, तैत्तिरीय आदि प्रसिद्ध उपनिषदों में तो ओंकार का वर्णन है ही, ध्यानबिन्दु, नादबिन्दु, योगचूड़ामणि, योगतत्व, अमृतनाद आदि योग उपनिषदों में भी इसे प्रमुख स्थान दिया गया है। वेदान्त विषयक उपनिषदों में भी इसका विभिन्न प्रकार से उल्लेख किया हैं। इनके अवलोकन से प्रणव योग पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। उपनिषदों में किस प्रकार ओंकार का स्पष्टीकरण किया गया है, इसका संक्षिप्त वर्णन यहाँ दिया जा रहा है—

छान्दोग्योपनिषद्-

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत । ओमिति ह्युद्गायति तस्योपव्याख्यानम् ।१

एषां भूतानां पृथिवी रसः पृथिव्या आपो रसः। अपमोषधयो रस ओषधीनां पुरुषो रसः पुरुषस्य वाग्रसो वाच ऋग्रस ऋचः साम रसः साम्न उद्गीथो रसः ।२

स एष रसानां रसतमः परमः परार्ध्योऽष्टमो यदुद्गीथः। कतमा कतमर्क्कतमत्कतमत्साम कतमः कतम उद्गीथ इति विमृष्टं भवति ।३

वागेवर्क् प्राणः सामोमित्येतदक्षरमुद्गीथः। तद्वा एतन्मिथुनं यद्वाक्च प्राणश्चर्क् च साम च ।५ (१।१।१।५)

ॐ रूप जो अक्षर यज्ञ में उद्‌गाता द्वारा सर्वप्रथम उच्चारण किया जाता है, वही परमात्मा का ज्ञान और प्रतीक है। उसी ओंकार की यहाँ व्याख्या की जाती है समस्त स्थावर और जंगम प्राणियों और पदार्थों का रस (सारांश) पृथ्वी का रस अथवा कारण जल है। जल का रस औषधियाँ (अन्न) हैं, औषधियों का रस यह मनुष्य देह है, मनुष्य का रस (सार) वाणी है, वाणी का रस ऋचा है ऋचा का सार साम है और साम का सार उद्‌गीथ (ओंकार) है। यह ओंकार जो

पृथ्वी आदि रसों की गणना में आठवाँ है, वह सब रसों का स्वरूप परमात्मा का प्रतीक होने के कारण परमात्मा के समान ही उपासना करने योग्य है और इसको वैसी ही भावना से ग्रहण करना चाहिये। अब यह विचार करना चाहिये कि कौन-कौन ऋचा है, कौन साम है, और कौन उद्‌गीथ है ? तो मालूम होता है कि वाणी ही ऋचा, प्राण साम है और ओंकार ही उद्‌गीथ है। ऋचा रूप जो वाणी और साम-रूप जो प्राण है, उन दोनों का जोड़ा प्रसिद्ध है।१-५।

तदेतन्मिथुनमोमित्येतस्मिन्नक्षरेसँ् सृज्यते यदा यै मिथुनौ समागश्छति आपयतो व तावन्योन्यस्य कामम्।६

आपयिता ह वै कामानां भवति य एतदेवं विद्वानक्षरमुद्-गीथमुपासते।७

तद्वा एतदनुज्ञारं यद्धि किं चानुजानात्योमित्येव तदाह एषा एव समृद्धिर्यदनुज्ञा। समर्धयिता ह वै कामानां भवति य एत-देवं विद्वानक्षरमुद्‌गीथमुपास्ते।८

तेनैवं त्रयो विद्या वर्तते ओमित्याश्रवतन्योमिति शँ्सत्यो मित्युद्‌गायत्येतस्यैवाक्षरस्थापचित्यै महिम्ना रसेन(६।१।१।६।९)

जिस प्रकार एक मिथुन (नर और मादा का जोड़ा) मिलने पर पारस्परिक कामना की पूर्ति करते हैं, उसी प्रकार यह वाणी और प्राण अथवा ऋचा और साम जोड़ा जब ओंकार से मिलता है तो वह भी पूर्ण काम हो जाता है जो इस प्रकार प्राप्त होने के रहस्य को जानता है और जानकर इस ओंकार रूप अक्षर की उपासना करता है, वह निश्चय ही कामनाओं को पूर्ण कराने वाला बन जाता है। यह प्रसिद्ध ओंकार अनुमति रूप भी है क्योंकि जब कोई किसी को अनुमति देता है तो उसे प्रकट करने को ॐ ही कहता है। पर ओंकार समृद्धि रूप भी है, क्योंकि अनुमति ही समृद्धि का मूल मानी हैं। जो इस रहस्य

को समझकर ॐ की उपासना करता है, वह निश्चय ही कामनाओं की समृद्धि करने वाला होता है। इस ॐ से तीनों वेदों में बतलाई यज्ञादि विधि प्रचलित होती है। अध्वर्यु इसी ॐ मन्त्र को सुनता है, होता इसी की प्रशंसा करता है और उद्गाता इसी का गान करता है। ये सब कर्म इस अक्षर की पूजा के निमित्ति ही किये जाते हैं।(६-६)

अथाधिदैवतं य एवासौ तपति तमुद्गीथमुपासीतोद्यन्वा एष प्रजाभ्य उद्गायति। उद्यँ स्तमोभयमपहन्त्यपहन्ता ह वै भयस्य तमसो भवति य एवं वेद ॥१

समान उं एवायं चासौं चोष्णोऽवमुष्णोऽसौऽसो स्वर इतोमसाचक्षते स्वर इति प्रत्यास्वर इत्येमु तस्माद्वा एतमिममु चोदंगीथमुपासीत ॥२

अथ खलु व्यानमेवोद्गीथमुपासीत यद्वै: प्राणिति स प्राणो यदपानिति सोऽपान:। अथ व: प्राणपानयो: सन्धि: स व्याना यो व्यान: सा वाक्। तस्मादप्राणन्ननपानन्वाचमभिव्या-हरति ॥३

या वाक्सर्क्तस्माप्राणन्ननपानन्नचमभिव्याहरित यवर्तत्साम तस्मादप्राणन्ननपानन्साम गायति यत्साम स उद्गीथस्तस्माद-प्राणन्ननपानन्नुद्गायति ॥४

अतो यान्यन्यानि वीर्यवन्ति कर्माणि यथाग्तेर्मन्थनमाणे: सरणं दृढस्य धनुष आयमनमप्राणन्ननपानँ स्तानि करोत्येरय हेतोर्व्यानमेव उद्गीथमुपासीत ॥५ (१।३।१-५)

अब आदित्य रूप देवता से सम्बन्धित ॐकारोपासना कही जाती है। यह जो प्रसिद्ध आदित्य (सूर्य) तपता है, वह ॐकार की उपासना करता है। उदय होकर समस्त मनुष्यों के लिये उच्चस्वर से उद्गीथ गान करता है। सूर्य के बिना अन्न पककर तैयार नहीं हो सकता और उसके बिना लोग प्राण धारण नहीं कर सकते। इस प्रकार उसका

यह कार्य उद्गीथ रूप ही है। वह प्राणियों के अंधकार से उत्पन्न भय का भी निराकरण करता है। जो इस प्रकार के गुण वाले सूर्य की उपासना करता है, वह जन्म-मरण के भय और उसके कारण स्वरूप अज्ञान का भी नाश कर डालता है। प्राण और नाम की दृष्टि से यह प्राण सूर्य के तुल्य ही है। यह प्राण उष्ण है और सूर्य भी उष्ण है। प्राण को स्वर कहा जाता है, सूर्य संध्या समय गमन करने से 'स्वर' कहलाता है। इसलिए प्राण और सूर्य दोनों रूपों में प्राण की ओंकार के रूप में उपासना करनी चाहिये। 'व्यान' नामक प्रसिद्ध शरीर वायु से भी ॐकारोपासना की जाती है। मनुष्य जो श्वांस निकालता है, वह प्राण और जो श्वांस भीतर खींचता है, वह अपान हैं। प्राण और अपान के माध्यम में रहने वाली जो वृत्ति है, वह व्यान है। व्यान ही वाणी है। इसलिये मनुष्य वायु को न खींचते हुए और न निकालते हुये व्यान की अवस्था में ही वाणी का स्पष्ट उच्चारण कर सकता है। जो वाणी है, वही ऋचा है। इससे पुरुष श्वास और प्रश्वास की क्रिया को न करता हुआ भी ऋचा उच्चारण करता है। जो ऋचा है वह साम है, इसलिये श्वास-प्रश्वास को रोककर साम का गान करता है। जो साम है वही उद्गीथ है। इसलिये मनुष्य श्वास प्रश्वास न लेता हुआ उद्गीथ का गान करता है। इसके अतिरिक्त जो अन्य शक्ति की अपेक्षा रखने वाले कर्म हैं, जैसे अग्नि मन्थन, विशेष लक्ष्य तक दौड़ना, दृढ़ धनुष को खींचना इनको भी मनुष्य श्वास प्रश्वास को रोक कर ध्यान द्वारा करता है। इस कारण ध्यान ॐकारोपासना (उद्गीथ) करनी चाहिये। (१-५)

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीतोमिति ह्युद्गायति तस्योपव्याख्यानम् ।१।

देवा वै मृत्योर्बिभ्यतस्त्रयीं विद्यां प्राविशँस्ते छन्दोभिरच्छादयन्यदेभिरच्छादयँस्तच्छन्दसां छन्दस्त्वम् ।२।

तानु तत्र मृत्युर्यथा मत्स्यमुदके परिपश्येदेव पर्यपश्यदृचि

साम्नि यजुषि । ते नु विदित्योर्ध्व ऋचः साम्नो यजुषः स्वरमेव प्राविशन् ।३

यदा वा ऋचमाप्नोत्योमित्येवास्तिस्वत्येवँ सामैव यजुरेष उ स्वरो यदेतदक्षरमेतदमृतमभयं तत्प्रविश्य देवा अमृता अभ्या अभवन् ।४

स य एतदेवं विद्वानक्षरं प्राणोत्येयतदेवारँ स्वर ममृतमभयं प्रविशति तत्प्रविश्य यदसत्ता देवास्तदमृतो भवति ।५

'उद्गीथ रूप ॐ अक्षर को समझकर जो इसकी उपासना करता है, वह यज्ञादि में उसका उच्च स्वर से गान करता है । इसी ॐ कीव्याख्या यहाँ की जाती है । सात्विक वृत्ति रूप देवी ने तामसी वृत्ति रूप मृत्यु से डरते हुए तीन विद्याओं (तीन वेदों) में प्रवेश किया । उन्होंने वेद मन्त्रों द्वारा अपने को आच्छादित कर लिया जिससे वे सब छन्द आच्छादित करने वाले कहलाने लगे । जिस प्रकार मछली पकड़ने वाला धीवर जल के भीतर की मछली को जान लेता है, उसी प्रकार मृत्यु ने देवों को ऋक्, यजु, साम के कर्मों में भी देख लिया । देवताओं को भी मृत्यु की यह बात मालूम हो गई और वे ऋक्, यजु साम के कर्मों को त्याग स्वर (ॐ) में प्रविष्ट हो गये अर्थात् वैदिक कर्मकाण्ड के बजाय शुद्ध परब्रह्म की उपासना करने लगे । जब कोई ऋग्वेद की ऋचाका ज्ञान प्राप्त कर लेता है तब अत्यन्त आदर बुद्धि से ॐ का उच्चारण करता है । इसी प्रकार जब कोई साम और यजु को जान लेता है तो वह भी अत्यन्त आदर बुद्धि से ॐ का उच्चारण करता है । इस प्रकार ॐ यद्यपि स्वर है पर यह ब्रह्म का प्रतीक है और इसलिए उसमें प्रवेश कर लेने से देवगण अमर और अभय हो गये । जो कोई व्यक्ति इस ओंकार की देवगण की तरह अमृत और अभय गुण वाला जान कर उपासना करता है और इस परमात्मा स्वरूप स्वर (ॐ) में प्रवेश कर जाता है वह भी मृत्यु के भय से रहित हो जाता है ।१-५।

अथ खलु य उद्गीथः न प्रणवोः यः प्रणवोः स उद्गीथ इत्यवौ वा आदित्य उद्गीथ एष प्रणव ओमिति ह्येष स्वरन्नेति ।१

एतमु एदाहमभ्यगसिषं तस्मान्मम त्वमेकोऽसीति ह कौषीतकिः पुत्रमुवाच रश्मीस्त्व पर्यावर्तयाद्वहवो वै ते भविष्यन्तौत्यधिदैयतम् ।२

अथाध्यात्मं य एवाय मुख्यः प्राणस्तमुद्गीथ मुपासीतोमिति ह्येष स्वरन्नेति ।

एतमु एवाहमभ्यगासिषं तस्मान्मिम त्वमेकोऽसीति ह कौषोतकि पुत्रमुवाच प्राणां स्त्वं भूमानमभिगाथताद्वहवो वै म भविष्यन्तीति ।४

अथ खलु य उद्गीथः स प्रणवो यः प्रणवः स उद्गीथ इति होतृषवनाद्वैवापि गुद्गोतममुसमाहरतोत्यमुसमाहरताति ।५

अब जो यह प्रसिद्ध उद्गीथ है वही प्रणव (ॐ) है और जो प्रणव है वही उद्गीथ है, अर्थात् ये दोनों वास्तव में एक ही हैं केवल नाम का भेद है । यह भी प्रणव (ॐ) है, क्योंकि वह गमन करता हुआ ॐ का उच्चारण करता है ? कौषितकि ऋषि ने अपने पुत्र को एक समय वताया—मैंने इसी आदित्य का ध्यान किया । इससे तू मेरा एक पुत्र हुआ । तू भी जो सूर्य रश्मियों का इस प्रकार ध्यान करेगा तो तेरे अनेक पुत्र होंगे । (यह ओंकार की अधिदैवत उपासना है) ।२। अव अध्यात्म की दृष्टि से ओंकारोपासना का वर्णन करते हुए कहते हैं कि हमारा जो प्राण है वह श्वास. प्रश्वास के रूप में ओंकार की उपासना ही करता है ।३। कौषीतिक ऋषि ने अपने पुत्र से कहा कि मैंने इस प्राण का ध्यान किया, इससे मुझे तू एक पुत्र प्राप्त हुआ । तू भी इस प्राण रूप परमात्मा का इस भावना से ध्यान कर कि निश्चय ही तेरे बहुत से पुत्र होंगे' ।४। यह जो प्रसिद्ध उद्दीथ (ॐ) है, वही प्रणव है

और जो प्रणव है, वही उद्गीथ (ॐ) है। ज्ञान-दृष्टि से इन दोनों में उद्गाथा द्वारा हुये दोष को भी प्रणव का श्रेष्ठ रीति से प्रयोग करके सुधार देता है ।५।

प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयी विद्या संप्रास्रवत्तामभ्यतपत्तस्या अभितप्ताया एतान्यक्षराणि संप्रास्रवन्त भूर्भुवःस्वरिति ।२।

तान्यभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्य ओंकारः संप्रास्रवत्तद्यथा शंकुना सर्वाणि पर्णानि सतृण्णान्येवमोंकारेण सर्वा वाक्संतृण्णोंकार एवेदँ सर्वमोंकार एवेदँ सर्वम् ।३। (२।२३।२-३)

प्रजापति लोकों का सार ग्रहण करने के उद्देश्य से तप करने लगा। उन ध्यान किये लोकों से ऋग, यजुष्, साम-इन तीन विद्याओं की प्रतीति हुई। जब प्रतीति हुई तब प्रजापति ने इन तीनों का ध्यान किया तो उसमें भूः भुवः स्वः की प्रतीति हुई ।२। जब फिर इन तीनों से सार ग्रहण करने को ध्यान किया तो ॐकार प्रतीत हुआ। यही ब्रह्म है और जिस प्रकार शंकु द्वारा समस्त पत्ता नसों से व्याप्त होता है उसी प्रकार ॐकार द्वारा समस्त वाणी (शब्द) व्याप्त होने से यह परमात्मा से भिन्न नही है। ॐकार ही सब कुछ है ।३।

ॐ असौ वा आदित्यो देवमधु (३।१।१)

ॐकार ही सूर्य देव का मधु है।

मुण्डकोपनिषद्--

ब्रह्म प्राप्ति के लिए महान लक्ष्य की पूर्ति के लिए गुरु शिष्य को प्रेरणा देते हुए कहते है।

धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं
शरं ह्युपासानिशितं सन्धयीत ।
आयम्य तद् भावगतेन चेतसा
लक्ष्यं तदेवाक्षरं सोम्य विद्धि ।
प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।

अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ।

उपनिषद् प्रतिपादित ओंकार रूप धनुष को ग्रहण कर उस पर तप द्वारा तीक्ष्ण हुई वाण को चढ़ाकर खींच और अविनाशी ब्रह्म को लक्ष्य मानता हुआ उसे वेध डाल । प्रणव धनुप और आत्मा वाण है, ब्रह्म उसका लक्ष्य बताया गया है । उसे अप्रमत्त मनुष्य ही वेध सकता है । वाण से उसके लक्ष्य को भेदकर उसी में तन्मय हो जाय ।

ईश्वर के निवास स्थान की ओर संकेत करते हुए उसकी प्राप्ति में एक आवश्यक साधना के रूप में उसे चित्रित किया गया है ।

अरा एव रथनाभौ संयता यत्र नाड्यः
स एषोऽन्तश्चरते बहुधा जायमानः ।
ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानं
स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात् ।

रथचक्र की नाभि में लगे हुए अरों में समस्त देहगत नाड़ियाँ एकत्र हैं । विभिन्न प्रकार से उत्पन्न होने वाला परमेश्वर हृदय के मध्य भाग में निवास करता है । इस परमेश्वर का ॐ के उच्चारण द्वारा ही ध्यान करना चाहिए । अज्ञानान्धकार से परे होने, भवसिन्धु से पार होकर प्रभु-प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है । इस प्रकार तुम्हारा कल्याण होगा ।

माण्डूक्योपनिषद्—

ओमित्येतदक्षरमिदँ सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्य-दिति सर्वमोङ्कार एव । यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव ।

ओंकारमय अविनाशी ब्रह्म है, उसकी महिमा को प्रत्यक्ष लक्षित कराने वाला यह सम्पूर्ण विश्व है । भूत, भविष्यत्, वर्तमान आदि तीनों कालों वाला यह संसार ओंकार ही है और तीनों कालों से परे भी जो अन्य तत्व है वह भी ओंकार ही है ।

सोऽयमात्माध्यक्षरमोंकारोऽविमात्रं पादा मात्रा मात्राश्च

पादा अकार उकारो मकार इति ॥

जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्राऽऽप्तेरादिमत्वा द्वाऽऽप्नोति ह वैः सर्वान्कामानादिश्च भवति स एवं वेद ॥

स्वप्नस्थानस्तैजसउकारो द्वितीया मात्रोत्कर्षादुभयत्वाद्वोत्कर्षति ह वै ज्ञानसतति समानश्च भवति नास्याब्रह्मवित्कुले भवति य एवं वेद ।

सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीया मात्रा मितेरपीतेर्वा मिनोति ह वा इदं सर्वमपीतिश्च भवति य एव वेद ।

अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोंकार आत्मैव संविशत्यात्मनाऽऽत्मान य एव वेदं य एव वेद ।

'यह अक्षर रूप परमात्मा त्रिमात्रिक ओंकार है। अकार उकार और मकार यही इसके पाद हैं और पाद ही मात्रायें हैं। प्रथम मात्रा 'अकार' व्याप्त होने और आदि होने के कारण जागरित स्थान रूप वैश्वानर नामक प्रथम चरण है। इस प्रकार जानने वाला ज्ञानी सम्पूर्ण भोगों को प्राप्त हुआ सबमें प्रमुख हो जाता है। ओंकार की द्वितीय मात्रा 'उत्तर' श्रेष्ठ होने और द्विभावात्मक होने के कारण स्वप्न स्थान रूप तेजस नामक दूसरा चरण है। इस प्रकार जानने वाला मनुष्य ज्ञान को उन्नत करता और समान भाव वाला हो जाता है। उसके वंश में परमेश्वर को न जानने वाला कोई नहीं होता। ओंकार की तृतीय मात्रा 'मकार' मापक और विलीन करने वाली होने से सुषुप्त स्थान वाला प्राज्ञ नामक तृतीय चरण है। इस प्रकार जानने वाला ज्ञानी इस सम्पूर्ण विश्व के परिणाम का ज्ञाता होकर इस सब को स्वयं में निहित करने वाला हो जाता है। मात्रा रहित ओंकार अव्यवहार्य, प्रपंचातीत एवं कल्याणरूप है। यही ब्रह्म का चतुर्थ चरण है। जो इस प्रकार जानता है वह आत्मज्ञानी आत्मा के द्वारा ही परब्रह्म में लीन हो जाता है।

प्रश्नोपनिषद्–

पंचम प्रश्न में महर्षि पिप्पलाद सत्यकाम को ओंकार के ध्यान और साधना के सपरिणामों का अनुभवपूर्ण वर्णन करते हुए कहते हैं—

अथ हैनं शैव्यः सत्यकामः पप्रच्छः स यो ह वं तत् भागवन्मनुष्येषु प्रयणान्तमोंकारमभिध्यायोत। कतमं वाव कतेन लोक जयनीति।१

तमै स होवाच एतद्वै सत्यकाम परंचापरं च ब्रह्म यदोंकारः। तस्माद्विद्वानेतेनैवातत नेनैकतरमन्वेति।२

स यद्येमात्रमभिध्यायेत स तेनैवं सवेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभिसम्पद्यते। तमृचो मनुष्यलोक मुपनयन्ते स तत्र तपसा ब्रह्मचर्येग श्रद्धया सम्पन्नो महिमानमनुभवति।३

अथ यदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नोयते सोमलोकम्। स सोमलोके विभूतिमनुभूत पुनरवर्तते।४

यः पुनरेतं त्रिमात्रेणोमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत स तेजसि सूर्ये सम्पन्नः यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यत एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः स सामभिरुन्नोयते ब्रह्मलोकं एतस्मांजीवघनात् परात्परं पुरिशयं पुरुषमोक्षते तदेतौ श्लोकौ भवतः।५

तिस्रो मात्राः मृत्युमृत्यः प्रपुक्ता
अन्यौन्यसक्ता अनविप्रयुक्ताः।
क्रियासु बाह्याभ्यन्तरमध्यमासु
सम्यक्प्रयुक्तासु न कम्पते यः।६
ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्ष
मामभिर्यत् तत्कवयो वेदयन्ते।
तमोंकारेणैवातयनेनात्वेवि विद्वान्
यतच्छान्तमजरभमृतमभयं परं चेति।७

"इसके पश्चात् शिवि-पुत्र सत्यकाम ने महर्षि पिप्पलाद् से प्रश्न किया—हे भगवान् ! जो मनुष्य शरीरान्त होने तक ओंकार का भले प्रकार ध्यान करता है, वह उसके द्वारा किस लोक पर विजय प्राप्त करता है, यह बताइये ? ।१। महर्षि बोले—हे सत्यकाम ! यह ओंकार परब्रह्म है और यही अपरब्रह्म भी है, ऐसा जानने वाला मनुष्य इस एक प्रयास से ही ब्रह्म के एकरूप को पा लेता है ।२। यदि वह एक मात्रा वाले ओंकार का ही ध्यान करे तो वह उसके द्वारा शीघ्र ही पृथ्वी पर प्रकट हो जाता है। ऋग्वेद ऋचाएँ उसे मनुष्य देह की प्राप्ति कराती हैं। ब्रह्मचर्य से युक्त एवं श्रद्धान्वित होकर महिमायुक्त होता है ।३। यदि दो मात्राओं वाले ओंकार का ध्यान करे तो चन्द्रलोक की प्राप्ति होती है। यजुर्वेद के मन्त्र उसे वहाँ ले जाते हैं। वह वहाँ का सुख भोगकर फिर इस मनुष्य लोक में आ जाता है ।४। त्रिमात्रिक ओंकार से परमेश्वर का निरन्तर ध्यान करने वाला पुरुष तेजोमय सूर्य लोक को प्राप्त होता है। सर्प के केंचुरी से छूटने के समान वह पापों से छूटकर सामवेद ब्रह्मलोक में पहुँचाया जाता है। वह इन प्राणियों से अत्यन्त श्रेष्ठ परमेश्वर से साक्षात्कार करता है। आगे के श्लोक इसका प्रतिपादन करते हैं ।५। ओंकार की तीन मात्रायें परस्पर सम्बन्ध रखती हुई प्रयुक्त होने पर मनुष्य दृढ़ संकल्प होता हुआ परमेश्वर का ज्ञानी बन जाता है ।६। एकमात्रिक उपासना साधक को ऋचाओं द्वारा मृत्युलोक प्राप्त कराती है, द्विमात्रिक साधना यजुमन्त्रों द्वारा चन्द्रलोक में पहुँचाती है और ओंकार का उपासक सामश्रुतियों द्वारा ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है। उस ब्रह्मलोक को केवल ज्ञानी पुरुष ही जानते हैं। बुद्धिमान साधक ओंकार के ध्यान द्वारा ही परमेश्वर को प्राप्त कर लेता है। वह परमेश्वर, अजर, अमर, निर्भीक शान्त एवं सर्वश्रेष्ठ है ।७।

कठोपनिषद्—

यम ने नचिकेता को ब्रह्मविद्या देते हुए कहा है—

सर्वे वेदा यत् पदमामनन्ति
तपाँसि सर्वाणि च यद् वदन्ति ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्तेदँ सग्रहेण ब्रवीम्योमित्येत् ।। (१।२।१५)

जिस परम पद का सम्पूर्ण वेद प्रतिपादन करते है, जिस पद का सम्पूर्ण तप आभास कराते हैं, जिस पद की कामना वाले साधक ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, वह पद मैं तुम्हें संक्षेप में कहता हूँ । उसका ॐ एक अक्षर मन्त्र है ।

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम् ।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य यत् ।
एतदालम्बनं श्रेष्ठ एतदालम्बनं परम् ।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ।
(१।२।१६-१७)

यही अक्षर ब्रह्म है, यही परब्रह्म है, अतः इस अक्षर को जानकर जिसकी इच्छा करे, वही उसे प्राप्त हो जाता है । यही एक श्रेष्ठ आधार है, यही परम आधार है, इस आधार का जानने वाला व्यक्ति ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित होता है ।

तैत्तिरीयोपनिषद्—

शिक्षा-वल्ली अष्टम अनुवाद में कहा है—

ओमिति ब्रह्म । ओमितीदँ सर्वम् । ओमित्येतदनुकृतिह स्म वा अप्य श्रावयेत्समश्रवयन्ति । ओमिति सामानि गायन्ति । ॐ ओमिति शस्त्राणि शँसन्ति । ओमित्यध्वर्युः । प्रतिगरं प्रतिगृणहाति । ओमिति ब्रह्मा प्रसोति । ओमित्पाग्नहोत्रमनुजानाति । ओमिति ब्राह्मणः प्रवक्ष्यन्नाह ब्रह्मोपाप्नवानीति । ब्रह्म वोपाप्नोति ।

'ओ३म' ब्रह्म है, ओ३म् ही विश्व है, ओ३म ही अनुकृति है । गुरुदेव ! सुनाओ । ओ३म् से ही साम गायक, सामगान करते हैं, ओ३म्-ओ३म्

कहते हुए ही शास्त्र पढ़े जाते हैं, ओ३म् से ही अध्वर्यु प्रतिगर मन्त्र प्रारम्भ करता है, ॐ कहकर ही ब्रह्मा यज्ञ की अनुमति देता है, ॐ से ही अग्निहोत्र की आज्ञा दी जाती है। ॐ का उच्चारण करता हुआ अध्ययन प्रारम्भ करने वाला ब्राह्मण ब्रह्म को प्राप्त करने की बात कहता है। ॐ के प्रभाव से ब्रह्म की प्राप्ति होती है।

'शिक्षावल्ली' चतुर्थ अनुवाक में प्रार्थना के रूप में विवेचन है—

यश्छन्दसामृषो विश्वरूपः। छन्दोभ्योऽध्मृतात् सम्बभूव। स मेन्द्रो मेधया स्पणोतु।

'जो प्रणव वेदों में सर्वोत्तम है, विश्वरूप और अमृत से युक्त है, वेदों से मुख्य होकर निकला है, वह इन्द्र रूप ईश्वर होकर मुझे मेधावान् बनावे।'

प्रणवोपनिषद्—

रहस्यं ब्रह्मविद्यायां धृताग्नि संप्रचक्षसे।१
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म यदुक्त ब्रह्मवादिभिः।
शरीरं तस्य वक्ष्यामि स्थानकालत्रयं तथा।२
तत्र देवास्त्रयः प्रोक्ता लोका वेदास्त्रयोऽग्नयः।
तिस्रो मात्रार्धमात्रा चं प्रत्यक्षस्य शिवस्य तत्ः।३
ऋग्वेदो गार्हपत्यं पथिवीं ब्रह्म एव च।
अकारस्य शरीरं तु व्याख्यात् ब्रह्मवादिभिः।४
यजुर्वेदोऽन्तरिक्ष च दक्षिणाग्निस्तथैव च।
विष्णुश्च भगवान् देव उकारः परीकीर्तितः।५
सामवेदस्तथा द्यौश्चाहवनीयस्थैव च।
ईश्वरः परमो देवो मकारः परिकीर्तितः।६

ब्रह्मवेत्ताओं ने जो 'अ' को एकाक्षर ब्रह्म कहा, उसके शरीर तथा कालत्रय का अब निरूपण किया जाता है। उस अकार में तीन देव तीनलोक, वेदत्रय तथा तीन अग्नियाँ कही गई हैं, साथ ही तीनों मात्रा अर्धमात्रा भी उसमें निहित है क्योंकि वह उस परम शिवतत्व का ही

स्वरूप है। ऋग्वेद, गार्हपत्य (अग्नि), पृथिवी व ब्रह्म ये तत्व ब्रह्म-वेत्ताओं ने 'ॐ' के तीन अक्षर 'अ' उ, म्' जो पहला अक्षर 'ॐ' है उसमें स्थित बताये हैं। इन सब का स्वरूप वह 'अ' है। यजुर्वेद आकाश, दक्षिणाग्नि तथा देवश्रेष्ठ भगवान् विष्णु का स्वरूप 'उ'कार को कहा गया है। सामवेद, स्वर्ग आहवानीय (अग्नि), परमदेव शङ्कर का स्वरूप 'म'कार को बताया गया है।१-६।

अथर्वशिरोपनिषद्–

देवगण रुद्रलोक में भगवान् रुद्र की स्तुति करते हुए कहते हैं—

हृदिस्था देवताः सर्वा हृदि प्राणाः प्रतिष्ठिताः। हृदि त्वमसि यो नित्यं तिस्त्रो मात्रा तस्योत्तरताः शिरो दक्षिणतः पादौ य उत्तरतः परन्तु सः। सः ओंकारः य ओंकार स प्रणवः य प्रणवः सर्वव्यापी सोऽनन्तः।

वे तीन मात्रायें हैं और वह उनसे परे है उत्तर में उसका शिर है, दक्षिण में उसके पाद हैं जो उत्तर में है वह ओंकार रूप है जो ओंकार है वह प्रणव है जो प्रणब है वही सर्वव्यापी है और जो सर्वव्यापी है वही अनन्त है।

ओंकार व प्रणव के नामों के कारण का स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया है—

अथ कस्मादुच्यत ओंकारो यस्मादुच्चार्यमाण एव प्राणा-नूर्ध्वमुत्कामति तस्मादुच्यते ओंकारः। अथ कस्यादुच्यते प्रणवः यस्मादुच्चार्यमाण एव ऋग्यजुः सामाथर्वांगिरस ब्रह्मब्रह्माणेभ्यः प्रणामयति नामयति च तस्मादुच्यते प्रणवः।

अब ओंकार किस कारण से कहा जाता है? इसलिए कि उसका उच्चारण करने में प्राणों को ऊपर खींचना पड़ता है, इसी से आपको ओंकार कहा जाता है प्रणव कहने का कारण यह है कि उसका उच्चा-रण करते समय ऋग् यजु, साम, अथर्व, अङ्गिरस, ब्रह्म ब्राह्मण को

प्रणाम करने में आता है, इसलिए आपका नाम प्रणव है।

ध्यानबिन्दूपनिषद्—

ओमित्येदाक्षरं ब्रह्म ध्येयं सर्वं मुमुक्षुभिः।
पृथिव्याग्निश्च ऋग्वेदो भूरित्येव पितामहः ।।९
अकारे तु लयं प्राप्ते प्रथमे प्रणवांशके।
अन्तरिक्ष यजुर्वायूभुर्वो विष्णुर्जनार्दनः ।।१०
उकारे तु लय प्राप्ते द्वितीये प्रणवांशके।
द्यौः सूर्यः समावेदश्च स्वरित्येव महेश्वरः ।।११
मकारे तु लयं प्राप्ते तृतीये प्रणवांशके।
अकारः पीतवर्णः स्याद्रजोगुण उदीरितः ।।१२
उकारः सात्विकः शुक्लो मकारः कृष्णतामसः।
अष्टाङ्गं च चतुष्पादं त्रिस्थानं पञ्चदैवतम् ।।१३

सब मोक्षाभिलाषी व्यक्ति ओंकार रूप एकाक्षर ब्रह्म का ही ध्यान करते हैं। इस प्रणव के प्रथम अंश 'अकार में पृथिवी, अग्नि, ऋग्वेद, भूः तथा पितामह का लय होता है। दूसरे अंश 'उकार तीसरे अंश म'कार में द्यौ, सूर्य, सामवेद, स्वर्लोक और महेश्वर का लय होता है। 'अ'कार पीले रङ्ग और रजोगुण वाला कहा जाता है, 'उकार श्वेत वर्ण और सतोगुण वाला और 'म'कार कृष्णवर्ण तथा तामस गुण वाला है। इस प्रकार ओंकार आठ, अङ्ग चार, चार पाद तीन नेत्र और पाँच दैवत वाला होता है।९-१३।'

ओङ्कारं यो न जानाति ब्राह्मणो न भवेत्तु सः।
प्रणवो धनुः शरो ह्यात्सा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।।१४
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयीं भवेत्।
निवर्तन्ते क्रियाः सर्वास्तस्मिन्दृष्टे परावरे ।।१५
ओङ्कारप्रभवा देवा ओङ्कारप्रभवाः स्वराः।
ओङ्कारप्रभवं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।।१६
ह्रस्वों दहति पापानि दीर्घः संपत्प्रदोऽव्ययः।

अर्धमात्रासमायुक्तः प्रणवो मोक्षदायकः ।।१७
तैलधारामिवाच्छिन्नं दीर्घघण्टानिनादवत् ।
अवाच्यं प्रणवस्याग्रं यस्तं वेद स वेदवित् ।।१८
हृत्पद्मकर्णिकामध्ये स्थिरदीपनिभाकृतिम् ।
अंगुष्ठमात्रमचलं ध्यायेदोंकारमीश्वरम् ।।१९
इडया वायुमापूर्य पूरयित्वोदरस्थितम् ।
ओङ्कारं देहमध्यस्थं ध्यायेज्ज्वालावलीवतम् ।।२०
ब्रह्मा पूरक इत्युक्तो विष्णुः कुम्भकं उच्यते ।
रेचा रुद्र इति प्रोक्तः प्राणायामस्य देवताः ।।२१

"इस प्रकार से ओंकार को जो नहीं जानता वह ब्राह्मण नहीं माना जा सकता। यह प्रणव धनुष है, आत्मा बाण है और ब्रह्म लक्ष्य है। बाण से सावधानी के साथ तन्मय होकर लक्ष्य को वेध करने और 'अचर' को जीत लेने से सब क्रियाओं से निवृत्ति हो जाती है।१४-१५। ऊँकार से देवता हुए ओंकार से स्वर हुए और ओंकार से ही तीनों लोक के समस्त चराचर हुए।१६। इसका ह्रस्व अंश पापों को हरता है, दीर्घ अव्यय स्वरूप सम्पत्ति को देता है, इस प्रकार अर्धमात्रा युक्त प्रणव मोक्षदायक है।१७। तेल की अविच्छिन्न धार के समान, घण्टा के दीर्घ निनाद के समान नाद के अग्र में वाच्य रहित प्रणव है, उसे जानने वाला ही वेदज्ञ है।१८। हृदयरूपी कमल की कर्णिका में दीपशिखा तुल्य, अंगुष्ठमात्र आकार के ओंकार रूप ईश्वर का ध्यान करे।१९। इढ़ा (बाँयी नसिका) से वायु को उदर में भरे और देह के मध्य में ज्वालामय ओंकार का ध्यान करे। पूरक को ब्रह्मा और कुंम्भक को विष्णु और रेचक को रुद्र कहा गया है, ये तीनों प्राणायाम के देवता हैं।२०-२१।

आत्मनमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् ।
ध्याननिर्मथनाभ्यासादेवं पश्येन्निगूढवत् ।।२२
ओङ्कारध्वनिनादेन वायोः संहरणान्तिकम् ।

यावद्बलं समादध्यात्सम्यङ् नादलयावधि ।२३।
गमायमस्थ गमनादिशून्यमोंकारमेकं रविकोटिदीप्तम् ।
पश्यन्ति ये सर्वजनान्तरस्थं हंसात्मकं ते विरजा भवन्ति।२४

"आत्मा को नीचे की अरणी के रूप में ग्रहण करके प्रणव के ऊपर की अरणी बनावें। इन दोनों के मंथन रूप ध्यानावस्था से गूढ़ तत्व का दर्शन करे ।२२। ॐकार की ध्वनि के नाद सहित रेचक का अन्त होने पर नाद का लय हो जाता है। इस प्रकार का ध्यान अपनी सामर्थ्य के अनुसार करें ।२३। गमनागमन में स्थित और गमनादि से शून्य ऐसे करोड़ों सूर्यों की दीप्ति के सदृश्य, सबके हृदय में रहने वाले हंसात्मक ऊँकार का जो दर्शन करते हैं, वे निष्पाप हो जाते हैं ।२४।

ब्रह्मोपनिषद्–

ओंकार द्वारा आत्मदर्शन की विधि का संकेत करते हुए कहा गया है—

आत्मानमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् ।
ध्याननिर्मथनाभ्यासाद्देवं पश्येन्निगूढवत् ।१८

आत्मा को नीचे की अरणि और ऊँकार को ऊपर की अरणि बनाकर ध्यानरूपी मन्थन के अभ्यास द्वारा इस प्रकट (गुप्त) आत्मा का साक्षात्कार करना चाहिए ।१८।

ब्रह्मविद्योपनिषद्–

कांस्यघण्टानिनादस्तु यथा लीयति शान्तये ।
ओङ्कारस्तु तथा योज्यः शान्तये सर्वमिच्छता ।१२

कांसे के घण्टा का शब्द जिस प्रकार शान्ति में लय हो जाता है उसी प्रकार ऊँकार की योजना द्वारा समस्त इच्छाएँ शान्त हो जाती हैं ।१२।

योग साधना में ओंकार को एक आवश्यक क्रिया मानकर विधि का विवेचन करते हुए कहा गया है।

बन्धमुद्रा कृता येन नासाग्रे तु स्वलोचने ।
अकारे वह्निरित्याहुरुकारे हृदि संस्थितः ।६९
मकारे च भ्रुवोर्मध्ये प्राणशक्त्या प्रबोधयेत् ।
ब्रह्मग्रन्थिरकारे च विष्णुग्रन्थि हृदि स्थितः ।७०

प्रथम बन्ध मुद्रा का अभ्यास करे, नासाग्र और अपने नेत्रों में 'अ'कार अग्नि कही गयी है, हृदय स्थान में 'उ'कार अग्नि होती है और भ्रकुटियों के मध्य में 'म'कार है। इनमें प्राणशक्ति को संलग्न करें। ब्रह्म ग्रन्थि 'उ'कार नासाग्र और नेत्र में तथा विष्णु ग्रन्थि हृदय में स्थित है।६९-७०।

रुद्रग्रन्थिभ्रुवोर्मध्ये भिद्यतेऽक्षरवायुना ।
अकारे संस्थितो ब्रह्मा उकारे विष्णुरास्थितः ।७१
मकारे संस्थितो रुद्रस्ततोऽस्यान्तः परात्परः ।
कण्ठं संकुच्य नाड्यादौ स्तम्भिते येन शक्तितः ।७२
रसना पीड्यमानेयं षोडशीवोर्ध्वगामिनी ।
त्रिकूटं त्रिविधं चैव गोलाखं निखरं तथा ।७३
त्रिशंखं वज्रमोंकारमूर्ध्वनालं भ्रुवोर्मुखम् ।
कुण्डलीं चालयन्प्राणान्भेदन्शशिमण्डलम् ।७४

"रुद्रग्रन्थि भ्रकुटियों के मध्य में स्थित है और वह अक्षर वायु द्वारा भेदन की जाती है। 'अ'कार में ब्रह्मा, 'उ'कार में विष्णु तथा 'म'कार में रुद्र का स्थान है, उसके अन्त में परात्पर है। कण्ठ का संकोचन करके नाड़ी शक्ति स्तम्भित करे। फिर जिह्वा को दबाकर सोलह आधार वाली, ऊर्ध्वगामिनी, त्रिकुट वाली तीन प्रकार वाली, ब्रह्मरंध्र को जाने वाली अत्यन्त सूक्ष्म सुषुम्ना नाड़ी को तथा त्रिशंख, वज्र, ओंकार युक्त, ऊर्ध्व नाल, भ्रकुटियों की तरफ जाने वाली कुण्डलिनी शक्ति और प्राणों को चलित करके शशि मण्डल का भेदन करे।७१-७४।"

नादबिन्दूपनिषद्—

अकारो दक्षिणः पक्ष उकारस्तूत्तरः स्मृतः ।
मकार पुच्छमित्याहुरर्धमात्रा तु मस्तकम् ॥१
पादादिकं गुणास्तस्य शरीरं तत्वमुच्यते ।
धर्मोऽस्य दक्षिणश्चक्षुरधर्मोऽथापरः स्मृतः ॥२
भूर्लोकः पादयोस्तस्य भुवर्लोकस्तु जानुनि ।
भुवलोकः कटीदेशे नाभिदेशे महिर्जगत् ॥३
जनोर्लोकस्तु हृद्देशे कण्ठे लोकस्तपस्ततः ।
भ्रुवोर्ललाटमध्ये तु सत्यलोको व्यवस्थितः ॥४
सहस्रार्णमती वाऽव मन्त्र एव प्रदर्शितः ।
एवमेतां समारूढो हंसयोगविचक्षणः ॥५

यदि प्रणव को हम हंस मानें तो 'ओंकार' उसका दाहिना पंख, 'उकार' बांया पंख, 'मकार' उसकी पूंछ और अर्द्धमात्रा सिर है। तब सतोगुण शरीर और रजोगुण तथा तमोगुण दोनों पैर कहलाएंगे। लोकों की स्थिति इस प्रकार होगी कि नाभि देश में महर्लोक, कटिदेश में स्वर्लोक, जानुओं में भुवर्लोक और पैरों में भूलोक होगा। इसी प्रकार से जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक उसके हृदय, कण्ठ और ललाट व भौहों के बीच में स्थित होंगे। इसी प्रकार प्रणव हंस पर चढ़कर, उसके अनुष्ठान व ध्यान की विधि में दक्ष साधक मनन व चिन्तन करता हुआ हजारों पापों से निवृत्त होकर मोक्षपद को प्राप्त हो जाता है।१-५।

न भिद्यते कर्मचारैः पापकोटिशतैरपि ।
अग्नेयो प्रथमा मात्रा वायव्येषा तथा परा ॥६
भानुमण्डलसङ्काशा भवेन्मात्रा तथोत्तरा ।
परमा चार्धमात्रा या वारुणीं तां बिदुर्बुधा ॥७
कालत्रयेऽपि यस्येमा मात्रा नूनं प्रतिष्ठिताः ।
एष ओंकार आख्यातो धारणाभिर्निबोधतः ॥८

घोषिणी प्रथमा मात्रा विद्युन्मात्रा तथा परा ।
पतङ्गिनी तृतीया स्याच्चतुर्थी वायुवेगिनी ।।९
पंचमी नामधेया तु षष्ठी चैन्द्र यभिधीयते ।
सप्तमी वैष्णवी नाम अष्टमी शाङ्करीति च ।१०
नवमी महती, नाम घृतिस्तु दशमी मता ।
एकादशी भवेन्नारी ब्राह्मी तु द्वादशी परा ।११
प्रथमायां तु मात्रायां यदि प्राणैर्वियुज्यते ।
भारतेवर्षे राजाऽसौ सार्भभौम: प्रजायते ।१२
द्वित्तीयायां समुत्कान्तो भवद्यक्षो महात्मवान् ।
विद्याधरस्तृतीयायां गन्धर्वस्तु चतुर्थिका ।१३
पञ्चम्यामथ मात्रायां यदि प्राणैर्वियुज्यते ।
उषितै: सह देवत्वं सोमलोके महीयते ।१४
षष्ठयामिन्द्रस्य सायुज्यं सप्तम्यां वैष्णवं पदम् ।
अष्टम्यां व्रजने रुद्रं पशूनां च पति यथा ।१५
नवम्यां तु महर्लोकं दशम्यां तु ध्रुवं व्रजेत् ।
एकादश्यां तपोलोकं द्वादश्यां ब्रह्म शाश्वतम् ।१६

'ओंकार के अग्नि देवता हैं । अग्नि के मण्डल की तरह ही इसका रूप है और आग्नेयी ही उसकी पहली मात्रा है । 'उकार' के वायु देवता हैं । वायु के मण्डल की तरह ही उसका रूप है और वायव्या ही उसकी दूसरी मात्रा है । 'मकार' के देवता सूर्य हैं, सूर्य के मण्डल की तरह उसका रूप है और यह तीसरी उत्तर-मात्रा है । चौथी अर्धमात्रा वारुणी के देवता वरुण हैं । इन सभी प्रकार की मात्राओं में तीन-तीन सुन्दर मुख हैं । इसलिए प्रणव को द्वादशकलात्मक कहा जाता है । धारणा, ध्यान और समाधि ही उसे जानने के साधन हैं । प्रणव की बारह प्रकार की कलाओं में मात्राओं के नाम इस प्रकार कहे जाते हैं— पहली-घोषणी, दूसरी-विद्युन्मात्रा, तीसरी-पतंङ्ग, चौथी-वायुवेगिनी, पांचवीं-नामधेया, छठी-ऐन्द्री, सातवीं-वैष्णवी, आठवीं-शाकरी, नवीं-

महती, दसवी ध्रुवा, ग्यारहवीं-मौनी और बारहवीं-ब्राह्मी। यदि पहली मात्रा में साधक का शरीर छूट जाता है तो भारत के चक्रवर्ती सम्राट के रूप में शरीर धारण करता है। दूसरी मात्रा में शरीर छूटने पर यशस्वी यक्ष बनता है, तीसरी मात्रा में विद्याधर और चौथी में गंधर्व का जन्म लेता है। पाँचवीं मात्रा में प्राणान्त होने पर उषित नाम के देवताओं के साथ निवास करता हुआ चन्द्रलोक में विभूषित होता है। छठी मात्रा में प्राणों का उत्क्रमण होने पर इन्द्रदेव का सायुज्य मिलता है। सातवीं मात्रा में विष्णु भगवान् का पद प्राप्त होता है। आठवीं मात्रा में प्राणों का वियोग होने पर शंकर भगवान् का सामीप्य मिलता है। नवीं मात्रा में महर्लोक, दसवीं में ध्रुवलोक ग्यारहवीं में तपोलोक और बारहवीं मात्रा में प्राणान्त होने पर साधक ब्रह्मलोक में स्थान प्राप्त करता है।६-१६।

अन्तरगतरंगस्य रोधे वेलायतेऽपि च।
ब्रह्मप्रणवसनिनादो स्याज्ज्योतिर्मयात्मकः।४६
मनस्तत्र लयंयाति तद्विष्णोः परमं पदम्।

"नाद के प्रणव में संलग्न होने पर वह ज्योतिर्मय हो जाता है। उस स्थिति में मन का लय हो जाता है। उसी को विष्णु भगवान् का परमपद कहते हैं।४६।"

नारदपरिव्राजकोपनिषद्—

अष्टमोपदेश (१.८) में आवागमन के चक्र से छूटने के उपाय का प्रतिपादन करते हुए ब्रह्माजी ने कहा है—

अथ हैनं भगवन्तं परमेष्ठिनं नारदः पप्रच्छ। संसारतारकं प्रपन्नो ब्रूहीति। तथेति परमेष्ठी वक्तुमपचक्रममे। ओममिति ब्रह्मेति व्यष्टिप्रसमिष्टकारेण। का व्यष्टिः का समष्टिः। संहारः प्रणवः। सृष्टिप्रणवश्चान्तर्वसिश्चोभात्सकत्वात्त्रिविधिः। ब्रह्मप्रणवोऽन्त प्रणवो व्यावहारिकप्रणवः। बाह्यप्रणव आर्यप्रणव उभयात्मको विराट्प्रणवः। संहारप्रणवो ब्रह्मप्रणवोऽर्धमात्राप्रणव।१।

नारद जी ने प्रजापति ब्रह्मा जी से प्रश्न किया—हे भगवान्। कौन-सा मन्त्र ऐसा है जो जरा-मरण रूप समुद्र से पार कर सकता है ? ब्रह्माजी बोले—ऐसे प्रभाव वाला ब्रह्म स्वरूप ऊँकार ही तारक मन्त्र है। इसका ही 'व्यष्टि और समष्टि में चिन्तन करे।' नारद जी के 'व्यष्टि और समष्टि' के सम्बन्ध में जिज्ञासा प्रकट करने पर ब्रह्मा जी पुनः बोले—व्यष्टि और समष्टि ब्रह्म-प्रणव के ही अङ्क हैं एक ब्रह्म प्रणव, संहार-प्रणव, सृष्टि प्रणव और उभयात्मक प्रणव इन तीनों भेदों वाला है। उभयात्मक प्रणव के बाह्याभ्यांतरिक भेद हैं। इसलिए उभयात्मक कहा गया है। ब्रह्म प्रणव का एक व्यावहारिक प्रणव भी है। व्यष्टि प्रणव को ही बाह्य प्रणव कहा गया है। एक आर्य प्रणव और है। उभयात्मक प्रणव को विराट् प्रणव भी कहते हैं। संहरादि चार मात्राओं वाले स्थूल आदि भेद से युक्त प्रणव को अर्द्धमात्रा प्रणव भी कहा जाता है।१।

ओमति ब्रह्म ओमित्येकाक्षरमन्त्र प्रणवं विद्धि। स चाष्टधा भिद्यते। अकारोकारो मकारअर्धमात्रा नादबिन्दुकला शक्तिश्चेति। तत्र चत्वारः, अकारश्चायुतावयवान्वित उकारः सहस्रावयवान्वितो मकारः शतावयवोपेतोऽर्धमात्राप्रणवोऽनन्ता वयवाकारः। सगुणो विराट्प्रणवः संहारो निर्गुणप्रणव उभयात्मकोत्पत्तिप्रणवः। यथा प्लुत बिराट्प्लुतप्लुतः संहार।२।

ओ३म् ब्रह्म है। यही एकाक्षर मन्त्र है तथा इसी को अन्त प्रणव माना गया है। अकार, उकार, मकार, अर्द्धमात्रा, बिन्दु, नाद, कला और शक्ति इस प्रकार आठ भागों में विभक्त हैं। चार मात्रा का परिलक्षित होने वाले प्रणव की प्रत्येक मात्रा के भी अनेकानेक भेद हैं। अकार मात्रा के ही दस सहस्र अवयव हैं। उकार के एक सहस्र और मकार के शत अवयव कहे गये हैं। अर्द्धमात्रा-प्रणव भी अनन्त अवयवों से सम्पन्न है। विराट् प्रणव सगुण और संहार प्रणव निर्गुण माना गया है। सृष्टि प्रणव सगुण-निर्गुण दोनों से ही सम्बन्धित है। विराट्

प्रणव अकारादि चार मात्राओं की समष्टि वाला है, तथा संहार प्रणव चतुर्थमात्रात्मक अर्द्धमात्रा रूप वाला है ।२।

इसी उपदेश (२१-२३) में ब्रह्म प्रणव का निरूपण करते हुए कहा गया है—

विभक्तो ह्ययमादेशो न स्थूलप्रज्ञामन्वहम् ।
न सूक्ष्मप्रज्ञामत्यन्तं मा प्रज्ञं न कश्चिन्मुने ।२१
नैवाप्रज्ञ नोभयतः प्रज्ञं न ज्ञामान्तरम् ।
नाप्रज्ञंमपि न प्रज्ञाचनं चादृष्टमेव च ।२२

तदलक्षणमग्राह्यं यदव्यवहार्यमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते । स ब्रह्मप्रणवः स विज्ञेयो नापरस्तुरीयः सर्वत्र भानुवन्तुमक्षणामाधारः स्वयंज्योतिर्ब्रह्माकाशः सर्वदा विराजते परब्रह्मत्वात् । इत्युपनिषत् ।।२३

फिर श्रुति स्पष्ट कहती है कि जो न स्थूल का ज्ञाता है और न सूक्ष्म का ज्ञाता है तथा जो इन दोनों का ही ज्ञाता नहीं है, जो अधिक या न्यून नहीं जानता, बाहर का ज्ञाता न भीतर का ज्ञाता है, जो प्रज्ञान रूप नहीं है, जो नेत्रों से नहीं देखा जाता, क्योंकि उसका कोई रूप नहीं है । जो न पकड़ा जा सकता है और न व्यवहार में आ सकता है । जो न किसी परिभाषा में आता है और न ध्यान में आता है जिसका स्वरूप आत्म सत्ता का विश्वास ही है तथा जो प्रपञ्च से परे है, वह अद्वितीय एवं परम कल्याणमय तत्व ही उस ब्रह्म का चतुर्थ-पाद है। इसी को ज्ञानीजन ब्रह्म-प्रणव कहते हैं । मोक्ष की कामना करने वाले पुरुष का आश्रयभूत यही है । वह परम ब्रह्म होने से ही प्रतिष्ठित है । वही स्वयं प्रकाश एवं आकाश स्वरूप है ।२१-२३।

अक्ष्युपनिषद्—

साधना में भावना की आवश्यकता पर बल देते हुए कहा गया है—

वाच्यवाचकताऽभेदात् भेदेनानुपलब्धितः ।
ओंकारमात्र विश्वः स्यादुकारस्तैजस स्तथा ।।४३
प्राज्ञो मकार इत्येवं परिपश्येत् क्रमेण तु ।
समाधिकालात् प्रागेव विचिन्त्यातिप्रयत्नतः ।।४४
स्थूलसूक्ष्मक्रमात् सर्वं चिदात्मनि विलोपयेत् ।
चिदात्मानं नित्यशुद्धबुद्धमुक्तसदद्वयः ।।४५
परमानन्दसन्दोहो वासुदेवोऽयममिति ।
आदिमध्यावसानेषु दुःखं सर्वमिदं यतः ।।४६
तस्मात् सर्वं परित्यज्यै तत्वनिष्ठो भवानघ ।
अविद्यातिमिरातीतं सर्वभासाविवर्जितम् ।।४७
आनन्दममलं शुद्धं मनोवाचामगोचरम् ।
प्रज्ञानमथमानन्दं ब्रह्मास्मीति विभावयेत् ।।४८

(२।४३-४८)

"विश्व, प्राज्ञ और तेजस आदि के रूप में यह सम्पूर्ण संसार 'ॐकार' ही है। इसमें वाच्य-वाचक भेद नहीं होता और भेद हो तो इसकी प्राप्ति सम्भव नहीं है ॐकार की प्रथम मात्रा 'ओंकार' 'विश्व' 'उ'कार 'म'कार प्राज्ञ हैं समाधि से पहले ही अत्यन्त प्रयत्न द्वारा इसका चिन्तन करे और स्थूल-सूक्ष्म के क्रम से सब कुछ चिदात्मा में लीन करे। चिदात्मा को अपना ही रूप मानते हुए, ऐसा दृढ़ भाव करे कि 'मैं ही नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सत्तामात्र, अद्वितीय परमानन्दमय वासुदेव तथा प्रणवरूप हूँ।' यह सम्पूर्ण प्रपंच आदि, मध्य' अन्त के रूप से दुःखमय है, इसलिए सर्वत्यागी होकर तत्वनिष्ठता प्राप्त करे। मैं आनन्द रूप, निर्मल, विशुद्ध, अविद्या, रहित, आभास रहित, वाणी द्वारा अगम्य, प्रज्ञानधन ब्रह्म हूँ ऐसी भावना करें।" ।४३-४८।

शुक्ररहस्योपनिषद्—

निम्न उद्धरण से स्पष्ट है कि प्राचीन काल में वेदाध्ययन

आरम्भ कराते समय गायत्री के साथ प्रणव के मन्त्रोपदेश का भी विधान था।

देवर्षयो ब्राह्मणं संपूज्य प्राणिपत्य पप्रच्छुर्भगवन्नस्माकं रहस्योपनिषद ब्रूहीति। सोऽब्रवीत्।

पुरा व्यासो महातेजाः सर्ववेदतपोनिधिः।
प्राणिपत्य शिवं साम्बं कृताञ्जलिरुवाच ह ॥१

श्री वेदव्यास उवाच—

देवदेव महाप्राज्ञ पाशच्छेददृढव्रत।
शुकस्य मम पुत्रस्य वेदसंस्कारकर्मणि ॥२
ब्रह्मोपदेशकालोऽयमिदानीं समुपस्थितः।
ब्रह्मोपदेशः कर्त्तव्यो भवताद्य जगद्गुरो ॥३

एक समय की बात है कि देवर्षियों ने ब्रह्मा जी की पूजा और नमस्कार करके उनसे प्रश्न किया—'भगवन्! गूढ़ उपनिषद्तत्व का हमारे प्रति उपदेश करिये।' इस पर ब्रह्माजी ने कहा—प्राचीनकाल में एक समय सम्पूर्ण वेदों के ज्ञाता, महातेजस्वी एवम् तपोनिष्ठ वेदव्यासजी ने पार्वती सहित भगवान् शिव को प्रणाम किया और उनसे करबद्ध प्रार्थना की।१। श्रीवेदव्यासजी बोले—हे देवदेव महादेव! हे महाप्राज्ञ! हे जीव विश्व पाश के छिन्न करने वाले प्रभो! मेरे पुत्र शुकदेव के वेदाध्ययन प्रारम्भ किये जाने के लिए होने वाले यज्ञोपवीत कर्म प्रणव और गायत्री मन्त्रोंपदेश का समय आ गया है। आप संसार के गुरु हैं, इसलिए उसके प्रति ब्रह्म और परमात्मा तत्व का उपदेश करिये" ।२-३।

मैत्रायण्युपनिषद्—

पञ्चम प्रपाठक में ओंकार की महानता का प्रतिप्रापद करते हुए कहा है—

प्राणादित्यावेतावुपासीतोमित्यक्षरेण व्याहृतिभिः सावित्र्याकेति।

इस प्राण और आदित्य की ॐ अक्षर द्वारा, व्याहृतियों द्वारा

और गायत्री मन्त्र द्वारा उपासना करनी चाहिये।

द्वे वाच ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चामूर्तं चाथ यन्मूर्तं वदसत्यं यदमूर्तं तत्सत्यं तद्ब्रह्म तज्ज्योतिर्यज्जेतिः स आदित्यः स वा एष शोमित्येतदात्मा सत्रिधात्मनं व्युकुरुत आमिति तिस्रो मात्रा एताभिः सर्वमिदमोतं प्रोतं चेवास्मिन्नित्येवं ह्याहैतद्वा आदित्य ओमित्थेवं ध्यायंस्तथानं युंजोतेति।

ब्रह्म के दो ही स्वरूप हैं—मूर्त और अमूर्त। उनमें से जो मूर्त है वह असत्य है और जो अमूर्त है वह सत्य है। वही ब्रह्म है। जो ब्रह्म है वह ज्योति है, जो ज्योति है, वह आदित्य है। वही ओ३म् है। वही आत्मा है। उसने अपने स्वरूप को तीन प्रकार बनाया है। ओ३म् यह तीन मात्राओं के रूप में है। तीन मात्राओं से यह सब ओत-प्रोत है। इसी में सब कुछ मौजूद है, ऐसा श्रुति में कहा गया है अथवा आदित्य ही ओ३म् है, ऐसा ध्यान करते हुए पुरुष को चाहिए कि वह आत्मा का उसके साथ संगठन करे।

अथान्यत्राप्युक्तमथ खलु य उद्गीथः स प्रणवो य प्रणवः स उद्गीथ इत्यासाव दृत्य उद्गीथ एवं प्रणव इत्येवं ह्याहोद्गीथः प्रणवायं प्रणेतारं नाक्षरूपं त्रिगतनिद्र विजरमविमृत्यु पुनः पेञ्चधाज्ञेयं निहितं गुहायामित्येवं ह्याहोर्ध्वमूलं वा आब्रह्मः शाखा आकाशवाय्वग्न्युदक म्यादय एकेनात्तमेत्तत्ब्रह्म तत्तस्यैतत्ते यद्सावादित्य ओमित्येतदक्षरस्य चैतत्तस्मादो मिष्यनेनैतदुपासीताजस्त्रसित्येकोऽस्य रसं बोधयीस्यं इत्येवं ह्याहैतयेवाक्षर ज्ञात्वा यो यदिच्छात तस्य तत्।

फिर अन्य स्थान पर भी कहा गया है कि यह जो सामवेद का (भाग) उद्गीथ है, वही प्रणव (ॐ) है और जो प्रणव है, वही उद्गीथ है, जो प्रणव नाम वाला तत्व है, वही सबको उत्पन्न करने वाला है। वह नाम तथा रूप है निद्रा रहित है, वृद्धावस्था रहित है, मृत्यु रहित है। फिर उसको पाँच प्रकार का जानना चाहिए। वह

हृदयरूपी गुफा में रहता है, ऐसा श्रुति ही कहती है। इसका मूल ऊपर है और शाखाएँ ब्रह्म तक हैं। ये शाखायें आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी आदि है। इस एक ही तत्व द्वारा यह सब कुछ ग्रहण किया जा सकता है। यही ब्रह्म है। यह सब जगत् उसका स्वरूप ही है। यह जो सूर्य है, वह इस ॐ अक्षर का ही स्वरूप है। इसलिए ॐ अक्षर से ही उसकी सदैव प्रार्थना करनी चाहिये। इसी से एकमात्र उसके रस को समझा जा सकता है। इस प्रकार श्रुति कहती है। यही पवित्र अक्षर है। इसी अक्षर को जानकर मनुष्य जिसकी इच्छा करे वह उसे प्राप्त हो जाता है।

अथान्यत्राप्युक्तं स्तनयत्येषास्य तनूर्या ओमिति स्त्रीपुंनपुंसकमिति लिङ्गवत्येषाथाग्निर्वायुरादित्य इति भास्वत्येषाथ रुद्रो विष्णुरित्यधिपतिरित्यैषाथ गार्हपत्यो दक्षिणाग्निराहवनीय इति मुखवत्येषासृग्यजुः सामेति विज्ञानात्येषाथ भूर्भुवः स्वरिति लोकवत्येषाथ भूतं भव्यं भविष्यदिति कालत्येषाथ प्राणोऽग्निः सूर्य इति प्रतापत्येषाथान्नामापश्चन्द्रमा इत्याप्यायनवत्यैषाथ बुद्धिर्मनोऽहंकार इति चेतनवत्येषाथ प्राणोऽपानो व्यान इति प्राणवत्येते त्यजामीत्युक्तैताह प्रस्तोतार्पिता भवतीत्येव ह्यांहैतद्वै सत्यकाम परं चापरं च यदोंनित्येतदक्षरमिति।

फिर, अन्य स्थान पर कहा गया है कि यह ब्रह्म का शरीर शब्द करता है, उसे ॐ कहते हैं। यह स्त्री, पुरुष और नपुंसक लिंग वाला है, अग्नि, वायु और सूर्य के रूप में यह प्रकाश वाला है, रुद्र और विष्णु के रूप में अधिपति हैं, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि और आहवनीय ये उसके तीन मुख हैं, ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद को वह जानता है, भूः भुवः और स्वर्ग—ये तीन उसके लोक हैं, भूत, भविष्य और वर्तमान ये उसके काल हैं, प्राण, अग्नि और आदित्य उसके प्रताप हैं, अग्नि जल और चन्द्रमा उसके पोषण हैं, बुद्धि मन और अहकार उसके चेतन हैं और प्राण, अपान तथा व्यान उसके प्राण हैं, ऐसा कितने ही कहते

हैं। 'मैं भजना हूँ' ऐसा वह कहा गया है। वह स्तुति करने वाला और अर्पित करने वाला होता है। श्रुति ऐसा कहती है। सत्य काम, यही पर और अपर ब्रह्म है, यह ॐ ऐसा अक्षर है।

आत्मबोधोपनिषद्-

प्रणव को सांसारिक बन्धनों से निवृत्त होने का साधन बताते हुए कहा है--

प्रत्यगानन्दं ब्रह्म पुरुषं प्रणवस्वरूपं अकार उकारो मकार इति यक्षं प्रणवं तदेतदोमिति यमुक्त्वां मुच्यते योगो जन्म संसार बन्धनात्।

"प्रत्येक व्याप्त आनन्दरूप ब्रह्म पुरुष है और 'अकार--उकार --मकार'--यह तीन अक्षर वाला प्रणव का स्वरूप है। वही प्रणव ओ३म् है। उसका जप करने से योगी सांसारिक बन्धनों से छूट जाते हैं।"

योगचूड़ामणि उपनिषद्-

अकार उकारो मकारश्चेति त्रयो वर्णास्त्रयो वेदास्त्रयो
लोकास्त्रयो गुणास्त्रयोऽक्षराणि एवं प्रणवः प्रकाशते।
अकारो जाग्रति नेत्रे वर्तते सर्वजन्तुषु।
उकारः कण्ठतः स्वप्ने मकारो हृदि सुप्तितः ॥७४

विराट् विश्वः स्थूलश्चाकारः हिरण्यगर्भस्तैजसः सूक्ष्मश्च उकारः। कारणाव्याकृतप्नाज्ञाश्च मकारः।

उकारो राजसो रक्तो ब्रह्मा चेतन उच्यते।
उकारः सात्विकः शुक्लो विष्णुरित्यभिधीयते ॥७५
मकारस्तामसः कृष्णो रुद्रश्चेति तथोच्यते।
प्रणवात्प्रभवो ब्रह्मा प्रणवात्प्रभवो हरिः ॥७६
प्रणवात्प्रभवो रुद्रः प्रणवो हि परा भवेत्।
अकारे लीयते ब्रह्मा उकारे लीयते हरिः ७७

मकारे लीयते रुद्रः प्रणवो हि प्रकाशते ।
ज्ञानिनामूर्ध्वगो भूयादज्ञानिनामधोमुखः ।।७८
एवं वै प्रणवस्तिष्ठेद्यस्तं वेद स वेदवित् ।
अनाहतस्वरूपेण ज्ञानिनामूर्ध्वगो भवत् ।।७९
तैलधारामिवाच्छिन्नं दीर्घघण्टानिनादवत् ।
प्रणवस्य ध्वनिस्तद्वत्तदग्रं ब्रह्म चोच्यते ।।८०

'अकार 'उ'कार और 'म'कार ये तीन-तीन वर्ण, तीन वेद, तीन लोक, तीन गुण, तीन अक्षर, तीन स्वर——ये सब प्रणव द्वारा प्रकाशित होते हैं। सर्व जीवों के जाग्रत अवस्था में 'अ'कार नेत्रों में रहता है, स्वप्नावस्था में 'उ'कार कण्ठ में रहता है और सुषुप्ति अवस्था में 'म'कार हृदय में रहता है।७४। 'अ'कार स्थूल, विराट् और विश्व है, 'उ'कार हिरण्यगर्भ तैजस और सूक्ष्म है, और 'म'कार कारण, अव्याकृत और प्राज्ञ है, 'अ'कार राजस रक्तवर्ण और ब्रह्मा कहा जाता है। उ'कार सात्विक शुक्लवर्ण और विष्णु कहा जाता है, तथा 'म'कार को तामस, कृष्णवर्ण और रुद्र के नाम से पुकारा जाता है। इस प्रकार प्रणव से ही ब्रह्मा की उत्पत्ति है, प्रणव से ही विष्णु की उत्पत्ति है और प्रणव से ही रुद्र उत्पन्न हुआ है। प्रणव ही परातत्व है। ब्रह्मा 'अ'कार में लय हो जाते हैं, 'उ'कार में विष्णु का लय होता है और 'मकार' में रुद्र लय होते हैं, केवल प्रणव ही प्रकाशित (स्थिर) रहता है। वह ज्ञानी में ऊर्ध्वमुख होता है और अज्ञानी में अधोमुख होता है। इस प्रकार प्रणव ही निश्चय रूप से स्थित है और उसको जानने वाला ही वेदविद् कहा जाता है। वह अनाहत रूप से ज्ञानियों में ऊर्ध्वगति होता है।७५-७९। प्रणव की यह अनाहत ध्वनि तेल की अविच्छिन्न धारा और घण्टा के दीर्घ निनाद (शब्द) के समान होती है और अग्र-ही ब्रह्म कहा जाता है।८०।

इच्छा क्रिया तथा ज्ञानं ब्राह्मी रौद्री च वैष्णवी ।

त्रिधा मात्रा स्थितिर्यत्र तत्परं ज्योतिरोमिति ।।८६
वचसा तज्जपेन्नित्यं वपुषा वत्समभ्यसेत् ।
मनसा तज्जपेन्नित्यं तत्परं ज्योतिरोमिति ।।८७
शुचिर्वाऽप्युशुचिर्वापि यो जपेत्प्रणवं सदा ।
न स लिप्यति पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ।।८८

"क्रिया, इच्छा और ज्ञान ये तीन शक्तियाँ, ब्राह्मी, रौद्री और वैष्णवी ये तीन मात्रायें परम ज्योति रूप ॐकार में स्थित है ।८६। उसे वाणी से सदैव जपे शरीर से सदैव उसका अभ्यास (आचरण) करे, मन से सदैव उसका जप करे, वही परम ज्योति स्वरूप ॐकार है ।८७। शुद्ध अथवा अशुद्ध अवस्था में जो सदैव ॐकार का जाप करता है वह पाप से लिप्त नहीं होता और संसार में कमल पत्रवत् रहता है ।८८।"

ओंकार प्राणायाम के विधान का निर्देश करते हुए कहा गया है—

रेचकः पूरकश्चैव कुम्भकः प्रणवात्मकः ।
प्राणायामो भवेदेवं मात्राद्वादशसंयुतः ।।१०१
मात्राद्वादशसंयुक्तौ निशाकरदिवाकरौ ।
दोषजालमबध्नन्तौ ज्ञातव्यौ योगिभिः सदा ।।१०२
पूरकं द्वादश कुर्यात्कुम्भकं षोडश भवेत् ।
रेचकं दश चोंकारः प्राणायामः स उच्यते ।।१०३

"रेचक, पूरक और कुम्भक ये प्रणव स्वरूप हैं, इस प्रकार का प्राणायाम द्वादश मात्रा में करना चाहिए ।१०१। यह द्वादश मात्रा संयुक्त सूर्य और चन्द्र का प्राणायाम समस्त दोषों का नाश करने वाला है ।१०२। बारह मात्रा का पूरक करके सोलह मात्रा का कुम्भक करना चाहिए तब फिर दस मात्रा का रेचक करना यह ओंकार प्राणायाम कहा जाता है ।१०३।

योगतत्वोपनिषद्–

ओंकार जप से पाप तापों और विघ्न दोषों की निवृत्ति का होना बताया गया है––

जपेत्पूर्वार्जितानां तु पापानां नाशहेतवे ।।६३
सर्वविघ्नहरो मन्त्रः प्रणवः सर्वदोषहा ।
एवमभ्यासयोगेन सिद्धिरारम्भसम्भवा ।।६४
ततो भवेदघटावस्था लवनाभ्यासतत्परा ।।६५

"तब एकान्त स्थान में बैठकर प्लुत मात्रा में प्रणव का जाप करे जिससे पूर्वजन्म के पापों का क्षय हो ।६३। यह प्रणव मन्त्र सब प्रकार के विघ्नों और दोषों को दूर करने वाला है और इसका अभ्यास करने से सिद्धियाँ प्राप्त होने लगती हैं ।६४-६५।

आध्यात्मिक यात्रा में यदि प्रणव को रथ बना लिया जाए तो सफलता की सम्भावना व्यक्त करते हुए कहा गया है—

ओंकारथमारुह्य विष्णुं कृत्वाऽथ सारथिम् ।
ब्रह्मलोकपदान्वेषी रुद्राराधनतत्परः ।।२
तावद्रथेन गन्तव्यं यावद्रथपथि स्थितः ।

"प्रणव रूप रथ में बैठकर भगवान् विष्णु को साक्षी बनावे और ब्रह्मलोक के यथार्थ पद की खोज करते हुए भगवान् रुद्र की उपासना में लगें । उस रथ के द्वारा तब तक चलना चाहिए जब तक रथ का मार्ग पूरा न हो जाय ।" २

मात्रालिङ्गपद त्यक्त्वा शब्दव्यंञ्जनवर्जितम् ।
अस्वरेण मकारेण पदं सूक्ष्मं हि गच्छति ।।४

"प्रणव की अकारादि मात्रायें और उनके लिंगभूत पद तथा आश्रय भूत विश्व, विराट् आदि के ध्यान पूर्वक उनका त्याग करते हुए स्वरहीन मकार के वाचक ईश्वर का ध्यान करने से साधन की तुरीय तत्व में प्रविष्टि होती है ।" ४

ब्रह्मबिन्दूपनिषद्--

प्रणव साधना की प्रेरणा देते हुए कहा गया है—

स्वरेण संधयेद्योगमस्वरं भावयेत्परम् ।
अस्वरेण हि भावेन भावो नाभाव इष्यते ॥

साधक को प्रणव के माध्यम से परमेश्वर से ऐक्य उत्पन्न करना चाहिए और उसी से परम तत्व की भावना का चिन्तन करना चाहिए। प्रणव से ओत-प्रोत भावना से ही भावस्वरूप परमात्मा को प्राप्त किया जाता है, अभाव को नहीं।"

जाबालदर्शनोपनिषद्--

प्राणायाम सहित प्रणव साधना की विधि का वर्णन करते हुए कहा गया है—

वर्णत्रयात्मकाः प्रोक्ता रेचकपूरककुम्भकाः ।
स एव प्रणवः प्रोक्तः प्राणायामस्तु तन्मयः ।।२
इडया वायुमाकृष्य पूरयित्वोदरे स्थितम् ।
शनैः षोडषभिर्मात्रैरकारं तत्र संस्मरेत् ।।३
पूरितं धारयेत्पश्चाच्चतुः षष्ट्या तु मात्रया ।
उकारमूर्तिमत्रापि संस्मरन्प्रणवं जपेत् ।।४
यावद्वा शक्तये तारद्धारयेज्जपतत्परः ।
पूरितं रेचयेत्पश्चान्मकारेणानिलं बुधः ।।५
शनैः पिङ्गलया तत्र द्वात्रिंशन्मात्रया पुनः ।
प्राणायामो भवेदेवं ततश्चैवं समभ्यसेत् ।।६

(६।२-६)

"ओंकार में अकार, उकार और मकार यह तीन वर्ण हैं। वे क्रमशः पूरक, कुम्भक और रेचक से सम्बन्धित हैं। इन तीनों वर्णों का एकत्र होना ही प्रणव है। इसलिए प्राणायाम भी प्रणवमय माना गया है। इडा के द्वारा वायु को धीरे-धीरे भीतर खींचकर उदर में भरना और वहाँ सोलह मात्राओं से युक्त "आकार" का ध्यान करना, फिर

उदर में भरी हुई बाह्य वायु को कुछ समय धारण किये रहना और सौंसठ मात्राओं से युक्त "उकार" का ध्यान करते हुए प्रणव का जाप करना चाहिए जब तक हो सके उदर में वायु धारण किये रहे और जप करता रहे। फिर बत्तीस मात्रामय 'मकार' के ध्यानपूर्वक उस भरी हुई वायु को धीरे-धीरे बाहर निकाल दे। यह एक प्राणायाम हुआ। इसी प्रकार निरन्तर अभ्यास करें।२-६।"

नादयोग सहित प्रणवोपासना का मार्ग-दर्शन करते हुए कहा गया है :—

स्वस्तिकासनमास्थाय समाहितमनस्तथा ॥३२
अपानमूर्ध्वमुत्थाप्य प्रणवेन शनैः शनैः।
हस्ताभ्यां धारयेत्सम्यक्कर्णादिकरणानि च ॥३३
अंगुष्ठाभ्यां मुने श्रोत्रे तर्जनीभ्यां तु चक्षुषी।
नासापुटावधानाभ्यां प्रच्छाद्य करणानि च ॥३४
आनन्दाविर्भवो यात्तावन्मूर्धनि धारणात्।
प्राणः प्रयात्यनेनैव ब्रह्मरन्ध्रं महामुने ॥३५
ब्रह्मरन्ध्रगते वायौ नादश्चोत्पद्यतेऽनघ।
शंखध्वनिनिभश्चादौ मध्ये मेघध्वनिर्यथा ॥३६
शिरोमध्यगते वायौ गिरिप्रस्रवणं यथा।
पश्चात्प्रीतो महाप्राज्ञः साक्षादात्मोन्मुखी भवेत् ॥३७
(६।३२-३७)

"स्वस्तिकासन लगाकर मन को एकाग्र करे और ओंकार का जप करते हुए अपान वायु को शनैः शनैः ऊपर उठावे तथा कान आदि को अपने दोनों हाथों से भले प्रकार दवाये रक्खे। ऊपर की सब इन्द्रियों को इस प्रकार ढककर वायु को तब तक वहीं रोके, जब तक आनन्द-युक्त अमृत की अनुभूति न होने लगे। ऐसा करने से ब्रह्मरन्ध्र में प्राण प्रविष्ट हो जाता है। जब ब्रह्मरन्ध्र में प्राण का प्रवेश हो जाता है तब प्रथम एक गम्भीर नाद, शंख की ध्वनि के समान होने लगता है, वही

नाद मेघ-गर्जन के समान सुनाई देने लगता है और जब वायु मस्तक के मध्य में स्थित होता है, तब पर्वत से गिरने वाले झरने के समान कल-कल शब्द सुनाई देता है, जब ऐसा हो जाता है, तब योगी को अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव होता है और यह आत्मा से साक्षात्कार करने लगता है। उस समय आत्मतत्व का ज्ञान भली प्रकार हो जाता है और जगत् के बन्धनों से छुटकारा मिल जाता है।३२-३७।

वायु तत्व पर विजय प्राप्त करने से सभी रोग समूल नष्ट हो जाते हैं। प्राणायाम के द्वारा भगन्दर जैसे भयंकर रोग भी दूर हो जाते हैं। वायु तत्व को जीतने की प्रणव योग साधना का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

पुनस्तज्यानिष्पत्तिर्योगात्सारनिहृर्नुतः।
दक्षिणोत्तरगुल्फेन सीविनीं पीडयेत्स्थिरम् ।।३८
सव्येतरेण गुल्फेन पीडयेद्बुद्धिमान्नरः।
जान्वोरधः स्थितां सन्धिं स्मृत्वा देवं त्र्यम्बकम् ।।३९
विनायकं च संस्मृत्य तथा वागीश्वरीं पुनः।
लिंगनालात्समाकृष्य वायुमप्यग्रतो मुने ।।४०
प्रणवेन नियुक्तेन बिन्दुयुक्तेन बुद्धिमान्।
मूलाधारस्य विप्रेन्द्र मध्ये तं तु निरोधयेत् ।।४१
निरुध्य वायुना दीप्तो वह्निरूपति कुण्डलीम्।
पुनः सुषुम्नया वायुर्वह्निना सह गच्छति ।।४२

(२।३८-४२)

'गुदा और उपस्थ की मध्यवर्ती नाड़ी सीविनी कही जाती है। क्योंकि वही देह के दो भागों को परस्पर एक करती है। उसी सीविनी को अपने दोनों पाँवों की ओर दबाकर स्थित भाव से बैठे और घुटनों के नीचे की सन्धि में त्र्यम्बक नाम वाले ज्योतिर्लिंग की भावना करे। इसके साथ ही भगवती सरस्वती और गणपति का ध्यान करे। फिर बिन्दुमय ओंकार का जप करते हुए उपस्थ की नली के छेद के द्वारा

आगे की ओर खींचे और उसे मूलाधार के मध्य में स्थित करे। वहाँ वायु को अवरोध किये रहने से वहाँ की अग्नि दीप्त होकर कुण्डलिनी पर चढ़ जाती है। फिर वायु इस अग्नि को साथ लेकर सुषुम्ना के द्वारा ऊपर जाने लगती है। इस प्रकार निरन्तर अभ्यास करने से वायु जीत लिया जाता है।३८-४२।

आत्मा में परमात्मा की धारणा के साथ ओंकारोपसना का वर्णन करते हुए कहा गया है--

पुरुषे सर्वशास्तारं बोधानन्दमयं शिवम् ॥७
धारयेद्बुद्धिमान्नित्यं सर्वपापविशुद्धये।
ब्रह्मादिकाय रूपाणि स्वे स्वे सहृत्य कारणे ॥८
सर्वकारणमव्यक्तमनिरूप्यमचेतनम्।
साक्षात्मनि सम्पूर्णे धारयेत्प्रणवेन तु।
इन्द्रियाणि समाहृत्य मनसात्मनि योजयेत् ॥९

(८) ७-९

ज्ञानी पुरुष अपनी आत्मा में बोधमय, आनन्दमय और कल्याणमय परमात्मा की नित्यप्रति धारणा करे। इससे सभी पापों से छुटकारा मिलता है। कार्य रूपी ब्रह्मा आदि को अपने-अपने कारण में लय करे जो बुद्धि से परे अनिर्वचनीय, परम कल्याण और अव्यक्त परमेश्वर है उसको अपने ही आत्मा में धारण करे और ऐसा करते समय अपने मन को सब कलाओं वाले ओंकार रूप परमेश्वर में लय कर दे। इसके साथ ही इन्द्रियों को विषयों से निवृत्त कर आत्मा में ही संलग्न कर दे।७-९।

शाण्डिल्योपनिषद्--

शाण्डिल्योपनिषद (१।७।२७-२९) में प्राण गति रोकने का निर्देश करते हुए कहा है बिना परिश्रम के पूरक आदि वायु के द्वारा अभ्यास और एकान्त ध्यान योग करने से मन की गति बन्द होती है फिर ओंकार के उच्चारण के अन्त में शब्द तत्व का अनुभव होने

Laxmikant Bhatta / Bhaktapur

ज्ञान द्वारा सुषुप्ति का रूप समझ लिया जाता है तब प्राण की गति रुक जाती है।

पथब्रह्मोपनिषद् में कहा गया है 'परमात्मा ही ओंकार, हंस (ब्रह्म) तथा नाद यही तीन लड़ी वाला सूत्र है।'

मण्डल ब्राह्मणोपनिषद्—

विभिन्न प्रकार के मण्डलों—अग्नि, सूर्य, चन्द्र आदि का वर्णन करते हुए प्रणव के स्वरूप प्रणव व नाद का स्पष्टीकरण किया गया है--

तदा पश्चिमाभिमुखप्रकाशः स्फटिकधूम्रबिन्दुनादकला नक्षत्रखद्योतदीपनेत्रसुवर्ण नवरत्नादिप्रभा दृश्यन्ते। तदेव प्रणवरूपम्।

प्राणापानयोरैक्यं कृत्वा धृतकुम्भको नासाग्रदर्शनदृढः भावना द्विकरांगुलिभिः षण्मुखीकरणेन प्रणवादिध्वनिं निशम्य मनस्तत्र लीनं भवति।

तस्य न कर्मलेपः। (२।२)

"उस समय वह पश्चिम की ओर का प्रकाश स्फटिक जैसा धूम्रवर्ण का बिन्दु, नाद, कला नक्षत्र, खद्योत, दीपक और नेत्र जैसे नवरत्न आदि की प्रभा दिखाई देती है। वह प्रणव का स्वरूप है। प्राण तथा अपान को एक करके कुम्भक धारण करे और फिर नाक के अग्रभाग पर दृष्टि रखकर दृढ़ भावना से दोनों हाथों की अँगुलियों द्वारा षण्मुखी मुद्रा करके प्रणव का नाद श्रवण करे, फिर मन उसमें लीन हो जाता है और उसके कर्मों का लेप नहीं होता।'

रुद्रहृदयोपनिषद्—

धनुस्तारंशरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥३८

"ब्रह्म रूप लक्ष्य के लिए प्रणव धनु रूप और आत्मा बाण के

समान है। उसे सींधने के लिए आलस्य का त्याग आवश्यक कार्य है।"

नृसिंहपूर्वतापिन्युपनिषद्–

वैंप्रणवस्य या पूर्वा मात्रा पृथिव्यकारः स ऋग्भिऋर्ग्वेदो ब्रह्मा बसवो गायत्री गार्हपत्यः सा साम्नः प्रथमः पादो भवति द्वितीयान्तरिक्षं स उकारः स यजुर्भिभर्यजुर्वेदो विष्णुरुद्रास्त्रिष्टुब्दक्षिणाग्निः सा साम्नो द्वितीयः पादो भवति तृतीया द्यौः स मकारः सामभिः सामवेदो रुद्रा आदित्या जगत्याहवनीयः सा साम्नस्तृतीयः पादो भवति यावसानेऽस्य चतुर्थ्यर्धमात्रा सा सोमलोक ओंकारः सोऽथर्वनैर्मन्त्रैरथर्ववेदः संवर्तकोऽग्निर्मरुता विराडेकर्षिर्भास्वतो स्मृता सा साम्नश्चतुर्थः पादो भवति। (२१)

वह प्रणव प्रथम मात्रा 'ओंकार' वाला है, पृथ्वी उसका लोक और ऋचाओं से विभूषित ऋग्वेद ही उसका वेद, देवता ब्रह्मा तथा छन्द गायत्री है, वह वसु देवताओं का गण है और गार्हपत्य अग्नि रूप है। सब प्रणव की प्रथम मात्रा में ही निहित है और यही साम का प्रथम पाद है।

प्रणव की द्वितीय मात्रा 'उ'कार है। अन्तरिक्ष लोक, यजुर्मन्त्रों से युक्त यजुर्वेद, विष्णु और रुद्र देवों का गण, दक्षिण अग्नि और त्रिष्टुप छन्द, यह द्वितीय मात्रा है। यही साम का द्वितीय पाद है।

प्रणव की तृतीय मात्रा 'म'कार है। द्युलोक सामवेद, रुद्र और आदित्य का गण, जगती छन्द और आहवनीय अग्नि यह सब तृतीय मात्रा के अन्तर्गत हैं। यह तृतीय मात्रा ही साम का तृतीय पाद है।

प्रणव की चौथी मात्रा में नामात्मक अर्द्धमात्रा का आभास मिलता है। उसमें चन्द्रलोक, ओंकारवाची परब्रह्म, अथर्ववेद, संवर्तक नामक अग्नि, मरुद्गण तथा विराट् छन्द है, इसके ऋषि ब्रह्मा हैं। यह

ब्रह्म रूपिणी सोने से अत्यन्त प्रकाश वाली है। यह चतुर्थ मात्रा ही साम का चतुर्थपाद हैं।२१।

ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोंकार एव यच्चान्यत्त्रिकातीतं तदप्योंकार एव सर्वं ह्येतद्ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म। (२)

'ओंकार अविनाशी है, इसी की महिमा यह सम्पूर्ण दृश्यमान विश्व है। भूत, भविष्यत्, वर्तमान इन तीन कालों से सम्बन्धित जो कुछ है, यह सब ओंकार ही है। उक्त तीनों कालों में अतीत जो है वह भी ओंकार है। यह सब कुछ ओंकार रूप ब्रह्म है।"

क्षुरिकोपनिषद्—

प्राणायामसुतीक्ष्णेन मात्राधारेण योगवित्।
वैराग्योपलघृष्टेन छित्वा तन्तु न वध्यते ॥२४

प्राणायाम द्वारा अत्यन्त तीक्ष्य बनाई, ओंकार रूप धार वाला और वैराग्य पत्थर पर घिसी हुई (मन रूपी) छूरी से संसार रूपी सूत्र को काट कर योगवेत्ता मनुष्य फिर उसके द्वारा नहीं बाँधा जाता।२४।

नारायणोपनिषद्—

प्रत्यगानन्दं ब्रह्मपुरुष प्रणवस्वरूपम्। अकार उकारो मकार इति। ता अनेकधा समभवत्तदेतगीगति यमुक्त्यवा सूच्यते योगी जन्मसंसारबन्धनात्।

"अकार 'उँकार' और मकार युक्त यह प्रत्यक् (ॐ) आनन्द रूप, ब्रह्मपुरुष रूप और प्रणव स्वरूप है। जिसमें अनेक प्रकार से सममात्रा है, इसको 'ॐ' कहते हैं और इसके जप से योगीजन संसार के समस्त बन्धनों और बार-बार जन्म लेने से छूट जाते हैं।"

अक्षमालिकोपनिषद्—

ओमंकार मृत्युञ्जय सर्वव्यापक प्रथमेऽक्षे प्रतिष्ठत। ओमांकाराकर्षणात्मक सर्वगत द्वितीयेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओमिकार

पुष्टिदाक्षोभकर तृतीयेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओमोंकार वाक्प्रसादकर निर्मल चतुर्थोऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओमङ्कार सर्वबलप्रद सारतर पंचमेऽक्षे प्रतितिष्ठा ओमङ्कारोच्चाटनकर दु सहषष्ठेऽक्षे प्रतितिष्ठा ओमृङ्कार संक्षोभकर चंचलं सप्तमेऽक्षे प्रतितिष्ठ। विद्रेषणकर शूद्रक नवमेऽक्षे प्रतिष्ठित। ओमलृङ्कार मोहकरं दशमेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओमेंकार सर्ववश्यकर शुद्धसत्वकादशमेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओमैंकार शुद्धसात्विक पुरुषवश्यकर द्वादशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओमों काराखिलवाङ्मय नित्यशुद्ध त्रयोदशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओमोंकार सर्ववाङ्मय वश्यकर शान्त चतुर्दशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओमंकार गजादिव्वश्यकर मोहन पंचदेशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। औमःकार मृत्युनाशकर रौद्र षोडषेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं कङ्कार सर्वविषहर कल्याणप्रद सप्तदेशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओंखङ्कार सर्वक्षोभकार, व्यापकाष्टादशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओंगङ्कार सर्वविघ्नशमन महत्तरैको न्नविंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओंगङ्कार सौभाग्यप्रद स्तम्भकर विंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओंङ्कार सर्वविशनाशकराग्रैकविंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओंचकाराभिचारघ्न क्रूर द्वाविंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं छङ्कार भूतनाशकर भीषण त्रयोविंशेऽक्षे प्रतिष्ठित। ओं जङ्कार कृत्याऽऽदिनाशकर दुर्धर्ष चतुर्विंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं झङ्कार भूतनाशकर पंचविंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं ञंकार मृत्युप्रथमन षड्विंशेऽक्षे प्रतिष्ठित। ओं टङ्कार सर्वव्याधिहर सुभग सप्तविंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं ठङ्कार चन्द्ररुपाष्टविंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं डङ्कार गरुडात्मक विषघ्न शोभनेकोनत्रिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं ढङ्कार सर्वसम्पत्प्रद सुभग त्रिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं णंकार सर्वसिद्धिप्रद मोहकरैकत्रिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं तंकार धनधान्यादिसम्पत्प्रद प्रसन्न द्वात्रिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं थङ्कार धर्मप्राप्तिकर निर्मल

त्रयस्त्रिशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं दङ्कार पुष्टिवृद्धिकर प्रियदर्शन चतुस्त्रिशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं धङ्कार विषज्वरनिघ्न विपुल पंचत्रिशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं नंकार भुक्ति मुक्तिप्रद शान्त षट्त्रिशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं पंकार विषविघ्ननाशन भव्य सप्तत्रिशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं फंकाराणिमादिसिद्धि प्रद ज्योतीरूपाष्टत्रिशऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं बङ्कार सर्वदोषहर शोभनैकानचत्वारिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं भंकार भूत प्रशांतिकर भयानक चत्वारिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं मंदारविद्वेषिविमोहनकरैकचत्वारिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं यंकार सर्वव्यापक पावन द्विचत्वारिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं रंकार दाहकर विकृत त्रिचत्वारिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं लंकार विशम्भर भासुर चतुश्चत्वारिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं वंकार सर्वाप्यायकर निर्मल पंचचत्वारविंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं शंकार सर्वफलप्रद पवित्र षट्चत्वारिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं षंकार धमार्थकामद धवल सप्तचत्वारिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठत। ओं संकार सर्व कारण सार्व वर्णिकाष्टचत्वारिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं हंकार सर्वाङ्मय निर्मलैकोनपंचादशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं लंकार सर्वशक्तिप्रद प्रधान पंचादशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं क्षंकार परापरतत्वज्ञापक परंज्योतीरूप शिखामणौ प्रतितिष्ठ।५।

"ॐ हे ओंकार! तुम मृत्यु को जीतने वाले हो। सर्वव्यापक प्रथमअक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ हे ओंकार! तुम आकर्षण शक्ति वाले हो, सर्वव्यापी हो, इन दूसरे अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ऊँ हे ओंकार! तुम तुष्टि (पोषण) करने वाले तथा क्षुभिततारहित हो तीसरे अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ऊँ हे ओङ्कार! तुम वाणी की स्वच्छता को करने वाले तथा निर्मल हो इस चौथे अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ऊं हे उंकार! तुम सभी को सभी प्रकार के बल देने वाले तथा सारयुक्तों में श्रेष्ठ हो, पाँचवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ओरम् हे ऊँकार! तुम उच्चारण करने वाले तथा

दुस्सह (न सहे जा सकने वाले) हो इस छठे अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ऊँ हे ॠंकार ! तुम संक्षोभ (चलचित्तता) करने वाले तथा चञ्चल हो, इस सातवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ओं हे ॠकार ! तुम सम्मोहन करने वाले तथा उज्जवल हो इस आठवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। हे ॢंकार ! तुम विद्वेष की उत्पन्न कर देने वाले तथा सब कुछ जानने वाले अत्यन्त गुप्त हो इस नवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ओं हे ॣंकार ! तुम मोहकारी हो इस दसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ओं हे एंकार ! तुम सबको वश में करने वाले तथा शुद्ध सत्व हो इस ग्यारहवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ओं हे ऐंकार ! तुम शुद्ध तथा सात्विक हो और पुरुषों को वश में करने वाले ही इस बारहवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जओ। ॐ हे ओंकार ! तुम अखिल वाङ्मय (सारे ही अक्षरों के समूह) हो एवं नित्य शुद्ध हो इस तेरहवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। हे ओंकार ! तुम भी अक्षर समूह स्वरूप वश में करने वाले तथा शान्त हो इन चौदहवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ हे ओंकार ! हाथी आदियों को वश में करने वाले एवं मोहित करने वाले हो इस पन्द्रहवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ हे ओंकार ! तुम मृत्युनाशक तथा रौद्र (अत्यन्त भयानक) हो इस सोलहवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। हे क्ंकार ! तुम सभी विषों को हरने वाले तथा कल्याण देने वाले हो इस सत्रहवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाजो। हे खङ्कार ! तुम सबको क्षुभित करने वाले एवं व्यापक हो इस अठारहवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओं। ऊँ हे गङ्कार ! तुम सभी विघ्नों को शान्त करने वाले तथा बड़ों में भी बड़े (विशाल) हो इस उन्नीसवें अक्ष में प्रतिष्ठा पाओ। ऊँ हे घंकार ! तुम सौभाग्य देने वाले तथा स्तम्भन (गति को रोकने वाले) कर्त्ता हो बीसवें अक्ष में प्रतिष्ठा पाओ ! ऊँ हे ङंकार ! तुम सभी विषों के नाशक तथा उग्र

भयानक हो इस इक्कीसवें अक्षमें प्रतिष्ठित हो जाओ । ऊँ हे चंकार ! तुम अभिचार नाशक तथा क्रुर हो बाईसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ । ऊँ हे छंकार ! तुम भूतनाशक तथा भयानक हो तेईसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ । ऊँ हे जंकार ! तुम कृत्या आदि (डाकिनी आदि) नाशक तथा दुर्धर्ष हो इस चौबीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ ऊँ हे झंकार ! तुम भूतनाशक हो इस पच्चीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ । ऊं है ञकार ! तुम मृत्यु को व्यथित कर देने वाले हो इस छब्बीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ । ऊँ हे टंकार ! तुम सभी रोगों के नाशक तथा सौम्य हो, इस सत्ताईसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ । ऊँ हे ठंकार ! तुम नन्द्रस्वरूप हो, इस अट्ठाइसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ । ऊँ हे डंकार ! तुम गरुड़ स्वरूप विषयक तथा सुन्दर हो, उन्तीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ । ऊँ हे ढंकार ऽ तुम सभी तरह की सम्पत्ति दायक तथा सौम्य हो, इस तीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ । ऊँ हे णंकार ! तुम सभी सिद्धि देने वाले तथा मोह कर देने वाले हो, इस इकत्तीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ । ओं हे तंकार ! तुम धनधान्य आदि सम्पन्निदाता तथा सदा प्रसन्न हो, इस बत्तीसवें अक्ष में प्रतिष्टित हो जाओ । ऊँ हे थंकार ! तुम धर्म की प्राप्ति कराने वाले तथा निर्मल हो, इस तेतीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ । ऊँ हे दंकार ! तुम पुष्टि तथा वृद्धिकर्ता हो तथा सुन्दर दीखने वाले हो, इस चौतीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ । ऊँ हे धङ्कार ! तुम विष तथा ज्वर के नाशक हो तथा विशाल (वहुत) हो, इस पैंतीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ । ऊँ हे नंकार ! तुम भोग तथा मोक्षदाता तथा शान्त हो, इस छत्तीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ । ऊँ हे पंकार ! तुम विष एवं विघ्नों के नाशक तथा कल्याणमय हो इस सैंतीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ । ऊँ हे फंकार ! तुम अणिमा महिमा गरिमा आदि आठ सिद्धि के

तथा प्रकाश स्वरूप हो, इस अड़तीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ हे बङ्कार ! तुम सब दोषों को हरण करने वाले तथा सुन्दर हो, इस उनतालिसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ । ओ३म् हे भङ्कार ! तुम भूत बाधा शान्त करने वाले तथा भयानक हो, इस चालीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ । ओ३म् हे मङ्कार ! तुम विद्वेष (वैर) करने वाले को मोहित करने वाले अथवा विद्वेषी तथा मोह करने वाले हो, इस इकतालिसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ हे यङ्कार ! तुम सब जगह व्यापी तथा पवित्र हो, इस बयालीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ । ओ३म् हे रङ्कार ! तुम दाह (जलन, तपन) उत्पन्न करने वाले तथा विकृत हो, इस तेतालिसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ । ओ३म् हे लङ्कार ! तुम विश्व का पोषण करने वाले तथा तेजस्वी (चमकने वाले) हो, इस चौवालिसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ । ओ३म् हे वङ्कार ! तुम सबकी तृप्ति (पुष्ट) करने वाले तथा निर्बल हो, इस पैंतालीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ । ॐ हे शकार ! तुम सभी प्रकार के फलों के दाता एवं पवित्र हो। इस छियालीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ हे षंकार ! तुम धर्म, अर्थ तथा काम को देने वाले तथा श्वेत (सात्विक) हो, इस सैंतालीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ओ३म् हे संकार ! तुम सब वस्तुओं के कारण सभी वर्णों से सम्बन्धित, इस अड़तालीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ओ३म् हे हंकार ! तुम सभी सर्व वाङ्मय (सब अक्षरों के या साहित्य के स्वरूप) तथा निर्बल हो, इस उनंचासवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ । ओ३म् हे लकार ! तुम सभी शक्तियों के दाता तथा प्रधान (प्रमुख) हो, इस पचासवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ । ओम् हे क्षंकार ! तुम परात्पर तत्व के बताने वाले तथा परज्योति स्वरूप हो, इस शिखामणि में मेरुमाला का प्रधान मनका, प्रतिनिधि रूप से स्थित हो जाओ ।५

———

गीता में ओंकार

गीता भारतीय संस्कृति का महान् ग्रन्थ है। अध्यात्म विद्या के गूढ़ और पवित्र तत्वों को थोड़े में और स्पष्ट रीति से समझा देने वाला इसके समान सरल ग्रंथ समस्त संसार के साहित्य में नहीं है। वह साक्षात् भगवान की दिव्य वाणी है। विश्व की समस्त प्रमुख भाषाओं में इसकी टीकायें उपलब्ध ही नहीं हैं, सभ्य समाज उनका आदर और श्रद्धा के साथ अध्ययन भी करता है तथा अपने सर्वतोमुखी विकास के लिए इससे यथेष्ट गति और शक्ति भी प्राप्त करता है। इसमें भी स्थान-स्थान पर ॐ की महिमा का विशद गान हुआ है।

'ॐ ब्रह्मरूप है', परमपद है', ऐसा बताते हुए भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं—

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति,
विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति,
तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥ गीता ८।११

'वेद के जानने वाले जिसे अक्षर (अविनाशी) कहते हैं, वीतराग होकर यति लोग जिसमें प्रवेश करते हैं, ध्यान धारणा-समाधि की उच्चस्तरीय साधना द्वारा वे जिस परमतत्व में लीन होते हैं और साधकगण जिसकी इच्छा करके ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं, उस ब्रह्म को मैं तुझे संक्षेप से बतलाता हूँ। वह परमपद ॐ ही है।'

अर्जुन के पूछने पर भगवान् श्रीकृष्ण ने परमेश्वर की अनेक विभूतियों का, व्यक्त रूपों का दसवें अध्याय में सरस वर्णन किया है। वहाँ उन्होंने वाणी के मूलस्रोत के रूप में ॐ को ही बताया है। वे कहते हैं,

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि, स्थावराणां हिमालयः ।

(गीता १०।२५

'मन्त्रों के दृष्टा ऋषि कहे जाते हैं। उनमें जो अनेक मन्त्रों के दृष्टा हैं, विशेष अन्वेषक हैं, वे महर्षि पद से कहे जाते हैं। उन महर्षियों में भृगुरूप मैं हूँ। गिरा अर्थात् अर्थ प्रतिपादित शब्दों में एक अक्षर ब्रह्म मैं हूँ। यज्ञों में जपयज्ञ मैं हूँ और स्थावरों (स्थिर पदार्थों) में हिमालय मैं हूँ।

यहाँ गिरामस्म्येकमक्षरम्' (वाणी का आदि अक्षर ध्वनि रूप ॐ मैं ही हूँ) के द्वारा आपने स्पष्ट किया है कि वाणी, जो परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी नाम से चार प्रकार की प्रसिद्ध हैं, उनमें अर्थ-प्रतिपादक और सब प्राणियों में व्यापक 'स्फोटरूप, मैं हूँ। अर्थ प्रतिपादक-स्फोट सब प्राणियों में व्यापक रूप से रहा है। उसी से समस्त ध्वनियों, भाषाओं और भावों का विकास हुआ है।

गीता के सातवें अध्याय में भी यही बात अन्य शब्दों में कही गयी है—

रसोऽहमप्सु कौन्तेय, प्रभाऽस्मि शशिसूर्ययोः ।
प्रणवः सर्व वेदेषु शब्दः खे पौरुष नृषु ।

(गीता ७।८)

हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! मैं जल में रस रूप से विराजमान हूँ। सूर्य और चन्द्रमा में प्रभा अर्थात् कान्ति रूप से सब वेदों में प्रणव (ओंकार) रूप से और मनुष्यों में पुरुषत्व से मैं ही स्थित हूँ।' यहाँ स्पष्ट कहा गया है कि समस्त वेदों (विषयों, ज्ञानों) का सार-सर्वस्व ॐ ही है।

ॐ ही अखिल ब्रह्माण्ड का अधिनायक है। वही समस्त सृष्टि का रचयिता है उसी से ब्राह्मण, वेद और यज्ञ निर्मित हुए—

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ।
(गीता १७।२२)

शास्त्रों में परब्रह्म का निर्देश 'ॐ तत् सत्' यों तीन प्रकार से किया जाता है। उसी से पूर्वकाल में ब्राह्मण, वेद और यज्ञ उत्पन्न हुए। ॐ तत् का सरलार्थ ॐ ही वह (तत्) सत् तत्व (सत्) है जिससे यह सम्पूर्ण विश्व विनिर्मित हुआ है। इसीलिए—

तस्मादोमित्युदाहृत यज्ञ दान-तपःक्रियाः ।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ।
(गीता १७।२४)

ब्रह्मवादी लोग यज्ञ, दान, तप आदि सभी सत्कर्म 'ॐ' का स्मरण कीर्तन करके प्रारम्भ करते हैं, क्योंकि वे भली-भाँति समझते हैं कि सिद्धि-सफलता का वही एकमेव स्रोत है। सुख-शान्ति, सम्पन्नता विकास और उत्कर्ष के शिखिरोपद कठिन मार्ग में पद-पद पर उसके अवलम्बन और पथ-प्रदर्शन की नितान्त आवश्यकता है।

गीता में ॐ की उच्चस्तरीय उपासना की वैज्ञानिक प्रक्रिया भी संक्षेप में किन्तु अत्यन्त स्पष्ट शब्दावली में वर्णित है—

सर्व द्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च ।
मूध्न्यधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणम् ।
(गीता ८।१२)

ॐ इत्येकाक्षरं ब्रह्म, व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं, स याति परमां गतिम् ।
(गीता ८।१३)

इन्द्रियों के समस्त शक्ति-अपव्ययकारी द्वारों (छिद्रों) का संयम करके, मन को हृदय-कमल के भीतर रोककर, प्राण को मस्तक में स्थित कर ब्रह्मरन्ध्र में ले जाकर ॐ इस ब्रह्म प्रतिपादक एक अक्षर ब्रह्म का ध्यान करना चाहिए। इन्द्रिय संयम, मनोनिग्रह और प्राणा-

यामपूर्वक ओ३म् रूप परब्रह्म का त्रिपुटी पर (आज्ञा चक्र का) ध्यान करना चाहिये। हार्दिक ध्यान-अर्चना की उच्चस्तरीय उपासना पद्धति हैं। शुक्रवत् ओ३म् के उच्चारण से यह शतगुणी अधिक प्रभावी है।

ध्यान-ध्यान में ओ३म् का उच्चारण करते हुए, जो साधक प्राण त्यागता है, यह निश्चय ही परमगति (परमपद) को प्राप्त करता है। 'अन्त मति सो गति' के अनुसार मुक्ति उपलब्धि का श्रीकृष्ण पोषित सिद्धान्त वैज्ञानिक विचारणा से भी सत्य सिद्ध होता है।

हम सोते समय प्रायः जो विचार या चिन्तन करते होते हैं, प्रातः जगते समय वही विचार या वही चिन्तन सर्वप्रथम हमारे मनस्तल पर उतरता होता है। यह एक सर्व विदित सत्य है। तुर्य-निद्रा मृत्युवत् होती है अतः स्पष्ट है कि मृत्यु समय जैसी बुद्धि होगी, जैसा ध्यान होगा, वैसा ही परिणीति होना सहज स्वाभाविक है। इसी से गीता कहती है कि 'तस्माद् मामनुस्मर युध्य च' हर समय लोक कार्य करते हुए भी, जीवन की युद्ध जैसी विषम समस्याओं से सोत्साह जूझते हुए भी ओ३म् का स्मरण करते रहो। ऐसा अभ्यास करने पर ही यह आशा की जा सकती है कि मृत्युवेला में ओ३म् की ओर बरबस हमारा ध्यान जायेगा। फलतः मोक्ष या परगति आप से आप सिद्ध होगी।

यदि दुस्संकारों की प्रबलता या रोग विशेष की उग्रता के कारण अन्तकाल में ॐ का ध्यान नहीं भी सध सका तो भी कोई अधिक हानि नहीं होगी। ॐ के प्रगाढ अभ्यास का सुफल अवश्य मिलेगा। गीता का स्पष्ट कहना है कि शुभ-अभ्यास कभी व्यर्थ नहीं जाता। योग से पूर्वोक्त कारण से भ्रष्ट होने पर भी सद्गति मिलेगी। जिस स्तर तक इस जीवन में विकास किया है, उसे आगे बढ़ाने का सुविधा-भरित शुभ अवसर अगले जन्म में मिलेगा। इस प्रकार ॐ का स्मरण चिन्तन ध्यान-अर्चा करने वाला कोई भी साधक कभी घाटे में नहीं रहता। आवश्यकता है संयम, निष्ठा और श्रद्धा के साथ ॐ ब्रह्म की अनवरत उपासना करने की। यही गीता का अभिमत है।

ओंकार और गीता का त्रिगुणवाद—

गीता में कहा गया है कि समस्त सृष्टि-व्यापार सत, रज और तम इन तीन गुणों (सूक्ष्म सूत्रों, तरङ्गों कणों या किरणों) के द्वारा सम्पादित होता है। किन्तु अहंकार से मोहित अन्तःकरण वाला व्यक्ति 'मैं कर्त्ता हूँ' ऐसा मानता है उसका यह मिथ्या अहं उसको बन्धन में डाले हुये है।

गीता के इस कथन में जिन सत, रज, तम रूपी तीन गुणों का व्याख्यान है, वह और कुछ नहीं ओ३म् के अ, उ म ही हैं। 'अ' सतोगुण है, 'उ' रजोगुण और 'म' तमोगुण है। अनादि काल से जो विश्व का घटना प्रवाह बहता चला आ रहा है और अनन्त काल तक यूँ ही जिसे बहते रहना है, वे इन्हीं तीन गुणों से संचालित है। समस्त दृश्य समस्त घटनाएँ, समस्त ऊहापोह, सत्व, रज और तम के ही कार्य हैं। वही इन सबका उपादान कारण है। ऐसी स्थिति में किसी घटना विशेष को अहं-बुद्धि से देखना हीन-भाव नहीं तो क्या है। यह संकीर्णता, यह तङ्गदिली व्यक्ति के दैव स्वभाव को नष्ट करने वाली है। यह क्षुद्रता उसे पाशविक बनाती है। नाना प्रकार के द्वन्द्वों में डालती है। ओ३म् के 'अ' 'उ' 'म' का यह तत्व ज्ञान 'अहं' को विस्तृत बनाने की प्रेरणा देता है। विशाल दृष्टिकोण, उदारता, आत्मीयता, विशाल हृदयता, सहयोग-सद्भाव अपनाने को कहता है। अ, उ, म से गुम्फित ओ३म् जहाँ ओछापन, छोटापन, स्वार्थपरता और लोभ-लालच छोड़ने को प्रेरित करता है; वहाँ समष्टि, प्रेम, विश्व-बन्धुत्व की भावना और सेवा-धर्म अपनाने को कहता है। जो साधक ओ३म् के इस संकेत को समझ लेता है, वह ब्रह्ममय हो जाता है। उसे सब ओर ओ३म् (अ, उ, म) ही ओ३म् (अ, उ, म) दिखाई पड़ते हैं। गीता कहती है। कि ऐसा ब्रह्म परायण व्यक्ति, ब्राह्मी वृत्ति वाला साधक ब्रह्म को प्राप्त करता है—

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ।२४

गीता ४।२४

गोस्वामी तुलसीदास ने भी एक दोहे में ओ३म् की इस त्रिगुण का बड़े ही सरल शब्दों में उल्लेख किया है—

जड़ चेतन गुण-दोष मय विश्व कीन्हि करतार ।
संत हंस पय पियहिं, परिहरि वारि विकार ।

यह संसार तीनों गुणों का खेल है । यहाँ सत्प्रवृत्तियाँ भी हैं दुष्प्रवृत्तियाँ भी हैं । सत्गुण और दुर्गुण दोनों से ही युक्त यह विश्व परमात्मा ने बनाया है । हंस जिस प्रकार से पानी मिले दूध में से दूध पी लेता है और पानी-पानी छोड़ देता है, उसी प्रकार श्रेष्ठ लोग सद्गुणों का ही संग्रह करते हैं । वे अवगुणों को छोड़ते चलते हैं। ओ३म् के उपासक को सद्गुणों के संग्रह और अवगुणों के परित्याग के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए । इसी में उसका गौरव है । इसी बीच में सुख, शान्ति कुशलता और सफलता है ।

योग ग्रन्थों में ओंकार

ऋग्वेद में कहा गया है—

यस्माद्दते न सिध्यति यज्ञो विपश्चित्तश्चन । स धीनां योगमिन्वति ।

(ऋग्वेद १।१८।७)

योग के बिना विद्वान् का कोई भी यज्ञ कर्म (शुभ कार्य) कभी सिद्ध नहीं होता । वह योग क्या है ? वह योग और कुछ नहीं, चित्त वृत्तियो का निरोध ही है । यह योग समस्त कर्तव्य कर्मों में व्याप्त है

योग दर्शन में महर्षि पतञ्जलि ने भी योग की परिभाषा यही की है।

योगश्चित्तवृत्ति-निरोधः

अर्थात्–चित्त की वृत्तियों को रोकना ही योग है। इस सूत्र में केवल चित्तवृत्ति निरोध शब्द है, सर्वचित्तवृत्ति निरोध नहीं। सम्प्रज्ञात समाधि में वृत्तियों का सर्वथा अभाव नहीं हो जाता। सूक्ष्म सात्विक भाव वहाँ विद्यमान रहते हैं। किन्तु चित्त से रज, तम के समस्त विकार (दोष या मल-आवरण) अवश्य दूर हो जाते हैं। इस दृष्टि से तम का मल रूप आवरण और रजस् की विक्षेप रूप चंचलता निवृत्त होकर सत्व के प्रकाश में जो एकाग्र वृत्ति रहती है, उसी का नाम योग है। दूसरे शब्दों में सात्विक एकाग्रता ही योग है।

आज हम जो भी कार्य करते हैं, वह प्रायः अन्यमनस्क होकर ही करते हैं। कहने को तो हम पूजन करते हैं, किन्तु मन से दूसरे-दूसरे विषयों में रमण करते हैं। करने को तो हम भोजन करते हैं, किन्तु चित्तवृत्तियाँ दूर-दूर भागी फिरती हैं। हमारी यही स्थिति, व्यवसाय परिवार भरण, कार्यालय, यात्रा आदि में भी रहती है। इसे अनमनता या अन्यमनस्कता कहते हैं। कोई भी कार्य करते हुए मन की यह उचाट हमारे साथ रहती है, फलतः न तो कार्य ही उचित रूप से सम्पादित हो पाता है, न कार्यकुशलता ही आने पाती है और न हमें अपने कार्य में यथेष्ट सफलता ही मिलतीं है। यह उचाटपन ही 'अयोग' है। इसके विपरीत पूरी एकाग्रता से कार्य करने की आदत ही व्यवहारिक योग' है।

योग-दर्शन में इस अयोग-स्थिति का प्रतिकार प्रणव का भाव पूर्ण स्मरण करना बताया गया है—

तस्य वाचकः प्रणवः

(योग. सूत्र १।२७)

उस ईश्वर का वाचक (नाम) प्रणव या ओ३म् है।

तज्जपस्तदर्थ-भवनम्

(योग सूत्र १।२८)

ततः प्रत्यक्-चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाऽभावश्च ।

(योग सूत्र १।२९)

उस ओम मंत्र का उसके अर्थों पर विचार करते हुए जप करना चाहिए । ऐसा करने से प्रत्येक चेतन (अन्तःकरण) में स्थित परमात्मा का (अधिगमः+अपि) साक्षात्कार होने लगता है और सात्विक एकाग्रता (चित्त-वृत्ति-निरोध) के समस्त अन्तरायों (विघ्नों) का नाश हो जाता है, योग की सिद्धि होती है ।

योग दर्शन में चित्त वृत्ति निरोध रूप योग अन्तराय इस प्रकार बताये गये हैं, जिनके कारण मनुष्य अपना मन लिये-लिये फिरता है, छटपटाता रहता है, कोई भी कार्य पूर्ण मनोयोग के साथ नहीं कर पाता है—

व्याधिस्त्यान संशय-प्रमादालस्याविरति भ्रान्तिदर्शनालब्ध भूमिकत्वादनवस्थितत्वानि, चित्तऽविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ।

(योग सूत्र १।३०)

दुःख दौर्मनस्यांग मेजयत्वश्वास प्रश्वासा विक्षेप सहभुवः

(योग सूत्र १।३१)

मन की एकाग्रता के बाधक चौदह अन्तराय (विघ्न) हैं—(१) व्याधि या शारीरिक रोग, (२) स्त्यान या चित्त की अकर्मण्यता अथवा मनोबल (मानसिक शक्ति) की कमी, (३) संशय (स्पष्ट ज्ञान का न होना), (४) प्रमाद (टालमटोल करने की आदत), (५) आलस्य (६) अविरति (किसी वस्तु, प्राणी, स्थान या आदर्श विशेष से अत्याधिक लगाव या चिपकन), (७) भ्रान्ति दर्शन या ऊटपटाँग विचार (७) अलब्ध-भूमिकत्व या अभीष्ट स्तर तक उन्नति न कर पाना, (९) अनवस्थितत्व या दृढ़ता का अभाव, लगन का अभाव (१०) दुःख विविध प्रकार के दैहिक, दैविक और भौतिक क्लेश), (११) दौर्मनस्यता अत्यधिक क्षोभ, कुढ़न की प्रवृत्ति (अङ्गमेजयत्व) अर्था

शरीरांगों को विरूपता या शिथिलता, (१२) श्वास (भीतरी कुम्भक में विघ्न होना) और (१४) प्रश्वास बाहरी कुम्भक में विघ्न होना।

ये समस्त दोष, विकार या विक्षेप ऊँ के जप और परमात्मा तत्व के चिन्तन-ध्यान से दूर हो जाते हैं और योग की सहज प्राप्ति हो जाती है—

तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्वाभ्यासः

(योग सूत्र १।३२)

इन सभी विघ्नों के विनाश के लिए (एकतत्वाभ्यासः) ओ३म् रूप एकतत्व का अभ्यास करे। प्रणव का जप और ईश्वर के स्वरूप के चिन्तन से चित्त में एकाग्रता आती है। चित्त पर छाये हुए तमो विकार तथा रजोदोष मिट जाते हैं। योगी की वृत्तियाँ नित्य सत्वस्थ' हो जाती हैं।

योग पद का अर्थ युक्त होना, जुड़ना, मिलना, एकाकार होना, एकरूप होना भी किया जाता है। तदनुसार "संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्मपरमात्मनोः (याज्ञवल्क्य०) जीवात्मा का परमात्मा से संयोग होना ही योग है। जीव ज्योति का परमात्म, ज्योति से मिलना ही योग। इस प्रगाढ़ ध्यान रूप योग की सिद्धि भी ऊँ से ही सम्भव है। इसलिए ओ३म् को प्रणव नाम से सम्बोधित किया जाता है—

प्राणान् सर्वान् परमात्मनि प्रणमयतीत्येतस्मात् प्रणवः।

(अथर्व-शिखोपनिषद्)

जिसके स्मरण-ध्यान से समस्त प्राण-प्रवृत्ति परमात्मा में लीन हो जाती हैं, आत्म-विस्मृति-युक्त तन्मयता (बेसुधी) आती है, उसे 'प्रणव' कहते हैं। इस प्रकार प्रणव की साधना से ही राजयोग-ध्यान धारणा और समाधि की प्राप्ति होती है। ऐसा योग-ग्रन्थों का स्पष्ट मत है।

योग-शास्त्र में प्रणव के स्वरूप का वैज्ञानिक शैली में चित्रण भी बड़े विशद रूप में किया गया है।

कार्यंयत्र विभाव्यते किमपि तत्स्पन्देन सव्यापकम् ।
स्पन्दञ्चापि तथा जगत्सु विदितः शब्दान्वयी सर्वदा ॥
सृष्टिश्चापि तथादिमाकृति विशेषत्वादभूत्स्पन्दिनी ।
शब्दश्चोदभवत्तदा प्रवण इत्योंकार रूपः शिवः ॥

अर्थात्—जहाँ कुछ कार्य है, वहाँ कम्पन अवश्य होगा । जहाँ कम्पन होगा, वहाँ ध्वनि (शब्द) भी अवश्य होगी । इस दृष्टि से विचार करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सृष्टि-क्रिया भी एक कार्य है। इसलिए सृष्टि-सृजन के समय प्रकृति के प्रथम स्पन्दन द्वारा जो शब्द उत्पन्न हुआ, वही मङ्गलकारी ओङ्कार रूप प्रणव है । सत्व, रज, तम नामक तीनों गुणों की साम्यवस्था से वैषम्यावस्था का प्रस्फुटन प्रारम्भ होने पर सबसे प्रथम जो स्पन्दन, कम्पन या हिल्लोल हुआ, वह ध्वनि विशेष ही ओङ्कार है । इस आलोक में प्रणव-योग त्रिगुणी की प्रक्रिया में समता स्थापन की साधना है ।

प्रणव योग का स्वरूप—

हमारे मन पर छाये हुए काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, अनुदारता, संकीर्णता, अहंवृत्ति, ओछापन स्वार्थपरता घृणा प्रभृति विकार सत्, रज और तम की विषमता (अपनी-अपनी खींचातानी)) के कारण ही उद्‌भूत होते हैं । प्रणव योग सत, रज और तम की आपाधापी को मिटाता है । तीनों गुणों में समता और एकता लाता है । नियमपरायणता समय-परायणता और सत्व-परायणता द्वारा गुणों के दैनन्दित संघर्ष को दूर करता है । उनके प्रकर्षों (खींचातानी) को सन्तुलित करता है । जीवन को सुव्यवस्थित बनाता है । जीवन में सामञ्जस्य और दृष्टिकोण में समन्वय लाता है । इस प्रकार प्रणव-योग गीतोक्त 'योगः कर्मसु कौशलम्' है । कर्मों के यथाविधि संचालन की प्रक्रिया ही व्यवहारिक प्रणव योग है । इसलिये उसे कर्म-योग भी कहा जाता है ।

कुण्डलिनी योग, सुरत योग, समाधि योग, नादानुसन्धान योग,

लय योग, मन्त्र योग, हठयोग इत्यादि प्रसिद्ध योगों की साधन-विधियों में प्रणव का स्मरण, ध्यान चिन्तन किसी न किसी रूप में अवश्य पाया जाता है। इसे देखते हुए कहा जा सकता है कि प्रणव सभी योगों में मूर्धन्य स्थान रखता है। कभी योगों का साधक है।

———

पुराणों का ओंकार

वेद आर्यों के सर्वप्रधान धर्म ग्रन्थ हैं। वे मनात्मक हैं, धर्म-तत्व का विवेचन समास शैली में करते हैं। पुराकाल में जब कागज़ और मुद्रण कला का आविष्कार और प्रचलन न था, तब श्रीमान् मनस्वी उन्हें श्रुति-सेबन विधि से मुखाग्रीकृत करते थे। कालान्तर में सभी वेद मन्त्रों को संहिता रूप से संकलित किया गया। इन संकलनों को ऋग, यजु, साम और अथर्व संहिता की संज्ञा दी गई। इन संहिताओं में ऋचाओं का संग्रह विषयवार नहीं है। अतः सामान्य अध्येता के लिये, जिसे अप्रचलित होने के कारण वैदिक भाषा ही दुर्बोध है, वेदों का पढ़ना-पढ़ाना, समझना-समझाना दुष्कर जानकर वैदिकोत्तर काल के तपस्वी तत्वदर्शियों ने वैदिक-सिद्धान्त की विशद व्याख्या कथा-शैली में पुराणों के रूप में की। वैदिक तत्वज्ञान पुराणो में विस्तृत आख्यायिकाओं द्वारा वर्णित किये गये हैं। यूँ कहना चाहिये कि चूँकि वेद सर्व साधारण की समझ में नहीं आये थे, इसलिए उन विचारों को सर्व साधारण में प्रसारित करने के लिए कक्षाओं का आधार लेकर पुराणों का निर्माण किया गया है। अतः हमारे साहित्य में उनका महत्वपूर्ण स्थान है।

ओ३म् की उत्पत्ति, उसकी विविध मात्रायें, उससे समस्त वर्णों व ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति का निरूपण इन पुराणों में यत्र तत्र कई स्थानों पर विपुल विस्तार के साथ पाया जाता है।

श्रीमद्भागवत पुराण--

श्रीमद्भागवत् के ग्यारहवें स्कन्ध में भगवान् श्रीकृष्ण अपने परमभक्त सखा उद्धव जी से कहते हैं—

आदौ कृतयुगे वर्णो नृणां हंस इति स्मृतः ।
कृतकृत्याः प्रजा जाता तस्मातकृतयुगं विदुः ।।
वेदः प्रणव एवाग्रे धर्मोऽहं वृषरूपधृक् ।
उपासते तपोनिष्ठं हंसे मां मुक्तकिल्विषाः ।।

यहाँ स्पष्ट बताया गया है कि प्रणव उपासना आदि सतयुग से युगों-युगों में होती आई है। स्मरण रहे, प्रणव और हंस ओंकार ब्रह्म के ही पर्याय वाचक हैं।

श्रीमद्भागवत् के द्वादश स्कन्ध में ओ३म् के स्वरूप की व्याख्या निम्न शब्दों में की गयी गयी है—

समाहितात्मनो ब्रह्मन् ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
हृद्याकाशादभून्नादो वृत्तिरोधाद्विभाव्यते ।।३७
यदुपासनया ब्रह्मन् योगिनो मलमात्मनः ।
द्रव्यक्रियाकारकाख्यं धूत्वा यान्त्यपुनर्भवम् ।३८
ततोऽभूद् त्रिवृदोंकारो योऽव्यक्तः प्रभवः स्वराट् ।
यत्तल्लिगं भगवतो ब्रह्मणः परमात्मनः ।।३९
स्वधाम्नो ब्रह्मणः साक्षाद्वाच्कः परमात्मनः ।
स सर्वमन्त्रोपनिषद् वेद बीजं सनातनम् ।।४०

'हे ब्रह्मन ! जब परमेष्ठी ब्रह्म ने अपनी चित्तवृत्तियों का निरोध किया, तब उनके हृदयाकाश में नाद सुनाई पड़ा। ब्रह्माजी द्वारा चित्त वृत्तियों के अवरोध करने पर ही उनको उस दिव्य नादकी प्रतीति हुई। हे ब्रह्मन ! जिसकी उपासना से योगीजन अपने समस्त मलों (दुस्संस्कारों, वासनाओं) को शुद्ध करके मुक्ति को प्राप्त करते हैं, वह नाद ओ, उ, म, इस तीन अक्षरों से युक्त ओङ्कार रूप में व्यक्त हुआ। हे शौनक !' मूलतः वह अव्यक्त हैं, स्वराट् है। वह परमात्मा का प्रतीक

(लिङ्ग रूप) है। हे ब्रह्मन् ! परमात्मा का साक्षात् वाचक ॐ ही है। वह अन्य सभी मन्त्रों का, उपनिषदों और वेदों का सनातन बीज है।३७-४०।

ॐ रूप ब्रह्म नाद का ध्यान किस प्रकार करना चाहिये, इसका वर्णन भागवत् के ग्यारहवें स्कन्ध में इस प्रकार किया गया है।

हृद्यविच्छिन्नमोंकारं घण्टानादं बिसोर्णवत्।
प्राणानोदीर्य तत्राथ पुनः संवेशयेत् स्वरम्॥
(श्रीमद्भागवत् ११।१४)

शान्त चित्त एकान्त स्थान में बैठकर ओ३म् का ध्यान करते हुये घण्टा नाद के समान पद्मनालवत् अविच्छिन्न (निरन्तर, विना टूटे) ॐॐॐ का उच्चारण करे। यह मनोजाप प्राण वायु (श्वास-प्रश्वास) के साथ किया जाना चाहिये। भाव-पूर्ण हृदय से प्राणायाम साधते हुये ॐ का पुनः पुनः स्मरण करते हुए उसी में तन्मय हो उसी में प्रवेश करे। इस प्रकार तीव्र ध्यान करने से योगी का मन शीघ्र शान्ति को प्राप्त हो जाता है समस्त सांसारिक चिन्तायें मिटती हैं, दुःख दूर होते हैं मानसिक सताप या तनाव और अबसाद नष्ट होते हैं। समस्त विभ्रग, संशय तिरोहित होते है ऐसा इस ध्यान का फल भागवत् (११।१४।४) में वताया गया है।

लिंग पुराण--

लिङ्ग पुराण में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि प्रणव से ही सभी मन्त्रों का आविर्भाव हुआ है। प्रणव के विराट् स्वरूप से ही सारे मन्त्र उत्पन्न हुए हैं। आकार को मस्तक और आकार का ललाट कहा गया है। इस दांयी आँख और ईकार बांयी आँख है। उकार दाहिना कान और ऊकार बांया कान है। ऋकार दाहिना कपोल और ॠकार बांया कपोल है। लृकार और लॄकार दोनों नासिकायें हैं। एकार को 'ओकार' की ऊर्ध्व दन्तावली और 'ओंकार' को अधो दन्तावली बताया गया है। अं और अः दोनों तालु हैं। क् से ङ् तक पांच वर्ण उसके

दाहिने पांव हाथ हैं। च् से ञ् तक पाँच अक्षर उसके दायें पाँच हाथ हैं। ट से ण तक ५ अक्षर और त से न तक पांच अक्षर उसके पैर हैं। पकार को पेट फकार को दाँया पार्श्व, बकार को वांया पार्श्व भकार को स्कन्ध और मकार को हृदय माना गया है। यकार से सकार तक प्रणव के सात धातु हैं। हकार का भरूप और क्षकार क्रोध रूप है। वर्णों की उत्पत्ति प्रणव से ही कही गयी है। यह मन्त्र शिरोमणि है नहीं मन्त्रों का जनक भी है। सबका मूल है। जिस तरह मूल के उखाड़ देने से सारा पेड़ नष्ट हो जाता है, उसी तरह ओ३म् के बिना सभी मन्त्र प्रभावहीन, शक्तिहीन और खोखले रहते हैं।

शिव पुराण--

शिव पुराण में कहा गया है—

प्रणवः सर्ववेदादिः, प्रणवः शिववाचकः।
शिवो प्रणवो ह्येव, प्रणवो वा शिवः स्मृतः॥
वाच्यवाचककेयोर्भेदो नात्यन्तं विद्यते यतः।
तस्मादेकाक्षरं देवं शिवं परमकारणम्॥

अर्थात् "प्रणव समस्त वेदों का आदि है प्रणव शिव (कल्याण स्वरूप परमात्मा) का वाचक (नाम) है। शिव अथवा प्रणव, प्रणव अथवा शिव दोनों एक ही हैं। ऐसा स्मृति ग्रन्थों में कहा गया है।"

चूँकि वाच्य और वाचक में अधिक अन्तर नहीं है, तत्वतः दोनों एक ही हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू भर हैं, इसलिए एकाक्षर ॐ ही सृष्टि का एक परम कारण है। वही शिव है, एकमात्र देवता है उससे भिन्न और कोई देव नहीं है।

वायु पुराण--

मात्राओं की मीमांसा करते हुए कहा गया है—

एष त्रिमात्रो विज्ञेयो व्यंजनञ्चात्र सस्वरम्।१
प्रथमा वैद्युती मात्रा द्वितीया तामसी स्मृता।
तृतीया निर्गुणी विद्यान्मात्रामक्षरयामिनीम्।२

यह ओङ्कार तीन मात्रा वाला समझ लेना चाहिये इसमें व्यंजन जो होता है वह मुक्त होता है। प्रथमा मात्रा वैद्युती होती है, द्वितीया मात्रा तामसी कही गई है और तृतीया निर्गुणी होती है। इस प्रकार से अक्षरों में गमन करने वाली मात्रा को जानना चाहिए। १-२।

तथा प्रयुक्तमोंकार प्रतिनिर्वाति मूर्द्धनि।
तथोंकारमयो योगी ह्यक्षरे त्वक्षरी भवेत्।३
प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तुलक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्।४
ओमित्येत त्रयो वेदास्त्रयो लोकास्त्रयोऽग्नयः।
विष्णुक्रमाभवन्त्येते ऋक्सामानि यजूंषि च।५
मात्राश्चात्र चतस्रस्तु विज्ञेयाः परमार्थतः।
तत्र युक्तश्च यो योगी तस्य सालोक्यतां व्रजेत्।६

इस प्रकार से प्रयोग में लाया हुआ ओंकार मूर्द्धा में प्रतिनिवृत्त होता है। इस तरह यह ओंकार से परिपूर्ण योगी अक्षर में अक्षरी हो जाता है। प्रणव धनुष है, आत्मा शर है और उसका लक्ष्य स्थान ब्रह्म होता है। यदि अप्रमत्त होते वध्यं हो तो शर की भाँति वह तन्मय हो जाता है। 'ओ३म्' यह एकाक्षर वाला ब्रह्म पद गुहा में निहित है। 'ओ३म्—यह तीन वेद हैं—तीन लोक हैं और तीन अग्नि हैं। ये तीनों ऋक्-साम और यजु विष्णु के क्रम हैं। यहाँ चार मात्रायें हैं जो कि परमार्थ रूप से समझ लेनी चाहिये। उनमें युक्त जो योगी हैं, वह सालोक्यता को जाता है। ३-६।

अकारस्त्वक्षरो ज्ञेय उकारः स्वरितः स्मृतः।
मकारस्तु प्लुतो मेयस्त्रिमात्र इति संज्ञितः।७
अकारस्त्वथ भूर्लोक उकारो भुवउच्यते।
सव्यंजनी मकारश्च स्वर्ल्लोकश्च विधीयते।८
ओंकारस्तु त्रयो लोकाः शिरस्तस्य त्रिविष्टपम्।

भुवनान्तञ्च तत्सर्वं ब्राह्मं तत्पदमुच्यते ।९
मात्रावापदं रुद्रलोको ह्यमात्रस्तु शिवं पदम् ।
एवन्ध्यानविशेषेण तत्पदं समुपासते ।१०

इसमें अकार को अक्षर समझना चाहिए और उकार स्वरित कहा गया है । मकार प्लुत जानना चाहिये । इस प्रकार से यह तीन मात्रा वाला संक्षिप्त होता है । उसमें जो अकार हैं वह भूलोक है और उकार भुवलोक कहा जाता है । व्यञ्जन के साथ मकार जो है, वह स्वर्लोक होता है । ओंकार जो वह तीन लोक हैं उसका शिर त्रिविष्टप होता है। वह सब भुवनान्त होता है । ब्राह्म उसका पद कहा जाता है । मात्रा पद रुद्र लोक है और जो अभाव हैं वह शिव-पद होता है। इस प्रकार से ध्यान की विशेषता से उसके पद की समुपासना करते हैं । (७-१०)

ओ३म् की उपासना की विशद फलश्रुति का वर्णन करते हुए वायु पुराण में कहा गया है कि—

इत्येतदक्षरं ब्रह्म परमोङ्कारसंज्ञितम् ।
यस्तु वेदयते सम्यक् तथा ध्यायति वा पुनः ।
संसारचक्रमुत्सृज्य मुक्तबन्धनबन्धनः ।
अचलं निर्गुणं स्थानं शिवं प्राप्नोत्यसंशयम् ।

'ओंकार ही एकाक्षर परम ब्रह्म है । जो इसे ठीक प्रकार से समझता और ठीक प्रकार से बार-बार इसका ध्यान करता है, वह संसार के आवागमन के चक्कर को छोड़कर समस्त बन्धनों से मुक्त हुआ अचल निर्गुण, शिव-लोक को निस्सन्देह प्राप्त होता है । वह अपुनरावर्तिनी मुक्ति को पाता है ।

मार्कण्डेय पुराण--

उसमें ओंकार की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है—

दृष्ट्वा च परमात्मानप्रत्यक्षं विश्वरूपिणम् ।
विश्वपादशिरोग्रीवं विश्वेश विश्वमानवम् ।१

तत्प्राप्तये महत्पुण्यमोमित्येकाक्षरं जपेत् ।
तदेवाध्ययनं तस्यस्वरूपं शृण्वतः परम् ।२
अकारश्चतथोकारामकारश्चाक्षरत्रयम् ।
एतास्तिस्रः स्मृतामात्राः सात्त्वराजसतामसाः ।३
निर्गुणायोगिगम्यान्याचाधर्ममात्रोर्ध्वसंस्थिता ।
गान्धारीतिचविज्ञे यागान्धारस्वरसश्रया ।४
पिपी लिकागतिस्पर्शाप्रयुक्तामूर्ध्निलक्ष्यते ।
यथाप्रयुक्ताओंकार प्रतिनिर्य्यातिमूर्द्ध नि ।५
तथोंकारमयो योगी त्वक्षरेत्वक्षरोभवेत् ।
प्राणोधनुः शरोह्यात्माब्राह्मवेध्यमनुत्तमम् ।६

जो विश्व स्वरूप, विश्वेश्वर और विश्वभावन हैं तथा विश्व-सी जिनके पाद, ग्रीवा और मस्तक हैं, उन्हीं परब्रह्म को प्रत्यक्ष करके योगी उनको पाने के निमित्त 'ओ३म्' इस एकाक्षर मन्त्र का जप करे, यही उनका स्वाध्याय है इसी ओंकार स्वरूप का श्रवण करना चाहिए। अकार, उकार और यही तीन अक्षर ओंकार स्वरूप हैं, इन्हें तीन मात्रा समझो, यही मात्रा के क्रम से सात्विक, राजसिक और तामसिक होते हैं तथा ओंकार में एक अर्द्ध मात्रा और है, वह तीनो गुणों से परे हैं, ऊर्ध्व में अवस्थित योगियों को गम्य है, इसमें गांधार स्वर का आश्रय होने से यह गांधारी नाम से प्रसिद्ध है। यह मात्रा चींटी के समान गति और स्पर्श वाली है, यह शिरोभाग में दिखाई देती है, तथा जिस प्रकार ओंकार प्रयुक्त यह शिरोभाग में हो जाता है वैसे ही योगी अक्षर-अक्षर में ओंकार युक्त होता है प्राण को धनुप रूप, आत्मा को बाण रूप और ब्रह्म को लक्ष्य रूप ध्याते हैं। (१-६)

अप्रमत्ते नवेद्धव्यंशरवत्त न्मयोभवेत् ।
ओमित्येतत्त्रयोवेदास्त्रयोलोकास्त्रयोऽग्नयः ।७
विष्णुर्ब्रह्माहरश्चैवऋक्सामानियजूंषिच ।
मात्राः सार्द्धाश्चातिस्रश्च विज्ञेयाः परमार्थयः ।८

तत्रयुक्तस्तु योयोगीसतल्लयमवाप्नुयात् ।
अकारस्त्वथभूर्लोकउकारश्चोच्यतेभुवः ।९
सव्यञ्चनोमकारश्चस्वर्लोकः परिकल्प्यते ।
व्यक्तातुप्रथमा मात्रा द्वितीया व्यक्तसंज्ञिता ।१०
मात्रा तृतीयाचिच्छक्तिरर्धमात्रापरं पदम् ।
अनेनैवक्रमेणैताविज्ञेया योगभूमयः ।११

प्रमाद रहित होकर ही बाण के समान ब्रह्म को विद्ध करने में तन्मय हो सकता है, ओंकार ही त्रिवेद त्रैलोक्य और तीनों अग्नि ब्रह्मा विष्णु, शिव तथा ऋक् यजु, साम स्वरूप है, परम अर्थ से ओंकार की साढ़े तीन मात्रा हैं। इस ओंकार में मिलकर योगी उसमें लीन होते हैं, अकार भूर्लोक, उकार भुवर्लोक तथा व्यंजन युक्त मकार स्वर्लोक कहा गया है। उसकी प्रथम मात्रा व्यक्त, द्वितीय अव्यक्ता, तृतीय चिच्छक्ति और चतुर्थ परम पद है, इस प्रकार क्रम पूर्वक इसे योग भूमि समझो ।७-११।

ओमित्युच्चारणात्सर्वंगृहीतं सदद्भवेत् ।
ह्रस्वातुप्रथमामात्रा द्वितीयादैर्घ्यसंयुता ।१२
तृतीयाचप्लुतार्धाख्या वचसः सानुगोचरा ।
इत्येतदक्षरं ब्रह्म परमोंकारसंज्ञितम् ।१३
यस्तुवेदनरः सम्यक्तया ध्यायतिवापुनः ।
संसारचक्रमुत्सृज्य त्यक्तत्रिविधबन्धनः ।१४
प्राप्नोति ब्रह्मनिलयं परमे परमात्मनि ।
आक्षीण कर्मबन्धश्च ज्ञात्वामृत्युमरिष्टतः ।१५
उत्क्रान्तिकालेसंस्मृत्यपुनर्योगित्वमृच्छति ।
तस्मादसिद्धयोगेन सिद्ध योगेनवापुनः ।
ज्ञेयान्यरिष्टानि सदा येनोत्क्रांतौ न सीदति ।१६

केवल ओ३म् का उच्चारण करते ही सदैव सत् असत् का ग्रहण हो जाता है प्रथम मात्रा ह्रस्व और द्वितीय मात्रा दीर्घ है। तृतीय मात्रा

प्लुत स्वरूप है और अर्द्ध मात्रा का तो स्वरूप वर्णन ही नही किया जा सकता, इस प्रकार जो योगी ओंकार स्वरूप अक्षर पर ब्रह्म को जानकर उनका ध्यान करते हैं, वह संसार चक्र का अतिक्रमण करते हुए तीनों बन्धनों को छोड़कर उस परब्रह्म में ही लीन हो जाते हैं। यदि उनके कर्म-बन्धन क्षाण न हों तो वह अरिष्ट द्वारा मृत्यु काल को जान कर उस समय स्मृति लाभ पूर्वक योगित्व को पुनः प्राप्त होते हैं, इसलिए सिद्ध या असिद्ध कैसा भी योगी हो, अरिष्ट ज्ञान होना ही चाहिये, क्योंकि अरिष्ट के ज्ञान से मरणकाल में दुःख की प्राप्ति नहीं होती।१२-१६।

भविष्य पुराण--

इस पुराण में ओंकार महिमा का गान करते हुए कहा गया है-

ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादादावंते च सर्वदा।
स्रवत्यनोंकृत पूर्वं परस्ताच्च विशीर्णते।१
श्रूयतां चापि राजेन्द्र यथोंकारं द्विजोऽर्हति।
प्राक्कूलान्पर्युपासीनः पवित्रैश्चैव पावितः।।२
प्राणायामैस्त्रिभिः पूतस्ततस्त्वोकारमर्हति।
ओंकारलक्षणं चापि शृणुष्व कुरुनन्दन।३
अकारं चाप्युकारं च मकारं च प्रजापतिः।
वेदत्रयात्तु निगृह्य भूर्भुवः स्वरितीति च।४
त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादपादमदूदुहत्।
तदित्यृचोऽस्याः सावित्र्याः परमेष्ठी प्रजापतिः।५

"ब्रह्म अर्थात वेद के अध्ययन के आरम्भ में लीन और अन्त में सर्वदा प्रणव का उच्चारण करना चाहिये। जो आरम्भ में ओङ्कृत नहीं है अर्थात् जिसके आरम्भ में प्रणव नहीं कहा जाता है, वह स्रवित होता है और पश्चात् में विशीर्ण होता है। हे राजेन्द्र! जिस प्रकार से द्विज ओंकार के योग्य होता है, उनका श्रवण कर लो। प्राक्कूलों

की पर्युपासना करने वाला पवित्रों के द्वारा पावित हो जाता है। तीन प्राणायाम के द्वारा पूत हो जाता है और फिर वह ओंकार के योग्य होता है। हे कुरुनन्दन ! अब ओंकार का लक्षण भी श्रवण करो। प्रजापति ने तीनों वेदों से अकार, उकार और मकार का संग्रह करके ओ 'भू भुव: स्व: उनका संग्रह करके इसकी रचना की है। तीनों वेदों से परम पितामह परमेष्ठी प्रजापति ने इस सावित्री ऋचा के पाद-पाद का दोहन किया है। (१-५)

एतदक्षरमेतां च जपन्व्याहृतिपूर्विकाम् ।
सन्ध्ययोरुभयोर्विप्रो वेद पुण्येन युज्यते ।
सहस्रकृत्वभ्यस्य बहिरेतन्त्रिकं द्विजः ।
मासतोऽप्येनसो मासात्वचेवाहिर्विमुच्यते ।७
एतदृचा विसयुक्तः काले च क्रियया स्वया ।
विप्रक्षत्रियविचोनिर्गर्हणां याति साधुषु ।८
शृणुष्वै कमनाराजन्परम ब्रह्मणो सुखम् ।
ॐकारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतवोऽव्ययाः ।९
त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेया ब्रह्मणो मुखम् ।
योऽधीतेऽहन्यन्येतां त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रितः ।१०
स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान् ।
एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परं तपः ।११

इस प्रणव का और व्याहृतियों से सम्पन्न इस सावित्री का दोनों संन्ध्याओं में जप करने वाला विप्र वेद के पाठ से पुण्य से युक्त होता है। इस त्रिक का एक सहस्र बार ब्राह्मण अभ्यास करके एक मास में महान् पाप से छूट जाता है। जिस प्रकार अपनी काँचनी से साँप छूट जाया करता है। इसकी चर्चा से विसंयुक्त और समय पर क्रिया से रहित होने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य साधु पुरुषों में निन्दा को प्राप्त हुआ करते हैं। हे राजन् ! तुम वैकनिष्ठ मन वाले होकर ब्रह्म के परम सुख का श्रवण करो। जिनके पूर्व में ओंकार होता है ऐसे

तीनों महा व्याहृतियाँ अव्यक्त होती हैं। तीन पदों वाली त्रिपदा सावित्री ब्रह्म का मुख समझनी चाहिये। जो इसको प्रतिदिन तीन वर्ष तक अतेन्द्रिय होकर पढ़ता है वह वायुधूत आकाश की मूर्ति वाला होकर परम ब्रह्म को प्राप्त होता है। एक अक्षर अर्थात् ओ३म् यह एक अक्षर परब्रह्म होता है और प्राणायाम सबसे बड़ा तप होता है। (९-११)

पद्म पुराण--

पद्मपुराण में ओ३म् की इस भावपूर्ण उपासना की फलश्रुति इस प्रकार बतायी गई है --

यावज्जीवं जपेन्मत्रं, प्रणबं ब्रह्मणो वपुः।
ह्रस्वो दहति पापानि, दीर्घः शान्ति प्रदायकः॥
प्लुतस्तु सर्वसिद्धिः स्यात्प्रणवस्त्रिविधः स्मृतः॥

"साधक को चाहिये कि जब तक वह इस संसार में जीवे, तब तक प्रणव का जप-स्मरण करे। प्रणव का उपांशु जप (मन्द स्वर से किया जाने वाला जप) समस्त पाप जीवों (दुसंस्कारों) का नाश करता है। प्रणव का दीर्घ उच्चारण, तार स्वर से किया जाने वाला कीर्तन शान्ति को देने वाला है। प्लुत उच्चारण से समस्त मनोरथों की सिद्धि होती है। इस प्रकार प्रणव साधना तीन प्रकार की स्मृति ग्रन्थों में कही गई है।

पुराणों में विभिन्न प्रकार के देवी-देवताओं के मन्त्रों और उनकी उपासनाओं का विस्तार से वर्णन है परन्तु वे ओंकार की वैदिक उपासनाओं को भी भूले नहीं हैं और मुक्त कंठ से इनकी प्रशंसा करते हुये साधना के लिये।

स्मृतियों में ओंकार

मनुस्मृति समस्त स्मृतियों में प्रधान है। वही सर्व साधारण में विशेष सम्मान और महत्व की दृष्टि से देखी जाती है। यह पर्याप्त विस्तार-पूर्वक लिखी हुई है और उसमें मानव जीवन सम्बन्धी समस्त आवश्यक विषय क्रम से दिये गये हैं। उसके अध्याय में जहाँ चारों आश्रमों के धर्मों और कर्तव्यों का वर्णन किया गया है, वहीं यह भी स्पष्ट निर्देश किया गया है कि वेद पाठ का आरम्भ करने से पूर्व एवं पाठ की समाप्ति के बाद 'ओ३म्' का कीर्तन (सस्वर उच्चारण) अवश्य करें।

ब्रह्मणः प्रणणं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा।
स्रवत्यनोङ्कृतं पूर्वं परस्ताच्च विशीर्यते॥

(मनुस्मृति २।७४)

'वेद के आरम्भ तथा अन्त में सदा प्रणव का उच्चारण (कीर्तन) करना चाहिये। ओंकार से रहित पूर्व स्रावित होता है और पर-काल विशीर्ण हो जाता है। अर्थात् यदि वेद पाठ के आदि-अन्त में ओ३म् का उच्चारण (कीर्तन) नहीं किया गया है, तो वेद-पाठ से प्राप्त होने वाला पुण्य नष्ट हो जाता है। वह वेद पाठ ओ३म्-भावना से भावित न होने के कारण साधारण पुस्तक पठन जैसा अल्पवीर्य या अलाभकारी ही होता है। ओ३म् का कीर्तन ही अन्यमनस्कता को हरता है, चित को एकाग्र करता है। पूज्य भावना के समावेश से उसे आराधना की कोटि में प्रस्थापित करता है। अतएव ओ३म् के कीर्तन (उच्चारण) का बड़ा महत्व है।

इसी अध्याय में मनु महाराज ने आगे कहा है—

अकारञ्चाप्युकारञ्च मकारञ्च प्रजापतिः।
वेदत्रयान्निरदुहद्................................॥ (२।७६)

अर्थात्—प्रजापति ब्रह्मा ने अकार, उकार और मकार को तीनों वेदों से दोहन किया है। ओंकार तीनों वेदों का अमृत-रूप पय है।

एकाक्षरं परं ब्रह्म, प्राणायामः परं तप।

(मनु० २।८३)

एकाक्षर ओ३म् ही परब्रह्म है। प्राणायाम ही परम तप है।

ओंकार सर्व प्राचीन भगवन्नाम है—

ओ३म्कारश्चाथ शब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा।
कण्ठं भित्वा विनिर्यायौ तस्मान्माङ्गलिकावुभौ॥

बृहद् योगियाज्ञवल्क्य स्मृति में प्रणव को भवसागर से पार उतारने वाला तारक मन्त्र कहा गया है—

सर्वदुःखसमुत्थानाद् भवग्राहार्णवाकुलात्।
चिन्तितस्तारयेद्यस्मात्ते न तारो निगद्यते॥

(वृ० यो० २।१२०)

बृहद् पाराशर-स्मृति में भी कहा गया है—

प्रणवो हि परं तत्वं त्रिवेदं त्रिगुणात्मकम्।

अर्थात्—प्रणव ही परम तत्व है, वही त्रिवेद है, त्रिगुणात्मक है। उससे परे कुछ नहीं है।

स्मृतियों में ओंकार माहात्म्य उसके गुणों के अनुरूप है।

तन्त्रों में ओंकार

भारतीय अध्यात्म-साहित्य में तन्त्र की एक विशिष्ट स्थिति है। सामान्यतया सभी तन्त्र-ग्रन्थ भगवान् शिव के मुखसे आविर्भूत बतलाये गये हैं और उनको आप्त-वाक्य के समान पवित्र और प्रामाणिक माना गया है इन तन्त्रों का मुख्य उद्देश्य यही रहा है कि मनुष्य गृहस्थ में रहकर सांसारिक जीवन व्यतीत करता हुआ भी न्यूनाधिक-परिणाम में अध्यात्म-तत्व को ग्रहण कर सके और इस मार्ग पर प्रगति कर सकने

में समर्थ हो जाय। इसलिये उनमें उपासना के कठोर अथवा अस्वाभाविक विधानों को त्याग कर ऐसी विधियों को प्रचलित किया गया जो गृहस्थ जीवन के अनुकूल हों और जिनके कारण सांसारिक कार्यों में किसी प्रकार की बाधा न पड़ती हो।

सचमुच तन्त्र व्यवहारिक ज्ञान और अभ्यास के शास्त्र हैं। तन्त्रों में प्रणवोपासना का किसी न किसी रूप में उल्लेख हुआ है। गन्धर्व तन्त्र में स्पष्ट कहा गया है कि—

प्रणव बीज से शक्तियों व सिद्धियों का उद्भव--

वेदत्रयात् समुद्धृत्य प्रणवं निर्ममे पुरा।

अर्थात्–"वटवृक्ष रूपी तीन वेदों से वेदसार रूप वेद बीज प्रणव बना। बीज होने से इस एकाक्षर प्रणव में वेदत्रयी रूप महावृक्ष की सभी गुण शक्तियाँ सूक्ष्म रूप में हैं।"

शक्ति संयम तन्त्र में प्रणव को ही शिव और अमर सुन्दरी बताया गया है।

प्रणवः सुन्दरो रूपः कलासातकसंयुतः॥

सातों कलाओं से युक्त विन्दु-सुन्दरी प्रणव ही है। इसी ग्रन्थ में षट्कला रूप षट् शिव (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव और कामेश) की उत्पत्ति भी प्रणव से ही मानी गई है। प्रणव बिन्दु से ही समस्त मातृकायें बनी—

बिन्देध्वनि-सकाशात्तु प्रत्येकं वर्णजातयः।
मातृकाणस्तितो जाता, अक्षरेति यथाभवन्।

(शक्ति संगम तंत्र)

प्रपञ्च सार तन्त्र में मूलाधार चक्र में स्थित कुण्डलिनी और कुछ नहीं प्रणव ही है। कुण्डलिनी शक्ति मूलतः प्रणव की ही प्रचण्ड शक्ति है। प्रणवोपासना से कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत (चैतन्य) होती है और उपासक के सभी मनोरथों को पूर्ण करती है।

महानिर्वाण तन्त्र में महादेव जी पार्वती को बताते हैं कि ओम् के बिना कार्य सिद्धि नहीं होती—

ॐतत्सदिति मन्त्रेण यो यत् कर्म्म समाचरेत् ।
गृहस्थो वाप्युदासीनस्तस्याभीष्टाय तद् भवेत् ।।
जपो होमः प्रतिष्ठा च सँस्काराद्यखिलाः क्रिया ।
ॐ तत्सन्मन्त्रनिष्पन्नाः संपूर्णाः स्युर्न संशयः ।।

(महानिर्वाणतन्त्र १४।१५३-१५४)

गृहस्थ हो या संन्यासी, कोई भी क्यों न हो ॐ तत् सत् (एकमात्र ॐ ही वह सत् तत्व है, ॐ ही पारमार्थिक सत्य है) के विचार (मन्त्र) के साथ जो भी कार्य करता है, वह अभीष्ट-पूरक होता है। जप, हवन, प्रतिष्ठा, संस्कार (उत्सव) प्रभृति सारी क्रियायें ॐ तत्सत् के जप से ही पूर्ण होती हैं। समस्त कार्यों की सिद्धि (सफलता) में ॐ का बड़ा हाथ रहता है। अतएव पुरुषार्थ कर्म के साथ ॐ रूप ऊर्जा की उपासना भी करनी चाहिए। इसी से तन्त्र ब्रह्मा-विष्णु-महेश-को प्रणव रूप ही मानते हैं—

अकारो विष्णुरुद्दिष्ट उकारस्तु महेश्वरः ।
मकारेणोच्यते ब्रह्मा, प्रणवेन त्रयो मताः ।।

अर्थात् "अकार ही विष्णु भगवान हैं। उकार महेश्वर या महाशिव हैं। मकार ब्रह्म का वाचक है। इस प्रकार त्रयाक्षर मय ओङ्कार साक्षात् परमात्मा का वाचक है। ॐ ही परब्रह्म है। नेत्र तन्त्र के इक्कसवें अधिकार में भी यही बात कही गई।

प्रणव और उमा की अभिन्नता--

रुद्रयामल तन्त्र में 'उमा' नाम्नी चिच्छक्ति को ॐ से अभिन्न कहा गया है। वस्तुतः उमा, ओङ्कार और कुण्डलिनी भी एक ही तत्व हैं—

'उमेति परमाशक्ति पूर्वभावमुपेयुषी । अध्युज्वलयाकारा प्रणवत्वमुपागता ।'

रहस्यवेत्तागण उमा को देवी-प्रणव की संज्ञा से बोधित करते हैं। उमा परमाशक्ति है। यह अष्ट-मण्डलों वाली प्रणवता ही है। अष्ट वलय का अभिप्राय अष्टविधा कुण्डलिनी शक्ति से है। अत्यन्त सूक्ष्म और अगोचर होने से ही उस उमा को पराशक्ति अथवा परमाशक्ति कहा गया है।

पञ्चधा प्रणव--

स्वछन्द तन्त्र के छठे पटल में कहा गया है कि मात्राभेद से अथवा कलाओं (शक्तियों) की दृष्टि से पञ्च प्रणव है—

अकारश्च उकारश्चं मकारश्च तृतीयकः ।
वर्णत्रयमिदं प्रोक्तं ब्रह्माद्या देवतास्त्रयः ॥
बिन्दुनादसमायोगादीश्वरश्च सदाशिवः ।
एते वै प्रणवाः पञ्च हंसः प्राणयुतः सदा ॥
ह्रस्वं दीर्घं प्लुतं सूक्ष्ममतिसूक्ष्मं परं शिवम् ।
प्रणवं पञ्चधा ज्ञात्वा भित्वा मोक्षो न संशयः ॥

"प्रणव की सुप्रसिद्ध अकार, उकार, मकार, बिन्दु और नाद इन कलाओं का नाम पञ्च प्रणव है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव इनके देवता हैं। इन कलाओं में क्रमशः ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत सूक्ष्म और अतिसूक्ष्म नाम से भी अभिहित किया जाता है।

प्रणव ही जीवनी शक्ति है--

नेत्र तन्त्र में प्रणव को ही जीवनी-शक्ति (वाइटैलिटी या प्राण ऊर्जा) बताया गया है—

प्रणवः प्राणिनां प्राणो जीवनं सम्प्रतिष्ठितम् ।
गृह्णाति प्रणवः सर्वं कलाभिः कलयेच्छिवम् ॥

अर्थात्—प्रणव ही सम्पूर्ण प्राणियों का प्राण है। इसी के द्वारा जीवन प्रतिष्ठित रहता है। वह जीवन तत्व (वाइटल फोर्स) है प्रणव से समस्त कलाओं (ईश्वरीय शक्तियों एवं विशेषताओं) का सम्यक् बोध होता है।

प्रणव की कलाएँ--

प्रणव की कौन-कौन सी कलाएँ (विशिष्ट शक्तियाँ) हैं, इसका विस्तृत विवरण स्वछन्द तन्त्र के चौथे पटल में इस प्रकार किया गया है—

अकारश्च उकारश्च मकारो विन्दुरेव च।
अर्द्ध चन्द्रो निरोधी च, नादो नादान्त एवं च ॥
कौण्डिली व्यापिनी शक्तिः, समनैकाशौ स्मृता।
उन्मना च ततोऽतीता, तदतीतं निरामयम् ॥
(स्वच्छन्द तन्त्र ४।२२५-२२६)

'अकार, उकार, मकार, बिन्दु अर्द्ध सन्द्र, निरोधी, नाद, नादान्त, कुण्डलिनी, व्यापिनी, शक्ति, समना और उन्मना ये ओ३म् की बारह प्रसिद्ध कलायें हैं। इन्हीं के द्वारा वह पृथ्वी से लेकर शिव पर्यन्त समस्त तत्वों और ब्रह्माण्डों को संचालित करता है।

नेत्र तन्त्र में इन कलाओं का विवेचन और भी विस्तार से हुआ है—

अकारं ब्रह्मदैवत्यं हृदयं यावदध्वनि।
कलाष्टकेन संयुक्तं कलयेत् सर्व जन्तुषु ॥
सिद्धिऋद्धिद्युतिर्लक्ष्मीर्मेधा कान्त्यिधृतिः स्वधा।
सिद्धा ब्रह्मकला एताः पश्चिमं व्याप्य संस्थिता ॥

पाँव के अँगूठे से लेकर हृदय पर्यन्त अकार का मार्ग (गति) है। ब्रह्म, दैवत्य, सद्योजात, रूप अकार अपनी १. सिद्धि, २. ऋद्धि, ३. द्युति, ४. लक्ष्मी, ५. मेधा, ६. कान्ति, ७. धृति और ८. स्वधा- इन आठ कलाओं से संयुक्त होकर सम्पूर्ण प्राणियों में छाया हुआ है। पृथ्वी से लेकर महत्तत्वों तक व्याप्त है।

रजा रक्षा रतिः पाल्या, काम्ला, तृष्णा, मतिः, क्रिया।
वृद्धिर्साया च नाडी च, भ्रामिणी मोहिनी तथा।
वामदेव-कला ह्येना, वैष्णवी च व्यवस्थिता।

कण्ठातै यावत् तदव्याप्तमापो व्याप्य स्थितास्त्विमाः ।

(नेत्र तन्त्र २२।२७।२८)

वैष्णव अंश में स्थित उकार की तेरह वामकलायें इस प्रकार हैं—१. रजा, २. रक्षा, ३. रति, ४. पाल्या, ५. काम्या, ६. तृष्णा ७. मति, ८. क्रिया, ६. वृद्धि, १०. माया, ११. नाड़ी, १२. भ्रामणी, और मोहिनी हृदय देश में कंठ तक इनकी अवस्थिति है ।

तमा मोहा क्षुधा निद्रा: मृत्युर्माया भया जरा ।
अघोरस्य कला ह्येता: रौद्रांशे तु व्यवस्थिता ।।
ताल्वन्त-यावत्तद् व्याप्तं, तैजसी व्याप्ति रुत्तमा ।

(नेत्र तन्त्र २२-२६-३०)

उकार की अघोर कलायें आठ हैं । उनके नाम है—१. तमा, २. मोहा, ३. क्षुधा, ४. निद्रा, ५. मृत्यु, ६. माया, ७. भया और ८. जरा । कण्ठ से लेकर तालु पर्यन्त इनकी अवस्थिति है ।

निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्या शान्तिस्तथैवच ।
पुरुषस्य कला ह्येता, ईश्वरे तु व्यवस्थिता । (ने तं-२२।३१)

निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या और शान्ति ये चार तन्पुरुष (ॐ रूप पुरुषोत्तम) की कलायें हैं । इनका स्थान भ्रू मध्य है । ये विन्दु रूप ईश्वर तत्व में प्रतिष्ठित है ।

आगे इस तन्त्र में बताया गया है कि तारा सुतारा, तरणी, तारयन्ती और सुतारणी ये पाँच कलायें ईशान प्रणव की है । सदा शिव रूप नाद तत्व से ये सम्बन्धित हैं । अर्द्ध चन्द्र की भी पाँच कलायें हैं—ज्योत्स्ना, ज्योत्स्नावती, सुषमा, विमला, और शिवा । सन्धनी रोधनी, रौद्री, ज्ञानबोधा और तमोपहा माम्नी निरोधिका कलायें हैं ।

नाद कलायें चार हैं—१. इन्धिका, २. दीपिका, ३. रोचिका और ४. मोचिका । उर्ध्वगा नाम्नी 'नादान्त' की एक ही कला है । प्रणव की पाँच शक्ति-कलायें भी मानी गई हैं, जिनके नाम हैं—१. सूक्ष्मा, २. सुसूक्ष्मा ३. अमृता, ४. अमृतासम्भवा और

(५) व्यापिनी। 'व्यापिनी' की कलायें चार ही वताई गई हैं—१. व्यापिनी, २. व्योमरूपा, ३.अनन्ता और ४. अनाथा। समना से संबन्धित छः कलायें है—सर्वज्ञा, सर्वगा, दुर्गा, सवना, स्पृहणा और धृति।

इन कलाओं का समास में सार-निरूपण सुबोध-शैली में तन्त्रसार में मातृका पद से इस प्रकार किया गया है—

चतुर्द्धा मातृका प्रोक्ता केवला विन्दुसंयता।
सविसर्गा सौम्या च रहस्य शृणु कथ्यते।।
विद्याकारी केवला च, सौम्या वृद्धिकारिणी।
सविसर्गा पुत्रदा चः सविन्दुवित्तिदायिनी।।

अर्थात्—प्रणव की चार मातृकायें हैं—(१) केवला, (२) विन्दु संयता, (३) सविसर्गा और (४) सौम्या। केवला,नाम्नी,मातृका (कला) विद्या को देने वाली है। 'सौम्या से प्रवृद्धि और उन्नति सम्पन्न होती है। 'सविसर्गा, पुत्र को देने वाली और बिन्दु संयुता' अर्थों को प्रदान करने वाली है। किम्बहुना ओ३म् की उपासनासे ऐहिक और पारलौकिक सभी मनोरथों की पूर्ति होती है।

इस प्रकार हमने देखा कि तन्त्रशास्त्र शक्ति का शास्त्र हैं। उन्होंने प्रणव की विवेचना शक्ति के रूप में ही प्रधानतः की है। वे उसे आद्या-शक्ति, आदिमाया, उमा, मूलप्रकृति पराशक्ति आदि नामो से सँबोधित करते हैं। उनकी दृष्टि में प्रणव की साधना 'शक्ति संयम की साधना है। शक्ति या कलाओं के संचय से ही सभी मनोरथों की पूर्ति होना सम्भव है। शक्ति-समय में ही भौतिक और आध्यात्मिक विकास निहित है।

'वायु सेवन के सम ज्यों-ज्यों
ओंकार का सेवन होगा।
तन्त्र मत से पराशक्ति का
त्यों-त्यों आप आकलन होगा।।

जिस प्रकार वायु सेवन और कुछ न होकर शुद्ध वायु का सेवन

है, उसी प्रकार ओंकारोपासना सर्वोच्च शक्ति के पास बैठना है, सर्वोच्च शक्ति को अपने में भरना है। ज्यों-ज्यों साधक उपासना रूपी व्यायाम द्वारा अपने अन्दर प्रणव शक्तियों का समावेश करता जाता है, त्यों-त्यों उसके सभी अभाव दूर होते जाते हैं, सभी क्लेश मिटते जाते हैं, सभी उलझनें और समस्यायें आप से आप सुलझती जाती हैं। यही ग्रन्थों का अभिप्राय है।

ओंकार की असाधारण सामर्थ्य

ॐ मन्त्रों का राजा है–

ओ३म् सभी मन्त्रों को अपनी प्राणशक्ति से भावित करता है उनको अभीष्ट क्रिया सिद्धि की दिशा में गतिशील होने की शक्ति देता है। इसी से उसे सभी मन्त्रों का सम्राट कहा गया है—

मांगल्यं पावनं धर्म्यं सर्वकामप्रसाधनम्।
ओंकारः परमं ब्रह्म, सर्वमन्त्रेषु नायकम्॥

ओ३म् सभी मंगलों को देने वाला है, पवित्रता का संचार करने वाला है, धर्ममय है, समस्त कामनाओं की पूर्ति का प्रसाधन है। अतः परब्रह्म रूप ओंकार को मन्त्रराज कहना सर्वथा उपयुक्त है।

सभी मनोरथों की सिद्धि और परमगति का ओ३म् स्वतन्त्र साधन भी है और दूसरे साधनों (मन्त्रों) की सफलता का हेतु भी है। सभी मन्त्रों में एकमेव मूल शक्ति वही है।

यह विश्व बड़ा विस्तृत है, बड़ा विचित्र है। यहाँ कोई भी एक व्यक्ति रूप, शक्ति, वाणी, चाल-ढाल, गुण, प्रकृति, व्यक्तित्व में दूसरे से सर्वाङ्गसम नहीं है। सभी अलग हैं, निरालापन लिये हैं। सभी की शारीरिक गठन ही नहीं मानसिक संरचना भी विषम है। यूँ तो सभी प्राणी विकास मार्ग के पथिक हैं, किन्तु सभी का स्तर समान नहीं। सभी की रुचि, विचार संस्कार एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। फिर सभी की आवश्यकतायें एक जैसी क्यों कर हो सकती हैं ?

साढ़े तीन अरब की संख्या वाले मनुष्यों को जो रोगादि विकार होते हैं, वे नामतः गिने जा सकते। चिकित्सा ग्रन्थों में उनका निदान, लक्षण, उपचार विशद रूप में उल्लखित हैं। फिर भी उन विशिष्ट रोगों की एक-एक प्रामाणित औषधि न अब तक बन सकी है और न कभी बनना ही सम्भव है। क्यों ? उत्तर स्पष्ट है, प्रत्येक मनुष्य का रासायनिक सङ्गठन समान नहीं। रासायनिक विभिन्नता के कारण ही एक-एक रोग की लक्षावधि संख्या में औषधियाँ विविध पंक्तियों में ईजाद की जा चुकी हैं। कोई औषधि किसी को अनुकूल बैठती है तो दूसरी किसी और को। यही तथ्य आध्यात्मिक जगत् में भी काम करता है।

रुचि, प्रकृति, विकास स्तर, आवश्यकता भेद से सभी मन्त्रों को अपनी विशिष्ट उपयुक्तता है। व्यक्तित्व परीक्षा के बाद ही सिद्धि महात्मा या तत्वदर्शी गुरु अपने प्रिय शिष्य को जो गुरु मन्त्र देते हैं, वह निश्चय ही, उनके लिए बड़ा लाभकारी है। उसके प्रति अश्रद्धा करना उसमें भी दोष निकालना साधनापराध है। ऐसी प्रवृत्ति निश्चित सफलता की विलम्बक या बाधक ही सिद्ध होती है। अतः शिष्य को किसी भी दशा में उसका परित्याग नहीं करना चाहिये। आशु-सिद्धि के लिए उसे उस मन्त्र को ॐ से सम्पुटित भर करना आवश्यक है, क्योंकि ओ३म् अमृतधारा है, पारद-गन्धक की कज्जली के समान योगवादी है। वह विटामिन की गोली है, हृद्य रसायन है। रोग की औषधि विशेष के साथ हृदय-पौष्टिक औषधि की योजना से औषधि की क्रियाशीलता, लाभकारिता बहुगुणित की जाती है। यह सभी जानते हैं। यही दृष्टि अन्य मन्त्र के साधकों को ओ३म् के प्रति रखनी चाहिए।

ॐ सभी मन्त्रों का बीज है—

'ओ३म्' को बीज या बीज-मन्त्र भी कहा जाता है। यथा—

अनादिनिधनं देवप्रमेयं सनातनम् ।
सरं परतरं बीजं निर्मलं निष्कलं शुभम् ।।

ओ३म् अनादि है । सर्व निधान है । वह अद्वितीय सनातन देव है। सबसे परे है । वह निर्मल, निष्कल शुभ और परतर (परमाणु से भी सूक्ष्म) बीज है ।

इस श्लोक में ओ३म् को 'बीज' की संज्ञा कई विशेषणों के साथ दी है । उसमें मुख्य निष्कल, निर्मल, परतर और शुभ के अन्तर्भावों को समझना आवश्यक है । ओ३म् बीज रूप है । जैसे बीज में सारा वृक्ष समाया रहता है,वैसे ही इस ओ३म् के गर्भ में सम्पूर्ण ब्रह्मांड समाया हुआ है । ओ३म् रूप बीज निष्कल है । वह सड़ा भुना, कटा-छटा नहीं है । वह अपने में पूर्ण है । बीज के सभी गुणों से युक्त है। शुद्ध, निर्मल (दोष रहित) और समग्र है । कोई कमी नहीं है । कोई विकार नहीं है । वह शुभ है, मङ्गलकारी है । परतर अर्थात् सबसे ज्यादा सूक्ष्म है ।

ओ३म् को बीज मन्त्र या मन्त्र राज कहना उचित है, क्योंकि यह सभी मन्त्र का बीज हैं । जब ध्वनियाँ, सभी भाषायें ओ३म् रूपी अनाहत ध्वनि के ही व्यक्त रूप हैं । तो उन भाषाओं के सभी मन्त्र भी तो उसी से निःसृत हैं, यह तथ्य आप से आप उजागर हो जाता है। फिर अन्य मन्त्र तब तक पंगु या कीलित ही माने गये हैं, जब तक उनके आदि में ओ३म् को विनियोग नहीं किया जाता है । ओ३म् ही मन्त्र विशेष को प्राणवान बनाता है ।

बीज पादप के मूल का भी मूल होता है । पत्तों को सींचने से हरा-भरा नहीं रखा जा सकता, मूल को सींचने से ही वह पुष्ट होता है, उन्नत होता है । ठीक उसी प्रकार सभी मन्त्रों के बीज रूप ओ३म् की साधना करने से जीवन-तरु खिलता—फलता है । सभी साधनों, सभी योगों सभी मन्त्रों का बीज ओ३म् ही है वही सबका फल है।

ॐ मंत्रों का सेतु है--

प्रणव को मन्त्रों का सेतु कहा गया है। क्यों? सेतु का अर्थ पुल होया है। पुल अगाध सरिता के पार करने का सुखद साधन है। सभी मन्त्र भव-सागर से पार उतरने के अनुपम माध्यम हैं। परन्तु ओ३म् के बिना वे अपूर्ण हैं। चाहे वैदिक मन्त्र हों, चाहे तान्त्रिक या पौराणिक। चाहें सार्थक हों अथवा अनुभूति-मूलक ध्वनियों का समाहार। जब तक वे मन्त्र ओ३म् से योजित नहीं होते, तब तक वे कीलित या निष्प्राण रहते हैं। ओ३म् की आत्म-चेतना ही इन मन्त्रों को चैतन्य करती है, प्राणवान् बनाती है। सो मन्त्रों की क्षमता का वाहक होने से, मन्त्रों में भी प्राण-प्रतिष्ठा करने से ओ३म् को मन्त्रों का सेतु कहा जाता है। क्योंकि वह मन्त्रों का त्राण करता है। सतत् मन्त्रों में जो शक्ति-सामथ्र्य है, तत्-सत् मन्त्रों की जो-जो महिमा है, वह उनकी अपनी न होकर मन्त्र राज ओ३म् की ही कृपा है।

ये बल्ब, ये विद्युत् रौड, ये हीटर, ये पंखे, ये कूलर, ये फ्रीज निश्चय ही बड़े उपयोगी हैं। बल्ब प्रकाश देते हैं, रौड प्रकाश के साथ-साथ नेत्रों को प्रसाद भी देते हैं। हीटर वस्तुओं को उबालने, पकाने और कमरे को गर्म करने के काम आते हैं। सर्दी की ऋतु में उनकी अपनी उपयोगिता हैं। पंखे तो ग्रीष्म ऋतु के वरदान हैं। प्रचण्ड धूप या लू की घमस से व्याकुल प्राणियों की शीतल बयार करके शान्ति प्रदान करने में वह अमृत है। कूलर कमरे को ठण्ड रखते हैं, एयर कण्डीशन यन्त्र बाहरी शीत-उष्ण से कमरे के वायुमण्डल को मुक्त रखते हैं, तो फ्रीज वस्तुओं, औषधियों को सड़ने गलने से रक्षा तो करता ही है, शीतल जल से तृप्ति प्रदान करता है। परन्तु कब? तभी न, जब विद्युत् धारा से इन यन्त्रों का संयोजन होता है। ठीक इसी प्रकार विविध देवी देवताओं के मन्त्र, वैदिक तान्त्रिक अथवा साम्प्रदायिक मन्त्र बड़े उपयोगी हैं। उनका अपना महत्व और लाभ है, किन्तु ओ३म् की चैतन्य-धारा उनकी क्रिया सिद्धि के लिये परमा-

आवश्यक है । इसी से ओ३म् को 'मंत्राणाम् सेतुः' कहा गया है ।

इसी भावना की एक कथा गोपथ ब्राह्मण में उपलब्ध है । एक बार असुरो ने इन्दपुरी को घेर लिया । इन्द्र अपने को उनका सामना करने मे असमर्थ पाने लगे और किसी बाह्य शक्ति की खोज करने लगे । उन्हें ॐ मिला । इन्द्र ने प्रार्थना की कि आप सर्वशक्तिमान हैं, आपकी सहायता में हम असुरों पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। आप ही इस संकट को टाल सकते हैं ।" 'ॐ' ने एक शर्त पर अपनी स्वीकृति दी कि 'ॐ' को पहिले पढ़े बिना ब्राह्मण वेद पाठ न करें। मेरे नाम को सर्वप्रथम पढ़ा जाया करे । यदि ऐसा न हो तो देवताओं द्वारा उसे स्वीकार न किया जाये ।" देवताओं ने यह शर्त मान ली 'ऋ' ने उन्हें आदेश दिया कि सैनिकों ! आगे बढ़ो और 'ॐ' का उच्चारण करते चलो । यह शब्द तुममें नई शक्ति और स्फूर्ति लाएगा। इससे तुम असुरों पर विजय प्राप्त करोगे । ऐसा ही हुआ । असुर पराजित हुये और देवता विजयी । जिस व्यक्ति की मन रूपी इन्द्रपुरी को असुरों ने घेर रखा है, वह 'ॐ' से सहायता का आह्वाहन करें। ओंकार की सहायता से वह असुरों पर निश्चय रूप से विजय प्राप्त करेंगे और इन्द्रपुरी पर उनका एक छत्र राज्य स्थापित रहेगा ।

समस्त मन्त्रों और भाषाओं का जनक–

प्रणव केवल मन्त्रों का सेतु ही नहीं है वरन् सभी मन्त्रों का अविर्भाव भी इसी से होता है । लिङ्ग पुराण में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है "प्रणव के उस विराट् रूप से ही सारे मन्त्र उत्पन्न हुए हैं। ओंकार को मस्तक और आकार को ललाट कहा गया है । इकार दांयी आंख और ईकार बांयी आँख है । उकार दाहिना कान और ऊकार बाँया कान है ऋकार दाहिना कपोल और ॠकार बांया कपोल है लृकार ॡकार दोनों नासिकायें हैं । एकार को होंठ और ऐकार को अधर कहा गया है । ओकार और औकार को दो अन्न पंक्तियाँ कहा गया है । अं और अः दोनों तालु हैं । क से ङ तक अक्षर उनके दाहिने

पाँच हाथ और च से ज तक पाँच अक्षर उनके बाँये पाँच हाथ हैं। ट से ण तक पाँच अक्षर और त से न तक पाँच अक्षर उनके पैर है। पकार को पेट और फकार को दाँया पार्श्व बकार को बाँया पार्श्व, भकार को स्कन्ध और मकार को हृदय माना गया है। यकार से सकार तक प्रणव के सात धातु हैं, हकार आत्मरूप और क्षकार क्रोध रूप है। इस प्रकार सभी वर्णों की उत्पत्ति प्रणव से ही कही गई है। यह मन्त्र शिरोमणि ही नहीं जनक भी है, सबका मूल है। जिस तरह मूल को उखाड़ देने से सारा पेड़ ही नष्ट हो जाता है, उसी तरह ॐ के बिना सभी मन्त्र प्रभावहीन, शक्तिहीन और खोखले रहते हैं। छान्दोग्योपनिषद् के ऋषि ने भी कहा है "जिस तरह से पत्रनाल से सब पत्र गुथे रहते हैं। उसी तरह प्रणव से सब शब्द गुथे रहते हैं, ओंकार ही सब कुछ है।" यह सभी भाषाओं का भी मूल है। पं० दीनानाथ शास्त्री ने लिखा है. "ॐ" इस अक्षर के कई लकड़ी के टुकड़े बने हुए होते हैं। उनको विशिष्ट क्रम से जोड़ने पर सब भाषाओं की लिपि बन सकती है। सब प्रकार के जीवों की आकृतियाँ बन सकती हैं। इसी ओ३म् से शेषनाग बन जाता है। यही गणेश की मूर्ति शिवलिङ्ग एवं जलहरी की मूर्ति है यह "ॐ" एक प्रतीक है। जिसने ओ३म् को छोड़ा, उससे सब कुछ छूट गया, यह समझना चाहिए। और जिसने 'ओ३म्' को अपना लिया, उसके पास सब कुछ आ गया, उसे और कुछ प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं रहती क्योंकि वह स्वयं ही अपार सम्पदाओं का स्वामी है।

प्रथम परम पावन ध्वनि—

सृष्टि के अत्यन्त समारम्भ काल में कार्यब्रह्म के कण्ठ से जो प्रथम परम पावन ध्वनि निःसृत हुई ओ३म् उसी की प्रतिध्वनि है। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण और कल्याणकारी है।

बाईबिल ने सृष्टि के आदि में शब्द की सत्ता ब्रह्म की सत्ता के साथ ही स्वीकार की है और उसी शब्द को ब्रह्म के रूप में स्वीकारा

है। यह शक्ति रूप शब्द ॐ ही है। 'ओंकार रूपः शिवं'—शिव ओंकार स्वरूप है और ओंकार शिव स्वरूप है। इस परब्रह्म स्वरूप ॐ की महिमा अथवा गुणों के गान को, विश्वरूप अश्वत्थ वृक्ष की लेखनी तथा महासागर की अनन्त जलराशि की स्याही बनाकर भी लिपिबद्ध नहीं किया जा सकता। ऐसा ही महिम्न स्तोत्र में कहा गया है। उस परम पवित्र 'एकाक्षर ब्रह्म की महिमा अपार है—वर्णनातीत है। इसकी अपार महिमा शीलता के कारण ही हमारे सारे मन्त्रों का श्री गणेश ॐ से ही होता है हिन्दुओं के समस्त धर्म ग्रन्थ सूत्र रूप में ओ३म् में ही स्थित हैं। ओ३म् हमारे धर्म तथा मर्म का परम प्राण है। ओ३म् को सबने योनि के रूप कहा है—'मम योनिर्महद्ब्रह्म' ओ३म् से विश्व जन्मा है, ओ३म् में ही वर्तमान है और ॐ में ही इसका विलय होता है।' सृष्टि के अणु-अणु में प्रसारित गति ओ३म् की ही ध्वनि है। ओ३म् सृष्टि जननी, प्रकृति और ध्वनि जननी है।

ओ३म् सर्वव्यापी और सर्वधर्मीय ध्वनि है। प्रत्येक धर्म की प्रार्थनाओं में ओ३म् के रूपान्तर विद्यमान हैं। ईसाई अपनी प्रार्थना के अन्त में 'अमेन (Amen) का, मुसलमान अपनी नमाज में 'आमीन' का प्रयोग करते हैं। ओ३म् पीड़ा मोचिनी ध्वनि है। दारुण पीड़ा के काल में ओ३म् की रूपान्तरित ध्वनि आह ऊं ह, हु हूं आदि पीड़ा को हल्का कर आनन्द की अनुभूति कराती है "हँसी की वेला 'का' हूं भी ओ३म् का एक रूप है, इस प्रकार ओ३म् की पवित्र ध्वनि सुख-दुःख दोनों में हमारी सहचरी है।

बच्चे की रुदन की ॐ, ॐ कीं ध्वनि भी ओ३म् का दूसरा जप है। अविकसित ध्वनि यन्त्र में शिशु ॐ ॐ के माध्यम से ओ३म् का ही संकीर्तन करता है। परिश्रम परिहार के लिए धोबी का हाँ, हाँ, हूँ, हूँ, उल्कापात की ओर शृगालों में हुआ सिह और यन्त्रों की भों-भों में ओ३म् का ही गुंजार है। अनन्त रूपी प्रकृति में प्रतिक्षण अनवरत ओं३म् का अनुनाद निनादित हो रहा है। अखिल सृष्टि अपनी अनन्त ध्वनि

के माध्यम से ॐ का निरन्तर जाप कर रहा। श्रद्धा पूर्वक ओ३म् का जाप एवं स्मरण ही भक्ति है। सर्व व्याप्त, सर्वाधार परब्रह्म की सन्निहिति ओ३म् में ही है।

सभी भाषाओं, शब्दों, ध्वनियों, वर्णों की उद्‌भावना ओ३म् से ही हुई है। वेदों का सूक्ष्मतम तत्व ॐ है। जो ॐ के विराट् अर्थ तत्व को हृदयगम कर लेता है, वह समस्त धर्म ग्रन्थों के सार से परिचित हो जाता है। ॐ सच्चिदानन्द का प्रतिरूप है। यह सारे धर्मों में सुव्याप्त है। ॐ, अमेन, आमीन तीनों ही अभिन्न हैं। प्रभु की आराधना का समारम्भ ॐ से ही होता है। ॐ के अभाव में किसी आराधना और साधना की भावना नहीं हो सकती। ॐ सगुण निर्गुण साकार-निराकार ब्रह्म-स्वरूप को अपने अन्दर आत्मसात किये हुए हैं।

तत्काल मुक्ति प्रदाता तथा सर्वोत्तम मन्त्र ॐ है। ॐ महिमा का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि वेद की प्रत्येक ऋचा के आदि अन्त में ॐ विद्यमान है, उपनिषदों का समारम्भ ॐ से ही हुआ है। ॐ परम पावन गायत्री का आधार है। देवताओं की आराधना भी ॐ से ही आरम्भ होती है। ॐ का महत्व अनन्त है। स्वयं परम भगवती पार्वती इसी ॐ का गुणगान करते नहीं थकती। ॐ अध्यात्म और दर्शन का परम सत्व है।

ॐ त्रिगुण से अतीत एक त्रिगुणात्मक विश्व में सुव्याप्त 'अ' 'उ' 'म' की सम्पूर्ण ध्वनियों की तरङ्गिना से तरङ्गायित अध्यात्म का तिरंगा ध्वज है। यह सन्यासियों का सूक्ष्म आवास स्थल है। ॐ अनन्त सक्तिदायक सर्व फल प्रदायक तथा अनन्त भावों का विधायक है। इसके निष्ठा के साथ उच्चारण मात्र से ईश्वर की महती अनुकम्पा तुरन्त प्राप्त होती है। ॐ परम माङ्गलिक का प्रतीक है, अतएव यह राजकीय भवनों आदि पर अङ्कित मिलता है। अपनी वर्णनातीत महिमा के कारण एकाक्षर ब्रह्म ॐ हमारी परम श्रद्धा का केन्द्र है।

सर्वश्रेष्ठ और स्वाभाविक नाम--

ॐ परमात्मा का सर्वश्रेष्ठ और स्वाभाविक नाम है । वृक्षों के पत्तों की सांइ-सांइ, नदी और समुद्र की लहरों की ध्वनि और मोटर गाड़ियों की आवाज में ओंकार की ही छाप मिलती है । अंगड़ाई व डकार लेते हुए स्वयमेव यह भीतर से प्रस्फुरित होता है । प्रकृति परमात्मा के इस स्वाभाविक नाद को निरन्तर जपने की प्रेरणा देती है । यह अपार शक्ति और सामर्थ्य वाला है । ईश्वरीय सम्पदायें इसमें ओत-प्रोत हैं। इसे ब्रह्म भी कहा जाता है ।

ओंकार को प्रणव कहते हैं क्योंकि इसकी वहुत स्तुति होती है। जैसे एक छोटे से बीज में एक वृहद वृक्ष समाविष्ट रहता है, उसी तरह ॐ में समस्त विश्व निहित है । इसीलिए इसे बीज कहते हैं । यह ब्रह्म का प्रतीक है । इसीलिए हिन्दू जगत् में इसे कल्याण के मन्त्रों का शिरोमणि माना जाता है । स्वास्तिक को सर्वतोन्मुखी ही कल्याण का प्रतीकात्मक चिह्न माना जाता है । पूजा कार्यों में वह अग्रणी रहता है । यह स्वस्तिक ॐ का ही विकृत रूप है सिक्खों के प्रमुख ग्रन्थ गुरु ग्रन्थ साहव में एक ओंकार सत्गुरु प्रसाद कहकर ॐ की ही महिमा का वर्णन किया गया है । और यह उनके धर्म का प्रमुख चिह्न बन गया है।

जीवन की सर्व प्रथम आवश्यकता--

हिन्दू धर्म में ओंकारोपासना के महत्व का मूल्यांकन इसी तथ्य से किया जा सकता है कि शिशु जब जन्म लेता है तो स्नान के वाद सर्व प्रथम सोने की शलाका से मधु व घृत को मिश्रित करके उसकी जिह्वा पर ओंकार लिखे जाने का विधान है । यह इस वात का संकेत है कि मानव शरीर धारण कर उसका उचित उपयोग व उत्थान इसी महाशक्ति के माध्यम से हो सकेगा । यह तभी सम्भव होगा जब उसकी वाणी पर सदैव ओंकार रहेगा । चलते-फिरते, उठते-बैठते हर समय ओंकार जीवन में ओत-प्रोत हो ।

मृत्यु समय भी शास्त्र का यही आदेश है कि ओंकार का स्मरण करते शरीर त्यागना चाहिए। इसके शुभ परिणामों पर गीता (८।१३) में प्रकाश डालते हुए स्पष्ट कहा कि जो व्यक्ति ओंकार का जप और ईश्वर का स्मरण करता हुआ शरीर छोड़ता है, वह उत्तम गति को प्राप्त होता है।

शरीर धारण करते समय और शरीर छोड़ते समय, जगत् में आते और जाते हुए ओंकार के स्मरण का विधान व आज्ञा है। अन्त समय ओंकार का स्मरण तभी हो पाएगा जब जीवन भर उसका निरन्तर अभ्यास किया जाएगा। अतः सद्गति चाहने वाले साधक को चाहिए कि वह ओंकार को ही अपना जीवन बना ले, उसे अपने जीवन में ओत-प्रोत कर ले कि जीवन की सर्वप्रथम आवश्यकता प्रतीत होने लगे, उसके बिना जीवन नीरस-सा लगने लगे ऐसा प्रेम और अनुराग हो जाय इससे। यह स्थिति आने पर ही अन्त समय स्मरण करते हुए सद्गति प्राप्त की जा सकती है।

विजय, समृद्धि, आनन्द और ज्ञान के प्रदाता, ओंकार–

ॐ हमारे जीवन की प्रेयस और श्रेयस को विभूषित करने वाला महा तत्व है। हमारे प्राचीन ऋषियों ने ॐ ध्वनि के जाप से विस्मय-कारी उपलब्धियाँ प्राप्त कीं। उन्होंने सुदीर्घ काल तक ॐ की अन्त-स्साधना कर उसका निरन्तर चिन्तन कर उसमें निहित ब्रह्मत्व का साक्षात्कार कर विश्व को ब्रह्म का परिचय 'तस्य वाचक प्रणवः'—के रूप में दिया। वस्तुतः ॐ संसार ब्रह्म का ही प्रतिरूप है। ॐ दिव्य-वाणी है। ॐ संसार की पीड़ाओं के महासागर को पार कराने वाली तरी है, यह हमारी आत्मा का प्रकाश स्तम्भ है। ॐ ब्रह्म ज्ञान तथा निर्विकार समाधि की सर्वोच्च चोटी पर चढ़ने की नसेनी है। हमारे ऋषियों ने ॐ की अहर्निश साधना के द्वारा आत्म साक्षात्कार किया। इसी के द्वारा से ब्रह्म में लीन हो मुक्तावस्था को प्राप्त हुए। ॐ परम सूक्ष्म चिन्तनातीत शक्ति है। प्रणव की ओंकार ध्वनि परा-

शक्ति की अपार महिमा से विभूषित है जिसके कारण यह जीव के मांया के भेदों काम, क्रोध, मद, मत्सर आदि का नाश कर उसे अहम् के संकुचित कारा से व्यामुक्त कर देती है। ॐ की महाध्वनि की को जड़ीभूत अज्ञान से मुक्त कर उसे सत्व गुणों में स्थित कर परब्रह्म के परा विराट स्वरूप में स्थित कर देती है। भवसागर की पीड़ा एवं सम आसक्ति की जल राशि में डूबते हुए जीवों के लिए ओंकार ध्वनि आलोक तरणी की भाँति है। असंख्य जीवात्माएं इस तरणी के आश्रय से भव सागर पार कर गयों हैं। इसका आश्रय ग्रहण कर हम भी परम अनन्त आनन्द लोक के अधिवासी हो सकते हैं। अविचल श्रद्धा को ॐ में केन्द्रित कर इसका ध्यान करने से साधक तुरीयावस्था के उच्चतम शिखर के 'सत्यं शिव सुन्दर' के परम सौन्दर्य में लीन हो जाता है— 'शिव से अद्वय हो जाता है। ॐ का ध्यान साधक को अमृत, आनन्द आलोक, अविनश्वरता, दिव्य-दृष्टि तथा पर शान्ति प्रदान कर उसे चिरन्तन अभिनव मुक्ति में लीन कर देता है। ॐ हमारा आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक है। वह जीवनके परम रहस्यों की ज्ञान करने वाली महाशक्ति है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि ॐ अखिल ब्रह्माण्ड कण-कण में क्षण-क्षण महा ध्वनि हैं, इसका प्रसार अनन्त है। आज का विज्ञान भी वैज्ञानिक पदावली में इसी तथ्य का समर्थन कर रहा है। रेडियो (ध्वनि) एक सैकिण्ड में पृथ्वी मण्डल का सात बार चक्कर लगाती है। इसी से हम सहज ही महाध्वनि ॐ की परम विस्मयकारी अनन्त शक्ति का अनुमान लगा सकते हैं। ॐ की प्राप्ति ध्वनि ने कितने ही अत्यन्त भयावह रोगों का निराकरण किया। इङ्गलैंड के (any) (गाई। तथा Birth homer) चिकित्सालय में ॐ की पावन ध्वनि ने कितने ही रोगियों को अत्यन्त भीषण रोगों से मुक्त किया। डबलिन के रोठण्डा चिकित्सालय में महिलाओं पर इसका अभूतपूर्व प्रभाव देखा गया है। मद्रास देहरादून व चिंगलपेट् के चिकित्सालयों में ओंकार

ध्वनि के प्रयोग किये। फलस्वरूप कुष्ठरोगियों को आशाजनक लाभ प्रतीत हुए। इस तरह महाध्वनि से सूखी नाड़ियों में भी जीवनी शक्ति संचालित की है। ॐ ही वह महामन्त्र है जिसने भारत के स्वातन्त्र्य संग्राम सेनानियों को अविजित सङ्कल्प शक्ति प्रदान की। ॐ की असंदिग्ध उपयोगिता के विषय में हमें किञ्चित् मात्र भी सन्देह नहीं करना चाहिये। यह हमारे युवा हृदयोंमें अपराजेय शक्ति महान विचार-धाराएँ तथा पावन भावनाओं का संचार करने वाली महाशक्ति ॐ की उपादेयता अश्रद्धेय नहीं, इसमें श्रद्धा कर इसमें निष्ठित होकर हम परम उदात्त जीवन का वरण कर सकते हैं।

ॐ सारी त्रुटियों के निवारण की महती शक्ति है। यज्ञों में त्रुटियों के हो जाने पर ॐ की महाध्वनि से उसका निराकरण किया जाता है। हमारे सारे पवित्र धार्मिक कार्य ॐ से ही प्रारम्भ होते हैं। विघ्नों के हरण तथा यज्ञों के साकल्य हेतु ॐ मन्त्र का जाप याज्ञिकों द्वारा किया जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारी धर्म साधना में 'अशिव तथा अमंगल' से रक्षा करने वाली शक्ति के रूप में ॐ ध्वनि को मान्यता प्राप्त है।

भगवान कृष्ण की जग-जग मोहक बाँसुरी ॐ की प्रतीक है। मुरली का सन्देह है कि हम उसकी तरह अहमन्यता से शून्य हो जावें। कृष्ण हमारी देह में वंशी की स्वर माधुरी का रस देंगे। अहङ्कार शून्य होने पर हमारी देह मुरली में ॐ की अत्यन्त मधुर ध्वनि गुञ्जित होने लगेगी। अहङ्कार शून्य आत्मा मुरली की भाँति ही पर-ब्रह्म का चिर सहचरत्व प्राप्त करती है। ॐ की इस अन्त: साधना के द्वारा ही हम अपनी देह दृष्टि में ब्रह्म की मुरली की संजीवनी संगीत संयुक्त स्वर माधुरी का श्रवण कर महानन्द में निमग्न हो जायेंगी। इसलिए ॐ हमारी आत्मा का एकमेव आश्रय है। हमें ॐ की महा मोहक ध्वनि का अभ्यास कर परम शांति को धारण करना चाहिए।

ॐ के आन्तरिक ध्यान से हमारी आत्मा की अज्ञान की रात्रि का ना... हो जाता है और ज्ञान तथा आनन्द का अनन्त प्रकाश युक्त प्रभात का... उदित होता है। ऐसा प्रभात काल हमारे जीवन में अवतरित हो... ही हमारा लक्ष्य होना चाहिए। निष्ठापूर्ण ॐ के जाप से वेदों के पा... का पुण्य प्राप्त होता है। ॐ के प्रति अडिग श्रद्धा हमें पापों तथा भ... बन्धन से मुक्त कर देती है। यह महामन्त्र हमारे जीवन को पराक्र... विजय, समृद्धि और आनन्द से परिपूर्ण कर हमारे अस्तित्व को सार्थ... कर देता है। हमारी यात्रा को सार्थक कर उसे नरम विराम बि... ब्रह्मत्व में लीन कर देता है।

शक्ति व सिद्धि का प्रतीक--

मन्त्र शिरोमणि 'ओ३म्' शक्ति और सिद्धिदाता है, जीवन में निरा... और उत्साह-हीन व्यक्तियों को नव जीवन और नई प्रेरणा देना इस... विशेषता है। संकट और विपत्ति में आत्म-विश्वास को जाग्रत करन... इसका स्वभाव है। अज्ञान और अन्धकार का तो यह शत्रु है क्योंकि... प्रकाश की करोड़ों ज्योतियाँ इससे जुड़ी रहती हैं। शक्ति का यह अव-तार है, इसके प्रत्येक उच्चारण से शक्ति का विकास होता है। अमरत... की अनुभूति का यह सोमरस है। इसके पान बिना ब्रह्मपद प्राप्त करन... असम्भव है। समस्त सिद्धियाँ इसकी द्वारपाल हैं, और हर क्षण इसकी... आज्ञा की प्रतीक्षा में रहती हैं। जीवन का कायाकल्प करना, गुण है... अतः हर क्षेत्र में प्रगति चाहने वाले साधक के लिये इसका अवलम्बन... आवश्यक है क्योंकि ॐ में बल, शक्ति जीवन और बुद्धि निहित है... और अनन्त दैवी शक्तियाँ इसके आवाहन पर उपस्थित होती हैं। इस... तरह से वह शक्ति और सिद्धि का आगार-सा बन जाता है।

ॐ में अनन्त शक्तियों का भण्डार भरा हुआ है। इसके उच्चारण... अथवा जप से विचार शुद्ध होते हैं, मन पवित्र होता है और सात्विक...

दैवी भावों का उदय होता है क्योंकि ओंकार स्वयं सिद्ध परब्रह्म का शक्तिदायक नाम है। विराट् अग्नि, विश्व आदि ईश्वर के नाम 'अ' में हिरण्यगर्भ, वायु, तेजस आदि 'उ' में ईश्वर, आदित्य, यज्ञादि परमात्मा के नाम 'म' अक्षर में समाविष्ट रहते हैं। जिस साधक के पास ओंकार की शक्ति रहती है वह अनन्त दैवी शक्तियों का आगार-सा ही बन जाता है। उसके बल, बुद्धि और जीवन के हर क्षेत्र में नया उत्साह नयी शक्ति अवतरित होती है। उसके अङ्ग-अङ्ग में तेजस्विता भरी रहती है। वहाँ अभाव, निर्बलता, हीनता, असफलता, निराशा जैसे शब्दों का कोई स्थान नहीं रहता, क्योंकि साधक अपने में किसी दैवी शक्ति का अनुभव करता है।

प्राकृतिक मन्त्र—

स्वामी रामतीर्थ ने ओंकारोपासना की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए कहा है—

"हिन्दु शास्त्रों में कहा गया है कि जैसे बीज से वृक्ष निकलता है, वैसे ही चारों वेद ॐ से निसृत हुए हैं। यह प्रणव मन्त्र अर्थात् ॐ केवल कण्ठ से ही उच्चारित नहीं होता अपितु उसके साथ और भी कई प्रक्रियाएँ चलती हैं। जब ओठ और कण्ठ उसका उच्चारण करते हैं, तब मन उसका जप करता है और उसी समय हृदय भाव तरंगों में विभोर होकर उसका गायन करता है। इस प्रकार उच्चारण, जाप और गायन की इस त्रिवेणी से ज्योतिर्मय सर्वात्मक प्रभु से तादात्म्य होता है। ॐ परमेश्वर का सबसे स्वाभाविक और सच्चा नाम है।

ॐ किसी भी भाषा का शब्द नहीं है। हिन्दूओं ने उसे अपनाया तो उसका यह अर्थ नहीं है कि यह शब्द संस्कृत भाषा का है। यह तो एक नैसर्गिक शब्द है, प्रकृति का मन्त्र है। कुछ लोग इसे शायद इसलिए अपनाना पसन्द नहीं करेंगे कि यह संस्कृत का है हिन्दुओं का है।

संस्कृत में ॐ शब्द के रूप नहीं चलते और व्याकरण की किसी भी प्रक्रिया के अन्दर नहीं आता। वास्तव में संस्कृत का शब्द है ही नहीं। वह तो एक विशुद्ध शब्द है जो प्रकृति का है, किसी भाषा का नहीं।

फ्रेंच भाषा में 'ओ, और 'आ' की सन्धि होकर 'ओ' बन जाता है। ऐसे ही संस्कृत में भी सन्धि होती हैं। यों ओं में जो अ हैं औ संसार के किसी भी देश में किसी भी जाति का बच्चा जब पैदा होता है इसी गान के साथ संसार में प्रवेश करता है।

बीमार आदमी राहत पाने के लिए कराहता है और कहता हैं उंह, ओह उनके मिलने से भी ओं बनता है। यों ओंकार से बीमार राहत पाता है।

संसार के किसी भी भाग में जाइये और किसी भी जाति या धर्म के बच्चे को देखिये जब वे खूब खुश होते है, आनन्द विभोर होकर उछलते कूदते तब उनकी प्रसन्नता 'ओ-ओ' ध्वनि में प्रकट होती है ॐ आत्मा की निरहङ्कार, निर्लिप्त और निर्बन्ध आनन्दावस्था का अचूक है आत्मा को इस पाँच-सातफुट के सीमित आयतन (शरीर) में आबद्ध करने वाली 'अहम्' और मम की संकुचित अवस्था से जब हम ऊपर उठते है, तब हमारी आत्मा का आनन्दोद्गार ओंकार के रूप में होता है।

संसार की सभी भाषाओं में ॐ ध्वनि का बडा महत्व है। अँग्रेजी में भगवान् के तीन सबसे प्रमुख विशेषण हैं—सर्वव्यापी अम्निप्रिजेंन्ट, सर्वज्ञ और सर्व शक्तिमान्। ये भगवान् के सबसे सुन्दर और भावपूर्ण नाम है और उन सभी में ॐ है।

सो हम देखते हैं कि संसार की सभ्य जातियों की प्रार्थना में हम इसे पाते हैं। जहाँ जाकर सब शब्द अवसित हो जाते है और केवल आनन्द ही रह जाता है जिसे हिन्दू शास्त्रों में कहा गया है—यतो वाचो निवर्तन्ते 'अप्राप्त मनसा सह' अर्थात्—जहाँ से वाणी और विचार

अकृतकार्य होकर लौट आते हैं—उस अवस्था में जब आत्मा पहुंचती है तब ओ३म उसका तदात्म्य विश्वात्मा से कराता है।

ईश्वर का नाम और उसकी स्तुति—

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने ओंकार जप की प्रेरणा देते हुए कहा है—

'जो ईश्वर का ओंकार नाम है, सो पिता पुत्र के सम्बन्ध के समान है और यह नाम ईश्वर को छोड़कर दूसरे अर्थ का वाची नहीं हो सकता। ईश्वर के जितने नाम हैं, उनमें से ओंकार सबसे उत्तम नाम है। इसलिए नाम का जप अर्थात् स्मरण और उसी का अर्थ विचार सदा करना चाहिए कि जिससे उपासक का मन एकाग्रता, प्रसन्नता और ज्ञान को यथावत् प्राप्त होकर स्थिर हो जिससे उसके हृदय में प्रकाश और परमेश्वर की प्रेम भक्ति सदा बढ़ती रहे।

आचार्य विनोवा भावे के मतानुसार 'न' स्तुति करने का अर्थ व्यक्त करने वाले धातु में 'प्र' उपसर्ग लगाकर बनाए गये प्रणव शब्द का शाब्दिक अर्थ है उत्तम स्तुति।

गुरु नानक ने ओंकारोपासना के प्रभाव को स्वयं अनुभव किया तभी इसी की साधना पर वल देते हुए कहा है—

ओंकार ब्रह्मउत्पत्ति, ओंकार किया जिन चित्त।
ओंकार सैल जुग भए, ओंकार वेद निरमए॥
ओंकार शब्द जपरे, ओंकार गुरुमुख तेरे।
ओम आखर सुनहु विचार, ओम आखर त्रिभुवन सारा।
प्रणवों आदि ए ओंकारा जलथल महिथल कियो पसारा॥

समस्त आकृतियों का मूल--

स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती ने समस्त नाम रूप व आकृतियों का मूल ओंकार को बताते हुए कहा है--

"यह प्रणव कोई बाहर से आई वस्तु नहीं है। समस्त आकृतियाँ ओंकार से ही बनी हैं। तुम अपने शरीर में देखो, दोनों भौंहों

और नासिका को मिलाकर 'अकार' बन जाता है, भूमध्य के ब्रह्मरन्ध्र तक 'उ' मात्रा, ब्रह्मरन्ध्र बिन्दु और अमात्र तो परिपूर्ण है। इसमें यदि स्पष्टतया न दीखे तो दोनों हाथ और वक्ष मिलाकर अकार कण्ठ उकार की मात्रा, सिर बिन्दु यह स्पष्ट है। इसी प्रकार दोनों पैर और कटि से ऊपर का भाग मिलकर भी ओंकार की आकृति बन जाती है।

यह जितने नाम रूपात्मक जगत् है, सब ओंकार है। समस्त नाम ओंकार से बनते हैं अकार ही समस्त वाणी हैं। समस्त रूप भी ओंकार से बनते हैं। क्योंकि जितने रूप बनते हैं, उनमें बिन्दु रेखा गोलाई यही तीन बातें होती हैं, और प्रणव में बिन्दु है, रेखा है तथा उकार एवं चन्दबिन्दु में गोलाई है। इसलिए सब रूप भी ओंकार है। यह अपर ब्रह्म अर्थात् सम्पूर्ण जगत् प्रपञ्च प्रणव है।

ओ३म् के द्वारा सृष्टि की रचना–

गोपथ ब्राह्मण में एक मनोहर कथा आती है। जब ब्रह्माजी की उत्पत्ति कमल से हुई. तो वे सृष्टि रचना करने की सोचने लगे। उनके सामने दुरूह प्रश्न था—

स खलु ब्रह्मा सृष्टिः चितामोपदेकेन अहम् एकेन अक्षरेण सर्वाञ्च कामान् सर्वाञ्च लोकान्, सर्वाञ्च देवान्, सर्वाञ्च यज्ञान्, सर्वाञ्च शब्दान्, सर्वाश्च व्युष्टीः, सर्वाणि च भूतानि स्थावर-जङ्गमानि अनुभवेयम् इति।

वे चिन्तित थे कि मैं किस प्रकार एक अक्षर से सभी प्रकार के मनोरथों की, सब लोकों की, सब, देवताओं की, सभी प्रकार के यज्ञों की सभी प्रकार की भाषाओं की तथा सभी स्थावर-जंगम प्राणियों की

रचना करूँ उनकी कुछ समझ में नहीं आया। तब उन्होंने ब्रह्मचर्य का आह्वान किया। ध्यानावस्था में उन्होंने उस अक्षर ब्रह्म का साक्षात्कार किया, जो सर्वव्यापी, सर्वविभु, चतुर्मात्र और अयातयाम है। फिर क्या था? उनकी पहेली सुलझ गई। उनकी कृपा से उन्हें अन्तरतम में बोध हुआ कि सृष्टि-सर्जना का उपक्रम वे किस प्रकार करें।

उन्होंने ओंकार क प्रथम मात्रा में, ऋग्वेद और पृथ्वी लोक, द्वितीय मात्रा में यजुर्वेद और अन्तरिक्ष लोक तृतीय मात्रा में सामवेद और द्युलोक, चतुर्थ मात्रा में अथर्ववेद तथा मकार से इतिहास पुराण का अनुभव (सृजन) किया। किम्बहुना सम्पूर्ण अदृश्य जगत् की रचना ओंकार से ही हुई है। ये सौर मण्डल, ये आकाश गंगायें, ये नीहारिकायें ओंकार के क्रोड़ में ही अवस्थित हैं। ओंकार से बाहर कुछ नहीं है ओंकार से ही 'एकाशेन स्थितो' नावत्संसार है।

इस प्रसंग से यह भी स्पष्ट हो गया कि ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए ओंकार की साधना करने से अतुल बल प्राप्त होता है। सभी प्रकार की समस्याओं का समाधान ॐ की उपासना से करना सहज सम्भव है।

अनाहत ध्वनि और ओ३म्—

योग मार्ग में नादानुसन्धान का बड़ा महत्व है। मध्यकालीन अधिकांश महात्माओं ने हट योग और राजयोग के स्थान पर इसी का विविध रूपों में प्रतिपादन किया है। कारण यह है कि इसके द्वारा चित्त का एकाग्र होकर मन का निरोध होना अपेक्षाकृत सहज होता है। इसे लय योग भी कहते हैं। इसमें साधक मूल ध्वनि, जिसे अनाहत ध्वनि भी कहते हैं, सुनने का अभ्यास करता है। श्री शंकराचार्य ने 'योग तारावली' में नादानुसन्धान का बड़ा महत्व बतलाया है—

सदाशिवोक्तानि सपाद-लक्षावधानानि वसन्त लोके।
नादानुसन्धान समाधिमेके मन्यामहे मान्यतमं लयानाम् ॥

भगवान् सदाशिव ने मन के लय होने के सवालक्ष अवधान (ध्यान की विधियाँ) बतलायी हैं। उन सब में नादानुसन्धान सुलभ और श्रेष्ठ है।

सर्वचिन्तां परित्यज्य सावधानेन चेतसा।
नाद एवानुसन्धेयो योग साम्राज्य मिच्छता ॥

'यदि योग-साम्राज्य प्राप्त करने की इच्छा रखते हो, तो सभी प्रकार की चिन्ताओं को त्याग कर, मानसिक तनावों से मुक्त होकर, मन की सभी उधेड़-बुन को बन्द करके अनहद नाद सुनो।'

प्रश्न उठता है कि यह अनहद नाद क्या है ? उत्तर रूप में निवेदन है कि इस भूमि के तत्वान्वेषी ऋषियों का यह प्राचीन अनुभव है कि जब ब्रह्म अभिव्यक्त होता है, तो सर्वप्रथम वह नाद रूप ग्रहण करता है। उसी को नाद ब्रह्म भी कहते हैं। इसी नाद-शक्ति से बाद में सृष्टि उत्पन्न होती है। चूँकि यह मूल ध्वनि है, निर्विकार ब्रह्म का मूल स्फोट हैं, मन-बुद्धि से परे अत्यन्त सूक्ष्म प्रकम्प है, किसी वस्तु के टकराव से उत्पन्न नहीं हुई है, इसी को अन आहत (किसी से आहत न होने वाली) ध्वनि कहते हैं। आचार्य प्रवर तपोनिष्ठ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य इस अनाहत ध्वनि को ॐ रूप बताते हैं। वे कहते हैं–

'ओंकार को ब्रह्म कहा है। यह परमात्मा का स्वयं सिद्ध नाम है। योग विद्या के आचार्य समाधि अवस्था में पहुँच कर जब ब्रह्म का साक्षात्कार करते हैं, तो उन्हें प्रकृति के अन्तराल में एक विशेष प्रकार की ध्वनि होती हुई परिलक्षित होती है। जैसे घड़ियाल चोट मार देने से वह बहुत देर तक झनझनाती रहती है इसी प्रकार बार-बार एक ही कम्पन उन्हें सुनाई देते हैं। यह नाद ॐ ध्वनि से मिलता-जुलता

है। उसे ही ऋषियों ने ईश्वर बताया है और उसे शब्द ब्रह्म कहा गया है।'

इस प्रकार अनाहत साधना, नादानुसन्धान या लय-योग वस्तुतः ॐ की ही उच्चस्तरीय साधना पद्धति है। इसे ॐ के साथ संजोया जा सकता है। कारण ॐ शब्द के विधिवत् उच्चारण में ईथर में जो थरथराहट होती हैं, आकाश में जो कम्पन होते हैं, उनका सूक्ष्मतम रूप ही तो अनाहत ध्वनि है। यदि साधक नादानुसन्धान के अभ्यास से पूर्व आसनगत होकर सर्वप्रथम पन्द्रह मिनट तक तार स्वर से भावना के साथ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ धुन का कीर्तन करे। तत्पश्चात् अनाहत ध्वनि के श्रवण का एकाग्रता पूर्वक अवधान करे, तो उसे शीघ्र सफलता प्राप्त होती।

ॐ ध्वनि का तार स्वर से कीर्तन करने पर मन की जड़ता नष्ट होती है। विषाद, अवसाद, तनाव आदि दूर होते हैं। फिर कीर्तन मन को स्निग्ध बनाता है। भक्ति रस से अभिसिञ्चित करके कल्मष कषाय आदि दोषों को दूर करता है। ॐ के कीर्तन से मन चैतन्य हो उठता है। अलसता दूर होती है। वह साध्य के प्रति तेजी से उन्मुख होता है। ताल और लय युक्त सुमधुर कीर्तन करने से अन्तर्मन की गुप्त शक्तियों का जागरण होता है। रस-ग्रन्थियाँ अपना मुख खोल देती हैं, और अन्तरतम को दिव्य रस से सराबोर कर देती हैं। ॐ का कीर्तन चञ्चलता को दूर करने वाला और तन्मयता को बढ़ाने वाला है। इससे लय-साधना नीरस-उनींद भरी न होकर सरस सम्वेदनामयी बनती है। फिर नादानुसन्धान में भी ॐ ध्वनि को ही तो सुना होता है।

ओ३म् और स्वास्तिक में अनुकूलता-

सृष्टि विज्ञान के अनुसार ध्वनि का स्थूल भाव ही रूप है। ओंकार के कम्पन शक्ति प्रवाह के रूप में दक्षिण से बाम और को

प्रवाहमान हैं। ये कम्पन सीधे चलकर दाहिनी ओर मुड़ जाते हैं। मल शब्द अपने केन्द्र की धुरी पर भी घूमता है। इस प्रकार पृथ्वी के समान उसकी भी द्विविधि गति है। समस्त सौर मण्डल, आकाश गंगायें द्विविधि गति वाले हैं। प्रथम गति उनकी अपनी कल्पित धुरी पर है और दूसरी गति अपने से ज्येष्ठ पिण्ड की परिक्रमा रूप। इस भ्रमण कम्पन, गति और मोड़ के आधार पर स्व स्तिक बनता है। यह स्वास्तिक ॐ का ही रूप है। ऐसा आर्ष-ग्रन्थ कहते हैं।

स्वस्ति का अर्थ धन रूप ब्रह्म जो नित्य गतिशील है सूक्ष्माति सूक्ष्म दिव्य लहरियाँ डिवाइन वेव्ज चारों दिशाओं में दिव्य ऊर्जा का प्रसारण करती हुई वायु दूषण प्रभृति प्राकृतिक विषमताओं का शोधन संस्कार करती हैं। सृष्टि में सन्तुलन स्थापित करने तल्लीन ये प्राण प्रवाह व्यष्टि और समष्टि दोनों के ही लिये बड़ा कल्याणकारी है। अतः स्वास्तिक का दूसरा अर्थ स्वस्ति (कल्याण) का करने वाला भी है। क्षेम का वह न करना, कुशल क्षेम की व्यवस्था करना, गति, शक्ति, धृति, और अभय देना ही इन दिव्य धनात्मक उर्मियों की सहज प्रकृति है। इसी से स्वास्तिक को सर्वव्यापी धनात्मक तत्व (ब्रह्म) भी कहते हैं।

ॐ कल्याण स्वरूप है। स्वास्तिक भी सौभाग्य का, मंगल का प्रतीक है। हिन्दू गृहों में, मन्दिरों में आज्य सिन्दूर निर्मित स्वास्तिक चित्र ॐ के साक्षात्-विग्रह हैं। उनका भावपूर्ण दर्शन, प्रणमन् ॐ की ही साकारोपासना है। ॐ के उपांशु जप के साथ त्रिपुटी स्थान पर ज्योति रूप स्वास्तिक के ध्यान करने से दुर्भाग्य का नाश होता है, ऐसा अनुभवियों का कहना है। ऊर्जा प्रवाह की स्वास्तिक दिशा के अनुकूल ही मन्दिरों में परिक्रमा की जाती है। इसका अर्थ उस मूल धारा से अपने को पूर्णतः समायोजित करना ही है। अपने को ॐमय बनाना है आजकल यहाँ देवनागरी लिपि चलती है, परन्तु प्राचीनकाल में खरोष्ट्री

ब्राह्मी लिपि का प्रचलन था और उसका खुला प्रयोग होता था। कहा जाता है कि गिरनार पहाड़ से प्राप्त शिलालेखों में ओंकार का रूप आज के रूप से भिन्न है। वह ब्राह्मी लिपि का स्वातिक था। प० माधवाचार्य शास्त्री ने अपनी पुस्तक 'क्यों' में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि प्राचीनकाल में स्वास्तिक के चारों कोनों पर ओंकार की आकृति रहती थी और आज उसका विकृत रूप दिखाई देता है। वह तो ईसाई जाति के 'क्रास' और मुसलमानों के पवित्र 'चिह्न ,चाँद तारा' को भी स्वास्तिक का बिगड़ा रूप मानते हैं। कुछ भी ओंकार का रूप तो यह माना ही जाता है।

मृत्यु से निर्भयता प्राप्ति–

देवी ने मृत्यु से डरकर वेदों में प्रवेश किया और वेदो ने मन्त्रों द्वारा अपने कों आच्छादित कर लिया। मृत्यु ने उन्हें देख लिया। देवों को भी जब यह बात ज्ञात हो गई तो उन्होंने ऋक्, यजु साम के कर्मों को त्यागकर 'ॐ' में प्रवेश किया। तब मृत्यु उनका कुछ न बिगाड़ सकी। इसका अभिप्राय यह है कि जब वह वैदिक कर्मकाण्ड के स्थान पर शुद्ध परब्रह्म की उपासना करने लगे तो वह अभय हो गये। इसी लिए छान्दोग्योपनिषद् (१।४।४।५) में स्पष्ट कहा है। 'ॐ' यद्यपि स्वर है पर ब्रह्म का प्रतीक है और इसलिए उसमें प्रवेश कर लेने से देवगण अमर और अभय हो गये हैं। फिर अगले (५) श्लोकों में इसे एक सिद्धान्तरूप में प्रतिपादित करते हुए साहस पूर्वक कहा 'जो कोई व्यक्ति इस ओंकार को देवगण की तरह अमृत और अभय गुण वाला जानकर उपासना करता है और इस परमात्मा स्वरूप स्वर ओंकार में प्रवेश कर जाता है वह भी मृत्यु के भय से रहित हो जाता है'। इस स्थिति तक-पहुँचने का अभिप्राय है आत्मिक उत्थान की उच्च भूमिका में अवस्थित होना। स्पष्ट है कि ओंकार उपासना से आत्मिक शक्तियों का विकास होता है।

स्वास्थ्य से सम्बन्ध-

प्रणव और बीज मन्त्रों का शरीर के विभिन्न अङ्गों पर कैसा प्रभाव पड़ता हैं, इसका प्रयोग करके आस्ट्रिया के वैज्ञानिक श्री लेकर लेजोरियों ने लिखा है कि 'प्रणव के उच्चारण से हृदय, मस्तिष्क, पैर, और सभी सूक्ष्म इन्द्रियों पर प्रभाव पड़ता है।'

संतान प्राप्ति-

छान्दोग्योपनिषद् (१।५।१।२) में सूर्य को प्रणव कहकर उनकी ध्यान साधना से पुत्र प्राप्ति का लाभ बताया गया है, कोषीतकि ऋषि ने अपने पुत्र को एक समय बताया, मैंने इसी आदित्य का ध्यान किया इससे तू मेरा एक पुत्र हुआ। तू भी जो सूर्य रश्मियों का इस प्रकार ध्यान करेगा तो तेरे अनेक पुत्र होंगे।' जो सूर्य का ध्यान करते हुए प्रणव की साधना करता है, उसे पुत्ररत्न की प्राप्ति होती है क्योंकि इसी श्लोक में कहा है कि सूर्य ही प्रणव है, वह गमन करता हुआ ओंकार का ही उच्चारण करता है।

इस प्रकार से शास्त्रकारों ने 'ॐ' की उपासना से भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार के लाभों का वर्णन किया है।

सूर्य से सम्बन्ध-

मैत्रायण्युपनिषद् में ओंकार उपासना को सूर्य से सम्बन्धित माना गया है। छान्दोग्योपनिषद् (१।३।१।२) में आदित्य रूप देवता से सम्बन्धित ओंकार उपासना का निर्देश है और लिखा है कि, 'यह जो प्रसिद्ध आदित्य (सूर्य) तपता है यह ओंकार की उपासना करता है। उदय होकर समस्त मनुष्यों के लिए उच्च स्वर से उद्घोष गान करता है। सूर्य के बिना अन्न पककर तैयार नही हो सकता और उनके बिना लोग प्राण धारण नहीं कर सकते। इस प्रकार उसका यह कार्य उद्गीथ स्वयं ही हैं। प्राण और सूर्य दोनों रूपों में प्राण की ओंकार के रूप में उपासना करनी चाहिए।

मैत्रायण्युपनिषद् (४।५) में ओंकार में आदित्य उपासना का

 Laxman Pali Bhatta Changu-1, Bhaktapur

वर्णन है। 'यह जो सूर्य है, वह इस 'ॐ' अक्षर का ही स्वरूप है। इसलिए 'ॐ' अक्षर से ही उसकी सदैव प्रार्थना करनी चाहिए। इसी से एक मात्र उसके रस को समझा जा सकता है। इस प्रकार श्रुति कहती है। वही पवित्र अक्षर है। इस अक्षर को जानकर मनुष्य जिसकी इच्छा करे वह उसे प्राप्त हो जाता है। इसी उपनिषद् के पंचम प्रपाठक के तीसरे श्लोक में कहा है, 'जो ब्रह्म है वही ज्योति है, जो ज्योति है वही आदित्य है, वही ॐ है, वही आत्मा है। इसी में सब कुछ अवस्थित है। ऐसा श्रुति में कहा गया है अथवा आदित्य ही ॐ है, ऐसा ध्यान करते हुए पुरुष को चाहिए कि वह आत्मा का उसके साथ संगठन करे।'

शास्त्रों का प्रणव ज्ञान-

ओंकारोपासना करने वाले के सभी कर्म अत्यन्त प्रबल होते हैं (छान्दोग्य १।१।१०)। 'ओंकारोपासक मृत्यु से मुक्त होकर ईश्वर दर्शनों के लक्ष्य को प्राप्त करता है। (छान्दोग्य १।४।५ प्रश्न ५।७)। जो साधक इस उपासना में लीन हो जाता है, उसकी लौकिक व पारलौकिक सभी प्रकार की इच्छाएँ पूरी होती हैं (छान्दोग्य १।२।१४, १।१।७, १।३।१२, कठ० १।२।१६)। 'ओंकार को रसों का रस कहा गया है। इसीलिए इसकी आराधना से परमानन्द की उपलब्धि होती है (छान्दोग्य१।१।१।३) ओंकारोपासक के अंग-अंग में शक्ति के भण्डार रहते हैं। इसलिए उसका कोई भी शत्रु उसको हानि पहुँचाने का साहस नहीं कर सकता। यदि कोई भूले भटके से ऐसा प्रयत्न करता भी है तो वह स्वयं नष्ट हो जाता है जैसे एक मिट्टी का ढेला पत्थर पर फैंकने से चूर-२ हो जाता है (छान्दोग्य १।२।८) ओंकारोपासना से साधक ब्रह्मलोक प्राप्त कर लेता है (क० १।२।१७)। माण्डूक (७) में ओंकार को अविनाशी ब्रह्म की संज्ञा दी है। तैत्तिरीय (१।८) में भी ओंकार को ब्रह्म कहा है। प्रश्न (५।५) में इसे ब्रह्मलोक प्राप्ति का मूल साधन बताया गया है।

तेजोबिन्दूपनिषद् में ओंकार को तेजोमय विन्दु के रूप में चित्रित किया गया है। इसके ध्यान को परम कल्याणकारी तथा शिव की शक्ति से वेष्टित बताया है ध्यानविन्दुपनिषद् में इसे अनाह नाद और ध्यान में नादित होने वाले 'आदि शब्द' की संज्ञा दी गई है। श्री नृसिंहोत्तर तापनीयोपनिषद् में ओंकार के वाच्यार्थ को परब्रह्म की मान्यता प्रदान की गई है। श्वेताश्वरोमनिषद् (१।१४) में ओंकार को उत्तर अरणि के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है।

गीता (१।१३) में कहा गया है कि इस एकाक्षर ब्रह्म ओंकार का जाप करते और मेरा भजन करते हुए जो व्यक्ति शरीर छोड़ता है वह निश्चय ही उत्तम गति को प्राप्त होता है।

प्रपंचसार (चतुर्थ पटल) में प्रणव को कुण्डलिनी शक्ति कहा गया है। द्वितीय पटल में मूलाधार स्थित कुण्डलिनी को ही प्रणव रूप कहा गया है।

छान्दोग्य (१।१।१३) में उद्‌गीथ की संज्ञा देते हुए कहा गया है–

'ॐ' अक्षर उद्‌गीथ है। अतः उसकी उपासना करनी चाहिए। सब भूतों का रससार पृथ्वी का रस जल है। जल का सार वाणी है वाणी का रससार पृथ्वी का रस जल है। जल का सार वाणी है।वाणी का सार ऋचा वेद है। ऋचा का सार सामवेद द्वारा भगवान् का यशोगान है। सामवेद का सार उद्‌गीथ है। यह जो उद्‌गीथ है, वह सब रसों में रसतम, सारतम सर्वोत्कृष्ट है।

कठोपनिषद् में यमराज नचिकेता को ओंकारोपासना की प्रेरणा देते हुए कहते हैं—

'सारे वेद जिस भावना का वर्णन करते हैं, समस्त तपों को जिसकी प्राप्ति के लिए साधक कहते हैं, जिसकी इच्छा से मुमुक्ष जन ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, उस पद को मैं संक्षेप में कहता हूं। 'ओ३म' यही पद है।

यही 'ओ३म' सबका श्रेष्ठ अवलम्बन है। यही सर्वोत्कृष्ट आलम्बन है। इसी शक्ति पूर्ण शब्द का सहारा लेकर ब्रह्मलोक महिमान्वित होता है।

मनु (२७।५) में ऋक्, यजु, साम–तीनों वेदों से ओंकार के ३ अक्षरों अ, उ, म को दुहा है। वृहन्नारदीय में ब्रह्म को 'अ' का, विष्णु को, 'उ' का और शिव को 'म' का प्रतीक स्वीकार किया है।

अकारं ब्रह्मणो रूपमुकारं विष्णुरूपवत्।
मकारं रुद्ररूपं स्यादर्धमात्रे परात्मकम्॥

माण्डूक्योपनिषद् के १२ वें मन्त्र की २७, २८ कारिका में ओंकार की महिमा का वर्णन श्री गौड़पादाचार्य ने इस प्रकार किया है—

सर्वस्य प्रणवो ह्यादिर्मध्यमन्तस्थैव च एवं हि प्रणवं ज्ञात्वा व्यश्नुते तदनन्तरम्॥२७

अदि मध्यान्ता उत्पत्तिस्थितिप्रलयाः सर्वस्यैव मायाऽस्ति-रज्जुसर्पमृगतृष्णिकास्वप्नादिवद् उत्पद्यमानस्य विपदादिप्रपंच-स्य यथाव्यादयः। एवं हि प्रणवमात्मानं मायाव्यादिस्थानीय ज्ञात्वा तत्क्षणादेव तदात्मभावं व्यश्नुत इत्यर्थः॥२८

संहिताग्रन्थों में सूत संहिता का उच्च स्थान है। उसमें जीवन की विविध समस्याओं का प्रौढ़ शैली में उपयुक्त समाधान मिलता है। ओंकार की सफल साधना का भी उसमें सरस प्रतिपादन मिलता है। सूत संहिता के अनुसार ॐ संसार-सागर से पार उतरने वाली सुदृढ़ नौका के समान है—

ओंकारः सर्वमन्त्राणामुत्तमः परिकीर्तितः।
ओंकारेण प्लवेनैव संसाराब्धिं तरिष्यति॥

अर्थात्—ओंकार सारे मन्त्रों में सर्वश्रेष्ठ कहा जाता है। वह सबसे उत्कृष्ट है। संसार रूपी सागर को पार करने के लिए ॐ ही एकमात्र नौका है। बिना ॐ का सहारा लिए कोई भी व्यक्ति

विविध प्रकार के अभावों, उलझनों और समस्याओं से संकुल इस दुस्तर संसार को पार नहीं कर सकता है।

समस्त जग का आदि मध्य व अन्त प्रणव है। उत्पत्ति, स्थिति, व प्रलय भी प्रणव ही है। जिस तरह माया का बना हाथी, रज्जु में सर्प की अनुभूति, मृगतृष्णा व स्वप्नादि की तरह प्रादुर्भूत होने वाले आकाश आदि रूप भी प्रपंच से मायावी लगते हैं, उसी तरह मायावी आदि स्थानीय उस प्रणव रूप आत्मा को समझ कर उत्तम साधक उसी क्षण एकरूपता की उपलब्धि कर लेता है, यह आशय है।

प्रणव मीश्वरं वि ात् सर्वस्य हृदि संस्थितम् सर्व व्यापि ओंकारं मत्वा धीरो न शोचति ॥२८

सवप्राणिजातस्य स्मृतिप्रत्ययास्पदे हृदये स्थितमीश्वरं प्रणवं विद्यात् सर्वं व्यापिनं व्योमवदोंकारमात्मामसंसारिण धीरो बुद्धिमान् मत्वा न शोचति शोकनिमित्तानुपत्तें 'तरति शोकमात्मवित' (छा० उ ७।१।३) इत्यादिश्रुतिभ्यः ॥२८

प्रणव सारे जगत् के प्राणियों के स्मृति प्रत्यय के आश्रयभूत हृदय में निवास करने वाला ईश्वर जानना चाहिये। आकाश की तरह प्रणव भी सर्वव्यापी है। अतः जो विवेकी साधक उसे असंसारी आत्मा समझता है, वह सांसारिक शोक के मूल कारण को ही काट देता है, उसे शोक स्पर्श भी नहीं कर सकता। श्रुति भी इस तथ्य को पुष्ट करती है कि आत्मवेत्ता पुरुष को शोक नहीं होता, वह उसे पार कर जाता है।

अमात्रोऽनन्तमात्रश्च द्वोतस्योपशमः शिवः।
ओंकारो विदितो येन स मुनिर्नेतरोजनः॥

यह ओंकार मात्रा रहित है, अमात्र है जिसे तुरीय पद की संज्ञा दी जाती है। यदि यह पूछा जाय कि ओंकार में कितनी मा ायें हैं तो यथेष्ट उत्तर यह है कि उसमें अनन्त मात्रायें हैं। मुनि वही है जिसने सम्यक् प्रकार से ओंकार को समझ लिया है।

ओंकार की देवादि वेदसार भी संज्ञाएँ हैं। शास्त्रों में ओंकार के उच्चारण के साथ ही वेदारम्भ, पाठारम्भ व मन्त्रारम्भ करने का विधान उपलब्ध होता है।

ओंकार पूर्वमुच्चार्यस्ततो वेदमन्त्र्यते।

वेद पाठ की समाप्ति पर भी ओंकार का उच्चारण आवश्यक माना गया है। यदि आदि अन्त में ओंकार के उच्चारण के विधान की उपेक्षा की जाए तो वेद पाठ के नष्ट होने की चेतावनी शास्त्र ने दी है और यह भी कहा है कि इस मन्त्र पाठ में मन्त्रता नहीं आ पाती अतः वेद पाठ में मन्त्रता लाने के लिए आवश्यक है कि आदि अन्त में ओंकार का उच्चारण किया जाय।

ऐतिहासिक दृष्टि से इस उपासना का महत्व है क्योंकि इसे सदासे प्राचीन और सर्वप्रथम ईश्वरीय नाम होने का गौरव प्राप्त है।

ओंकार की महान शक्ति और सामर्थ्य का संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया गया है। ओंकार की महत्ता का प्रतिपादन शब्दों में व्यक्त करना सम्भव नहीं है। साधना से अनुभूति करके ही इसका मूल्यांकन किया जा सकता है।

आनन्द और अमृत का मूलस्रोत—ओंकार

ओ३म् अमृतमय गौ दुग्ध है

मनुस्मृति में लिखा है कि ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद रूपी गायों का प्रजापति ब्रह्मा ने दोहन किया। अ, उ, म् उन्हीं से कढ़ा हुआ अमृतमय गौ दुग्ध है—

अकारश्चप्युकारश्च मकारश्च प्रजापतिः ।
वेद-त्रयान्निरदुहद् भूर्भुवः स्वरितीति च ।।

—मनु० स्मृति २।७६

प्रजापति ने आकार, उकार और मकार को और भूर्भुवः स्वः रूप व्याहृतियों को तीनों वेदों से दुहा है । यही तीनों वेदों के सार हैं ।

इसी तथ्य को मनुस्मृति के ग्याहरवें अध्याय के २६५ वें श्लोक में और भी सबल शब्दों में व्यञ्जित किया है । वहाँ बताया गया है कि ॐ 'त्रिवृद्-वेद' है । जैसे हिन्दू मात्र के लिये वेद सर्वश्रेष्ठ है, जैसे द्विजों के लिए वेद-त्रय-निष्पन्न गायत्री सर्वश्रेष्ठ हैं वैसे ही वेद-त्रय से निष्पन्न ॐ भी सर्वश्रेष्ठ है । अ, उ, म ही त्रिवृद्वेद है ।

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः । यस्तन्न वेद, ऋचा किं करिष्यति, य इत तद् विदु ते इमे समासते ।

(ऋग्वेद शाकल्य स. १।१६४।३६ तथा अथर्ववेद
शौनक स. ६।१०।१८)

इस मन्त्र के कई अर्थ किये जाते हैं । एक अर्थ 'ॐ' परक भी है । तदनुसार इस मन्त्र का अर्थ है कि ऋगादि वेदों के सार स्वरूप ॐ अक्षर में ही सब देवताओं का निवास हैं । समस्त देवगण ॐ के ही अङ्गभूत हैं । जो इस तत्वज्ञान को भली प्रकार से समझता है, वही वेद के वास्तविक अर्थ को, साथ ही ओ३म् तात्विक स्वरूप को यथार्थ में जानने वाला है । जिसकी बुद्धि इस रहस्य को हृदयगम नहीं कर पायी है सम्पूर्ण वेद-वाङ्मय से वह क्या लाभ उठा सकता है ? उसका तो वेद-पठन ही वेकार गया है । इसके विपरीत जो इस दर्शन सेभावित है, वह तो ॐ में ही समाहित हो रहा है । ओ३म्मय हो गया हैं ।

ओंकार आत्म-संजीवनी है–

ब्रह्म के कण्ठ से निःसृत सर्वाधिक पावन एवं माधुर्यपूर्ण ॐ की ध्वनि आकाश की भाँति सर्वव्याप्त है ॐ जगन्माता है, यह सर्वस्व है। ॐ अत्यन्त विस्मयकारी शक्तियों की आपूरित महाध्वनि है। ॐ सारी प्रकृति भावनाओं तथा चिन्ताओं का परम आलम्बन है। यह समस्त रूपों, नामों ध्वनियों का 'मुख्य अधिष्ठान' है। अतएव यह ब्रह्मत्व को उसकी सम्पूर्णता के साथ ज्ञापित—प्रकट करने वाली प्रतीकात्मक महाशक्ति है। ॐ ऐसा महासागर है। जिसमें असंख्य रूप नाम ध्वनियों की सरिताएँ लीन हो जाती हैं। ॐ अनादि तथा अनन्त परम चेतन का विराट् सागर है।

ॐ सृष्टि का प्रतीक रूप है। ॐ गुरु-वाणी है कार्य-ब्रह्म का परम उद्घोष है। ॐ वेदों की जननी और समस्त ध्वनियों की संजीवनी है। अध्यात्म विद्या प्राप्त करने को उत्सुकों के हेतु ॐ की ध्वनि अत्यन्त मूल्यवान शब्द कोष है। ॐ समस्त ध्वनियों तथा विद्याओं का विशेष कोष हैं। ॐ की नौका पर आरूढ़ होकर ही अभय—अमृत रूप आत्मा के महासागर तक पहुँचा जा सकता है।

ॐ अमरता का दाता है, इसको सीता की खीर से उपमित किया जा सकता है। यह समस्त रोगों का उपचार है, पापों का हरण करने वाला महामन्त्र है ॐ त्रिकुटी का पावनतम त्रिवेणी संगम है। ॐ के द्वारा ही भवताप का शमन सम्भव है इस प्रकार ॐ हमारी आत्मा की संजीवनी है वह हमारी आत्मा का मूलधन एवं सर्वोच्च सत्य शिखर है।

इस सृष्टि के विभिन्न रूप ॐ शून्य भित्ति पर विचित्र होने वाले असंख्य चित्र हैं। ओंकार पूर्ण संसार सत्य है, अन्यथा असत्य। आध्यात्मिक संसार का एकमात्र सत्य ॐ है। इसीलिये इसे परम सत्य के रूप में वर्णित किया गया है।

ॐ में हमारे पंचकोष, सूक्ष्म और कारण शरीर, नाम शब्द

वाणी, समग्र ब्रह्माण्ड आदि स्थित है। 'अन्तःस्थल' की भाँति ही ओम् नामात्मक एवं रूपात्मक संसार का मूल तत्व' है। जिस प्रकार महासागर में जल ही मूलतत्व है और लहरें केवल भासित होने वाली हैं, उसी प्रकार नाम रूप मय संसार केवल भासित होता है और ॐ ही आधारभूत मूल तत्व है। सारा दृश्यमान संसार असत्य है, क्योंकि यह परिवर्तनशील है केवल मात्र ॐ सत्य है, अनादि, अनन्त और अखण्ड सत्य है। यह ॐ ही मुक्ति दायक एकाक्षरी मन्त्र है।

ॐ ही परम उपास्य है। क्योंकि यह प्राणस्नायुप्राण है। ॐ ही भवसागर तारक मन्त्र है। ॐ की उपासना से जन्म जन्मान्तर के पाप कट जाते हैं।

ॐ वेद और वेदान्त की आधार भूमि है। ॐ उपनिषद् का सर्वश्रेष्ठ तत्व हैं। ॐ अखिल ब्रह्माण्ड का मूलाधार ,अक्षर ब्रह्म है। ॐ प्रणव है। ॐ सृष्टि का पावनतम गीत है। ॐ के 'अ, उ, म' से ब्रह्मा विष्णु, महेश की उद्भावना हुई है। ॐ इस वेदमयी का त्रिवेणी संगम है। ॐ परमशील शान्ति सौन्दर्य का उच्चतम शिखर है।ॐ महाप्रकाश है, ॐ ही शक्ति है, ॐ ही भक्ति है और ॐ ही अनुरक्ति है। ॐ सर्व प्रतिष्ठान है। ॐ आत्म संजीवनी है, ॐ आत्मा की शान्ति का मधुरतम उद्गीथ है। ॐ उपनिषद् दुग्ध का नवनीत है। ॐ वेदान्त का सर्वोच्च सत्य है। ओ३म् परम चैतन्य का स्वयं-भू स्वरूप है।

ॐ जीवात्मा का अन्तिम विश्राम स्थान है— 'यदगत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम'। ॐ समय दूरी, भाव-द्वन्दों आदि से परे परम शून्य स्वरूप है। ॐ में द्रष्टा—दृश्य का भेद नहीं रह जाता। ॐ कालातीत, गुणातीत रूपातीत एवं भावातीत है। ॐ कैवल्य है।

ॐ परम शक्ति है—ब्रह्म का सर्वकालिक निवास है ब्रह्म का अनन्त सौंदर्य, चिन्तन, वर्णन तथा अनुभूति से परे परम सूक्ष्म तत्व ॐ हैं। ॐ हमारी कल्पनाओं, चिन्ताओं, संकल्पों, भावनाओं का—हमारी इन्द्रियोंका परम विश्राम स्थल है। ॐ में समाहित होने के बाद कोई नहीं लौटता।

श्रुति वचनों में ओ३म् की अपार महिमा का गायन हुआ है।पावन अभिलाषा करने वाले को अपने मन ॐ में ही स्थिर करना चाहिए। क्योंकि ॐ ही श्रेष्ठ आश्रय दाता है—'एतदालम्बने श्रेष्ठमेतदालम्बने परम्' ॐ ही आत्मा है—'ॐ मित्येतदक्षरामद सर्वं।' ॐ ही एकाक्षर ब्रह्म है ॐ ही पर ब्रह्म है, यह सर्व ॐ ही है–'ओंकार एवेद सर्वमाकार एवेद सर्वं।' ॐ ही एकमेव सत्य और तत्व है। ॐ ब्रह्म और आत्मा तत्वतः एक हैं, इनमें अभेद की स्थिति है। एक सत्य ओंकार को ही अनेक नामों से पुकारा जाता है श्रुति वचन है–'सर्व ह्येतद्ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा ब्रह्म एवं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।' श्रुति वाक्य यह सिद्ध करते हैं कि ॐ ब्रह्म का मूलनाम है। मन को संशुद्ध कर ॐ के जाप एवं ध्यान से न केवल माया की गघन आसक्ति के दृढ़ बन्धन का नाश होता है। अपितु साधक ब्रह्म मे एकाकार हो जाता है—बिन्दु सिन्धु में लय हो जाता है।

ॐ आदि मन्त्र है। सब मन्त्रों के आदि में ॐ स्थित है। यह ॐ की सर्वोपरिता सिद्ध करती है ॐ की महिमा तो देखिए कि ज्ञान की उच्चतम मापदण्ड के सार उपनिषदों का समारम्भ पावन 'ध्वनि' ॐ से ही हुआ है। ॐ सर्व धर्म सार है। एकाक्षर ॐ धर्म के सारे सिद्धान्तों तथा दर्शन के सारे तत्वों का अधिवास है। हमारी प्रतिश्वास में ही ध्वनि लयमान है। 'भूमा' के अन्तर गान में एक ही लय विद्यमान है ॐ की। ॐ का चिन्तन शान्त मन की अनन्त चेतना को संयोजित कर देता है यह हमारे मन को उदात्त-तम स्वरूप में रूपान्तरित कर देता है। सारे धर्मों में ॐ की महिमा का उद्घोष हुआ है। ईसाई और मुसलमान 'अमेन' और 'आमीन' कहकर रूपान्तर से ॐ ॐ का ही उद्घोष करते हैं। भारत के समस्त धर्म एवं दर्शन ग्रन्थों में ॐ की शाश्वत एवं चिरन्तन महिमा

का गान गुंजित है। आज तो वैज्ञानिक बौद्धिकता से संग्रस्त योरोप तथा अमेरिका के जन भी ॐ के जप एवं ध्यान में साधनारत होते हुए दिखाई देते हैं। ॐ हमारा प्राणामृत तत्व है। ॐ वेदों का जीवनाधार और समस्त मन्त्रों का मूलाधार है। ॐ इस अखिल ब्रह्माण्ड की जीवन सर्वस्व है, यह एक सार्वकालिक तथा सार्वदेशीय मन्त्र है। ॐ परमपिता परमात्मा से प्राप्त जीवात्मा का मूलधन है। संसार के सारे अर्थ इस परम सूक्ष्म रूप ओंकार में ही निवास करते हैं। सारे देवगण, परमशिव एव शिवा, ब्रह्मा एवं विष्णु सब ॐ की गरिमा और महिमा का गान अनादिकाल से गा रहे हैं। अतएव ॐ की महिमा वर्णनातीत है। ॐ सब धर्मों का सर्वोच्च प्रतीक है। इस कारण यह सर्व पूज्य है। हमें ॐ की महिमा के प्रति किंचित मात्र भी संशय पूर्ण नहीं होना चाहिए, क्योंकि 'संशयात्मा विनश्यति'।

श्रुति कहती है सब कुछ नाम का प्रसार है—'नामैव सर्वं' नाम परम सूक्ष्म और परम रहस्यमय को व्यावहारिक एवं प्रत्यक्ष बनाता है। और नाम का मूलाधार है ॐ। नाम रूप जल तरंग की भांति अभिन्न है। अतएव ॐ सब नामों, सब रूपों का आधार है। ॐ की अनुभूति ब्रह्माण्ड की अनुभूति है। इस ॐ के अतिरिक्त किसी अन्य का अस्तित्व नहीं है—'सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानाऽस्ति किंचन'। ॐ हमारी शाश्वत पिपासा को बुझाने वाली चेतन सुरसरि है। 'सर्वं ॐ मयम्'—सर्व कुछ ॐ मय है। ॐ वेदों का सार, गीता का नवनीत, कृष्ण की मुरली, गोपिकाओं की भक्ति, राधिका की अनुरक्ति, ज्ञानी की मुक्ति तथा भक्त की प्रणति है।

ओंकार से प्रभु-दर्शन—

मनुष्य जीवन का लक्ष्य परम प्रेमास्पद परमेश्वर का साक्षात्कार करना है। परमात्मा के दर्शन से ही आत्मा को परम शान्ति प्राप्त होती है। मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है—

भिद्यते हृदयग्रन्थिः, छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते सर्व कर्माणि, तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥

परात्पर प्रभु के दर्शन करने पर हृदय की ग्रन्थि (कामप्लेक्सेज) स्वयं खुल जाती है । सारे संशय नष्ट हो जाते हैं । मूढ़ मान्यतायें दूर हो जाती हैं । आत्म-विश्वास दृढ़ हो जाता है और समस्त कर्म(संस्कार) भी क्षीण हो जाते हैं ।

प्रभु दर्शन से आप ही, मिटते हैं त्रयताप ।
निर्निमेष रस पान से, नर बनता निष्पाप ॥

परमेश्वर के दर्शन से दैहिक, दैविक और भौतिक दुःखों का आप से आप नाश हो जाता है । परम रहमय (आनन्द प्रवाह रूप प्रभु) का अपलक दर्शन करने से साधक निष्पाप हो जाता है । अन्तःकरण पर चढ़े हुए सभी कल्मष-कषाय नष्ट हो जाते हैं । वह पवित्रात्मा बन जाता है ।

रसमय प्रभु के रश्मि को, हो जिस पर बौछार ।
आत्म-काम वह नर हुआ, ब्रह्म निहार निहार ॥

जो साधक तन्मय होकर ओंकार का ध्यान करता है, उसे अपने अन्दर-बाहर, ऊपर-नीचे चारों ओर आनन्दमय की आनन्द-रश्मियों की बौछार अविरल अपने ऊपर होती हुई प्रतीत होती है । वह सब ओर ब्रह्म (विराट् भगवान्) को देख-देखकर पुलकित हो उठता है । वह आत्म-काम बन जाता है । उसकी सारी इच्छायें, सारी कामनायें आप से आप मिट जाती हैं । सारी तड़प, सारी व्याकुलता काफूर हो जाती है । वह अलमस्त हो जाता है । आनन्द सागर में निमग्न हो जाता है । इसी से ब्रह्मर्षि याज्ञवल्क्य ने परमात्मा-दर्शन को परम धर्म बतलाया है–

अयं तु परमो धर्मो यद् योगेनात्मदर्शनम् ।

योग के द्वारा आत्म-दर्शन ही परम धर्म है । इसी में समस्त

पुरुषार्थ की समाप्ति है। ईश्वर-दर्शन ही इष्ट है। वही एकमेव ध्येय है। वही हमारा साध्य है।

ओंकार के द्वारा प्रभु-प्राप्ति होती है, ऐसा प्रश्नोपनिषद् में पिप्पलाद शिव-पुत्र सत्यकाम को उपदेश देते हैं—

तमोङ्कारेणैववायतनेनान्वेवि विद्वान्।
यत्तश्छान्तमजरममृतमभयं परञ्चेति॥

(प्रश्नो० ५।७)

ओंकार के सहारे बुद्धिमान् साधक उस शान्त, अजर, अमर, अभय और व्यापक परमात्मा को प्राप्त होता है।

श्वेताश्वर (१।२५) उपनिषद् ने कहा है—

तिलेषु तैल दधिनीव सर्पिरापः स्रोतःस्वरणीषु चाग्निः एवमात्माऽत्मानि गृह्यतेऽसौ सत्येनैव तपसा यो ऽनुपश्यति।

'जैसे तिलों में तेल, दही में घृत, स्रोतों में जल और अरणियों (लकडियों) में अग्नि अदृश्य रहती है, वैसे ही आत्मा के अन्दर परमात्मा अदृश्य रहता है, वह उसे अपने अन्दर ही प्रत्यक्ष देखने लगता है।

अतएव जो लोग ईश्वर के दर्शन करना चाहते हैं, वह सत्य निष्ठा के साथ उपनिषद् में वर्णित निम्न रीति से ओंकार की उपासना करें—

स्वदेहमरणिं कृत्वा, प्रणवं चोत्तरारणिम्।
ध्याननिर्मथनाभ्यासाद् देवं पश्येन्निगूढवत्॥

अपने अन्तःकरण को अधरारणि और ॐ को उत्तरारणि बनाकर ध्यानरूपी मन्थन दण्ड का रगड़ के बार-२ अभ्यास से अन्तरात्मा में छिपी परमात्म ज्योति को देखो।

यज्ञ के लिये अग्नि प्रचण्ड करने के लिए पुराकाल में कानन की दो लकड़ियों को तेजी से रगड़ा जाता था। नीचे जो लकड़ी रखी जाती थी, उसे अधरारणि कहा जाता था और जो लकड़ी दण्डवत् ऊपर

रखी जाती थी उसे उत्तरारणि कहते थे। ऊपर अरणिमन्थन के दृष्टान्त द्वारा ॐ के बार-बार ध्यानाभ्यास को कहा गया है। ॐ के ध्यानाभ्यास से ही अदृश्य ब्रह्म दृष्टिगोचर हो जाता है।

शान्त, एकान्त स्थान में कुशासन पर बैठकर मेरुदण्ड को सीधा रखते हुए भृकुटी के मध्य आज्ञाचक्र में ज्योति रूप ओंकार का ध्यान करना चाहिये। ध्यान काल में मौन रहना चाहिये। नेत्र मीलित या अर्धमीलित रहें।

धीरे-धीरे यह अभ्यास जब बढ़ाया जाता है, तो ध्यान परिपक्व हो जाता है। साधक को अपने चारों ओर ॐ के आकार में तेजोवलय, दिव्य प्रकाश मण्डल झीनी-झीनी रश्मियों से मादक रस झरता हुआ, अंग-अंग को निर्मल ऊर्जा से आप्लावित करता हुआ स्पष्ट प्रतीत होता है। ज्यों-ज्यों यह प्रतीति घनीभूत होती जाती है, त्यों त्यों साधक अधिकाधिक आत्म-विभोर होता जाता है। उसका हृदय पुलकायमान हो उठता है। उसे कम्पन् सिहरन, रोमाञ्च, अपने में हलका-फुलकापन, शीतलता, परमशान्ति, सूझ-सुबोध, स्फूर्ति और तृप्ति का दिव्याभास होता है। तन्मयता की इस उच्च मनोभूमि में साधक ज्योतिर्मय ओमाकार ब्रह्म का साक्षात्कार करता है। यह साक्षात्कार जीवन-व्यापी प्रभाव वाला होता है। जाग्रत और स्वप्न अवस्था में भी उनकी ब्राह्मी दृष्टि सब ओर सब काल में सर्वत्र ब्रह्म ही ब्रह्म देखती है। इसी ब्राह्मी स्थिति का उपदेश भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को निम्न शब्दों में किया है—

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ, नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यान्तकालेऽपि, ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति॥

(गीता २।७२)

हे पार्थ! परमात्मा का इस रूप में सर्वत्र दर्शन करना ही ब्राह्मी स्थिति है। इसे पा जाने पर कोई भी मोह में नहीं फँसता, और

अन्तकाल में, मरने के समय में भी इस स्थिति को प्राप्त करने पर साधक ब्रह्मनिर्माण को प्राप्त हो जाता है।

समाधि व मुक्ति अवस्था में पहुँचाने में समर्थ–

मोक्ष पद का आश्वासन देते हुए "नाद बिन्दूपनिषद्" का वचन हैं 'यदि प्रणव को हम हंस मानें तो 'अकार' उसका दाहिना पंख 'उकार' बांया पंख 'मकार' उसकी पूँछ और अर्द्ध मात्रा सिर है। तब सतोगुण शरीर और रजोगुण व तमोगुण—दोनों पैर कहलायेंगे। लोकों की स्थिति इस प्रकार होगी कि नाभि देश में महर्लोक, कटि देश में स्वर्लोक जानुओं में भुवर्लोक और पैरों में भूलोक होगा। इसी प्रकार से जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक उसके हृदय, कण्ठ और ललाट व भौहों के बीच में स्थित होंगे। इस प्रणव-रूपी हंस पर चढ़कर, उसके अनुष्ठान व ध्यान की विधि से यह साधक मनन व चिन्तन करता हुआ हजारों पापों से निवृत्त होकर मोक्ष पद को प्राप्त हो जाता है। (१-५)

इसी उपनिषद् के ६ से १६ श्लोकों में ॐकार की महिमा कागान करते हुए कहा गया है 'ॐकार' अग्नि देवता है। अग्नि के मण्डल की तरह उसका रूप है और आग्नेयी ही उसकी पहली मात्रा है। 'उकार' के वायु देवता हैं। वायु मण्डल की तरह ही उसका रूप है और वायव्या ही उसकी दूसरी मात्रा है। 'मकार' के देवता सूर्य के मण्डल की तरह उसका रूप है और यह तीसरी उत्तर मात्रा है। चौथी अर्धमात्रा वारुणी के देवता वरुण हैं। इन सभी प्रकार की मात्राओं में तीन-तीन सुन्दर मुख हैं। इसलिये प्रणव को द्वादश कलात्मक कहा जाता है। धारणा, ध्यान और समाधि ही उसे जानने के साधन हैं।

गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा है 'सब वेदों में प्रणव अर्थात् ॐकार' मैं हूँ। (६।८, ६।१६) गीता के (१७।२४) श्लोक में कही

है–ब्रह्मवादी लोगों के यज्ञ, दान, तप तथा अन्य शास्त्रोक्त कर्म सब 'ॐ' के उच्चारण के साथ हुआ करते है।' गीता में एक और स्थान पर परम गति का लाभ बताते हुए कहा 'एकाक्षर ब्रह्मरूप ॐ का उच्चारण तथा परमात्मा का चिन्तन करता हुआ तो शरीर त्याग करता है, वह परम गति को पाता है।'

योग-दर्शन की घोषणा है 'प्रणव का जाप और अर्थ विचारने से समाधि लाभ होना है।' (१।२) क्योंकि इससे चित्त चंचलता रहित हो जाता है।'' ॐकार की उपेक्षा करने वाले की देवी भागवत् ने निन्दा की है जो ब्राह्मण ओंकार को पिता के रूप में और गायत्री को माता रूप में नहीं जानता उसका हीन जन्म समझना चाहिए।' भगवान् मनु ने (२।६४) आदेश किया है कि वेद के अध्ययन के आरम्भ और अन्त में ॐ का उच्चारण आवश्यक है।'

महर्षि याज्ञवल्क्य का कथक है 'वेदों का आदि अक्षर 'ॐ' ब्रह्मरूप है। इसमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश प्रतिष्ठित है। सर्ववेत्ता वही है जो प्रणव को जानता है। यह सब प्रकार के योग साधनों का सार है। इसको जानना आवश्यक है। जो प्रणव को जान लेता है, उसे और कुछ जाने की आवश्यकता नहीं रहती। मन्त्र पाठ से पूर्व 'ॐ' का उच्चारण आवश्यक है। सारे मन्त्र ॐकार से मिलकर ही फल प्रदान करते हैं।' स्वामी रामतीर्थ ने एक स्थान पर लिखा है। 'विज्ञान पर धिक्कार है, यदि वह पवित्र शब्द ॐ' के प्रभाव सम्बन्धी सद्ज्ञान के विरुद्ध जाता है।'

———

ओंकार विज्ञान

शब्द में विलक्षण शक्ति होती है । इसी से उसे ब्रह्म-पद से अभिहित किया जाता है । व्यक्ति प्रगाढ़ निद्रा में लीन है । नाम लेकर जब उसे बुलाया जाता है, तो कर्ण गुहा से होती हुई वह सम्बोधन-ध्वनि कर्ण नाड़ी को झंकृत करती हुई मस्तिष्क स्थित कर्ण-केन्द्र को आलोकित करती है, जिससे चेतन मन तरंगित होता है और व्यक्ति सोते से जाग उठता है । ऐसा प्रत्यक्ष हम सब का अनुभव है । सभी मानते हैं कि यह प्रजागरण-कार्य सम्बोधन-ध्वनि का ही कार्य है ।

अब इस सम्बोधन-ध्वनि की क्रिया विधि के अन्तराल का सूक्ष्म विवेचन करे, तो हमें ज्ञात होगा कि वह जड़ता-भरित ईथर स्पन्दन मात्र ही नहीं है, वह स्वयं चैतन्य शक्ति विशेष है । यदि ऐसा नहीं होता तो वह सम्बोधन ध्वनि अन्यों को यथावत् सोता हुआ छोड़ कर सम्बन्धित व्यक्ति के कर्ण गुहा, कर्ण नाड़ी, कर्ण केन्द्र और चेतना को ही क्यों कर आलोड़ित करती । अन्य व्यक्ति सोते ही रहे,सम्बोधित व्यक्ति ही जागा। इससे यह स्पष्ट है कि ध्वनि क्रिया यान्त्रिक न होकर 'चेतन क्रिया'है॥ इसी रहस्य को शास्त्रकारों ने इन शब्दों में व्यंजित किया है—

शयाना: प्रायश: लोके, बौध्यमाना स्वनामभि: ।
सहसैव प्रबुध्यन्ते यथैव प्रत्यगात्मनि ।।

संसार में हम देखते हैं कि स्वनाम द्वारा जगाने पर सोया हुआ व्यक्ति सहसा जाग पड़ता है, उसी प्रकार मन्त्रराज प्रणव की ध्वनि से अन्तरात्मा प्रबुद्ध और चैतन्य हो जाती है । यही प्रणव की भगवत्ता है ।

लोक में भी शब्द के अनेकों चमत्कार हम प्रत्यक्ष में देखते हैं बीन की ध्वनि से सर्प का मोहित होना, हिरण-हिरणी का बेसुध

हो जाना, नाद विशेष से हाथी जैसे विशालकाय पशु को वश में करना गायों का दूध बढ़ाना, कृषि-वनस्पति को अधिक वेग से पल्लवित-पुष्पित करना, मेघ मल्हार के गान से औचक वर्षा का होना और दीपक राग से बुझे हुये दीपक का आप से आप जल जाना शब्द की अलौकिक शक्ति को ही प्रमाणित करते हैं।

थाली बजाकर सर्प, बिच्छू आदि के विष उतारे जाते हैं। और भूतोन्माद तथा कण्ठमाला जैसे असाध्य रोगों का शमन किया जाता है। अतः सिद्ध है कि शब्द प्राणी मात्र को ही प्रभावित और आकर्षित नहीं करते, उनका कार्य-क्षेत्र विशद और व्यापक है।

आधुनिक विज्ञान के प्रयोगों और शोधों का यही निष्कर्ष है कि विद्युत चुम्बक, प्रकाश आदि के समान ध्वनि भी एक ऊर्जा है, विलक्षण शक्ति है। रेट्रो मीटर नामक यन्त्र के आविष्कार ने ध्वनि शक्ति की प्रभुविष्णुता को प्रत्यक्ष सिद्ध कर दिया है। इस यन्त्र में किसी बाहरीशक्ति की अपेक्षा नहीं रहती, बल्कि ध्वनि तरंगों की ऊर्जा ही विद्युत ऊर्जा में वर्णित होकर चमत्कारिक कार्य करती है इससे स्पष्ट होता है कि शब्द की सामर्थ्य सभी भौतिक शक्तियों से बढ़कर सूक्ष्म और विभेदन क्षमता वाली है। इसकी निश्चित जानकारी त्रिकालदर्शी भारतीय ऋषियों को थी। उन्होंने मन्त्र-विज्ञान का विज्ञान वैज्ञानिक आधार पर ही आज से सहस्रों वर्षों पूर्व करके अपनी अलौकिकता का परिचय दिया है।

उत्कृष्ट आध्यात्मिक ग्रन्थों की जानकारी से शून्य, भौतिक शास्त्र, इतिहास, भूगोल आदि की मोटी पुस्तकीय जानकारी से चौंधियाया हुआ आज का शिक्षित वर्ग प्रणव-शक्ति, मन्त्र-शक्ति के प्रति यदि अनास्था प्रकट करता है, तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है? उन्होंने ध्वनि-शास्त्र का पुस्तकीय ज्ञान भर प्राप्त किया है, स्वानुभव नहीं। अतः उनका यह कहना कि शब्दों के उच्चारण मात्र से सिर का दर्द या बिच्छू दंश जन्य पीड़ा नहीं मिट सकती? मन्त्र द्वारा सन्तान

का होना, शत्रु पर विजय प्राप्त करना, लक्ष्मी प्राप्ति और अनिष्ट का निवारण मात्र अन्ध-विश्वास है—उनकी अल्प जानकारी और थोथी अहंमन्यता का ही परिचायक है।

वड़े सन्तोष की वात है कि गहन-अध्ययन करने वाले शोध-प्रेमी वैज्ञानिक ध्वनि-तरंगों की विस्मयकारी क्षमता के नये-नये प्रयोग करते हुए मन्त्र-विद्या पर अटूट श्रद्धा रखते हैं। उनका कहना है कि मन्त्र में ध्वनियाँ होती है। ध्वनि समूहों का ही नाम मन्त्र है। भावना विशेष से भावित मन्त्र ध्वनि की सूक्ष्म झंकार प्रति सेकिण्ड लगभग १० लाख चक्रों (माइको सर्किल) की रफ्तार से ध्वनि तरंगें (साउन्ड वेव्ज) निःसृत करती हैं। जिससे उनमें ताप उत्पन्न होता है। कोश-कोश की क्रिया-शीलता रोग-निरोधनी शक्ति की चैतन्यता को उस ऊष्मा से विशेष गति मिलती है। जिसका परिणाम शक्तिप्रद और आरोग्यकारी होता है।

ध्वनि-शब्द का सवसे क्रान्तिकारी प्रयोग मानसिक रोगियों की चिकित्सा में किया गया है। 'पूठा कालेज आफ मेडिसन' के डा० पेटर लिडस्ट्राय ने गम्भीर रोग वाले १९२ मानसिक रोगियों के मस्तिष्क में अतिस्वन धारायें पहुंचायीं। इन ६० विक्षिप्त और १३२ स्नायु रोगियों में से कोई भी काम नहीं कर पाता था। उन्हें सर्वथा असाध्य रोगी समझा जाता था। बिजली चिकित्सा (इलेक्ट्रिक थिरेपी) मनो-विश्लेषण चिकित्सा (साइको थिरेपी) और औषधि-चिकित्सा के सभी उपाय इन रोगियों पर वेकार सिद्ध हो चुके थे। किन्तु, यन्त्र विशेष से चालित अतिस्वन ध्वनि-चिकित्सा से ३१ विक्षिप्त और १६० स्नायु रोगियों की स्थिति में इतना सुधार हुआ कि वे फिर दैनिक कार्य करने योग्य हो गये।

न्यूयार्क के येशीवा विश्व विद्यालय में अल्वर्ट, आइंस्टाइन कालेज आफ मेडिसन में ध्वनि तरङ्गों के उपयोग से विविध रोगों का उपशमन किया जाता है। अमेरिका के डा० हचिसन ने विभिन्न प्रकार की संगीत

ध्वनियों की सहायता से ही अनेक असाध्य रोगों की सफल चिकित्सा की है। उन्होंने नवाविष्कृत किसी भी अल्ट्रा साउन्ड उपकरण का प्रयोग नहीं किया। उनका विश्वास है कि अल्ट्रा साउन्ड उपकरणों के बिना भी भावना भक्ति ध्वनि-तरगों के सम्प्रेषण से अद्भुत कार्य किये जा सकते हैं।

परीक्षण के बाद वैज्ञानिकों का यह निश्चित मत है कि बीस से लेकर बीस हजार प्रति सेकेण्ड कम्पन वाली ध्वनि को ही हम कान से सुन सकते हैं। इससे अधिक ध्वनि कम्पनों को सुनना सम्भव नहीं है। किन्तु स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म की शक्ति अधिक होती है, जल की अपेक्षा वाष्प की शक्ति प्रबलतर होती है, उसी न्याय से बीस हजार प्रति सेकेण्ड से अधिक कम्पन वाली अतिस्वन ध्वनि तरगों की शक्ति अपरिमित होती है। वे जिस ओर बहती हैं, उस ओर तीव्र परिवर्तन की क्षमता रखती हैं। मन्त्र विज्ञान में भावना रथ पर चढ़ी हुई मन्त्र-ध्वनि भावना की सूक्ष्मता से अति शक्तिमयी बनकर प्राणि जगत् को ही प्रभावित नहीं करती, प्रत्युत एक विशेष परिधि में परिवेश या वातावरण को भी अनुप्राणित करती हैं। उनमें वांछित परिवर्तन लाती हैं। जीवन का कल्प करती हैं।

सूक्ष्म शरीर को सोई हुई सूक्ष्म शक्तियों को किसी बिना बाह्य उपकरण, यंत्र या मशीन की सहायता से जगाकर भौतिक और आध्यात्मिक लाभ उठाने की विधियों को खोज निकालने का श्रेय अध्यात्म क्षेत्र में प्रयोग करने वाले इस देश के वीतरागी योगभ्यासी दिव्यदृष्टि प्राप्त मनस्वियों को है। इन विविध प्रकार की विधियों (साधनाओं) में प्रणव भी एक है, जिससे साधक अपने शक्ति कोषों को विकसित करके मानव जीवन की सभी उलझी गुत्थियों को सुलझाने में ही समर्थ नहीं होता है, प्रत्युत दैहिक, दैविक और भौतिक चिन्ताओं से अपने को

मुक्त करके नित्य ब्रह्मानन्द (अपूर्व मस्ती) में लीन रहता है।

विदेशी विचारक 'आर्टी मे ब्लैकबर्न' ने इस तथ्य की पुष्टि करते हुए लिखा है कि संस्कृत भाषा के अक्षरों में भाव और अर्थ दोनों होते हैं। इन अक्षरों के मन्त्र के रूप में युक्ति पूर्ण गठन से अनेक बार जादू का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने श्रद्धा से नहीं जिज्ञासा की दृष्टि से इन पर खोजें की है। The Practical Yogi (L. N. Fowler and Co. London) पुस्तक में क्रियात्मक अनुभव के आधार पर विद्वान् लेखक ने लिखा है, 'भारतीय संस्कृति और साहित्य में रुचि रखने वाले समस्त पाश्चात्यों का ध्यान ॐ' के पवित्र शब्द ने अपनी ओर आकर्षित किया है। इस शब्द के उच्चारण से जो कम्पन होते हैं वह इतने शक्तिशाली है कि यदि उन्हें बराबर रखते है। इस कथन पर विश्वास करना कठिन प्रतीत होता है जब तक कि इसे क्रियात्मक रूप से किया न जाय। परन्तु एक बार अनुभव करने पर इसकी सत्यता की प्रतीति होती है और इसे सुविधा पूर्वक समझा जा सकता है। मैंने इन कम्पनों की शक्ति का अनुभव किया है और पूरे विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि जैसा मैंने कहा है, इसका वैसा ही परिणाम उपस्थित होगा। साधारण रीति से पढ़ने पर भी विद्यार्थी पर इसका प्रभाव पड़ता है परन्तु यदि इसका शास्त्रोक्त शुद्ध उच्चारण किया जाय तो स्थूल शरीर के प्रत्येक परमाणु में उत्तेजना उत्पन्न करके उसमें परिवर्तन लाता है। नये कम्पनों से नई दिशा उपस्थित होती है और सुप्त शक्तियाँ जाग्रत हो उठती हैं। ओंकार से शक्तिकोषों के जागरण की वैज्ञानिक प्रक्रिया का वर्णन ऊपर किया गया है। सर्वप्रथम इसका अनुभव भारतीय योगियों ने किया था। समाधि अवस्था में वह अनुभव करते थे कि प्रकृति के उच्च अन्तराल में निरन्तर एक ध्वनि होती है। इस ध्वनि को उन्होंने 'ओ३म' रूप में परिणत किया है। स्वर विज्ञान के आचार्यों ने उसी ध्वनि से सूक्ष्म प्रकृति से एकता

स्थापित करने का विचार बनाया। यह एकता ही अपार शक्ति और सामर्थ्यों का अवतरण करने वाली है। जिस तरह घड़ियाल पर चोट करने से एक झनझनाहट सी उत्पन्न होती है, उसी तरह 'ॐ' के उच्चारण से एक ऐसी स्वर लहरी उत्पन्न होती है जो क्षणमात्र में सारे ब्रह्माण्ड में फैल जाती है और सृष्टि के प्रत्येक अणु से अपना सम्बन्ध जोड़ लेती है क्योंकि वह भी निरन्तर यही ध्वनि करते हुए क्रियाशील रहते हैं। एकता और संगठन ही शक्ति और सिद्धि का रूप है 'ॐ' से जाग्रत होने वाली शक्तियों का कारण उनकी ध्वनि से उत्पन्न विशिष्ट प्रकार के कम्पन ही हैं जो विकास और प्रगति का आधार बनते हैं।

'ॐ' की साधना से शक्तिकोषों का जागरण, भौतिक और आध्यात्मिक शक्तियों का विकास व अन्य विभिन्न प्रकार की शक्तियों का वर्णन शास्त्रों में किया गया है, उनको प्राप्त करने के लिए विशिष्ट विधि व्यवस्था और तपश्चर्या की आवश्यकता है इसका निर्देश विभिन्न शास्त्रों में अलग-अलग ढङ्ग से किया गया है।

उपरोक्त तथ्यों से एक बात स्पष्ट है कि ओंकारोपासना को आधुनिक विज्ञान का समर्थन प्राप्त है और इसका आधार युक्तियुक्त है। *

प्रणव की शास्त्रीय व्याख्या

'अवति इति ओम्'

जो अविद्या और इसके कार्य से हमारी रक्षा करता है, उसे ओंकार कहते हैं।'

कार्यं यत्र विभाव्यते किमपि तत् स्पन्देन-अव्यापकम्
स्पन्दश्चापि तथा जगत्सुविदितः शब्दान्वयी सर्वदा।
सृष्टिश्चैव यथा दिमाकृतिशेपस्तदाभूत् स्पन्दिनी,
शब्दश्चोदभवत्तदा प्रणव इत्योंकाररूपः शिवः ॥

जहाँ क्रिया है, वहाँ निश्चय रूप से कम्पन होता है। जहाँ कम्पन होता है, निःसंदेह शब्द भी होगा। परिणामतः सृष्टिरूपी क्रिया में साम्यावस्थ प्रकृति की सबसे पहली हिल्लोल की ध्वनि की संज्ञा शिव-रूपी ओंकार हैं। इसका अभिप्राय यह है कि प्रलय के पश्चात् जब ईश्वर में एक से वहुत होने की इच्छा जाग्रत होती है, तब ब्रह्माण्ड-प्रकृति में कम्पन होते हैं और सारी ब्रह्माण्ड-प्रकृति के कम्पन से जिस सबसे पहले शब्द का आविर्भाव होता है, उसी को प्रणव नाद कहते हैं।

प्राणान् सर्वान् परमात्मानि प्रणमयतोत्येष स्यात् प्रणवः।१

—अथर्वशिरोपनिषद्

जिससे समस्त प्राणवृति ईश्वर में लीन हो जाती है, उसे प्रणव कहते हैं अथवा समस्त प्राणों को ईश्वर में प्रणाम करता है उसे प्रणव कहा जाता है।

प्रणव का अर्थ है—प्रकृष्टता से नवीन। जो नित्य नवीन रहता है, जिसका क्षय नहीं होता, जो कभी पुराना नहीं होता है, वह एकाकी सी स्थिति में बना रहता है।

डा. सम्पूर्णानन्द ने प्रणव की व्याख्या करते हुए कहा है—

'जव योगी का प्राण सुषुम्ना में प्रवेश करके मूलाधार के ऊपर उठता है, तव उसको अन्य अनुभूतियों के साथ दिव्य नाद की भी अनुभूति होती है। उसके मार्ग में जो स्थान आते हैं ऐसे स्थान जिनको एक प्रकार के प्राण की यात्रा के स्टेशन कह सकते हैं, उनकी 'चक्र' संज्ञा है, प्रत्येक चक्र में नाद का एक विशेष रूप होता है। हिंदी का प्रयोग करने वाले सिद्ध और सन्त मत के आचार्यों ने इन नादों को सामूहिक रूप से 'अनहद' कहकर पुकारा है, जो संस्कृत के 'अनाहत' का तद्भव रूप है। सहस्रार में पहुंचकर नाद-के सूक्ष्मतम का अनुभव होता है, जिसको 'प्रणव' नाम दिया गया है।'

माण्डूक्य प्रवचन में प्रणव की व्याख्या इस प्रकार से की गई है--

'प्रणवश्च परः स्मृतः' परतत्व तुरीय ब्रह्म जिसमें देश, काल, वस्तु नहीं हैं, वह भी प्रणव ही है। तात्पर्य यह है कि नाम-नामी का भेद नहीं है। एक अखड, परिपूर्ण अद्वैतसत्ता जो चिन्मात्र है वही प्रणव है।

अपूर्वोऽनन्तरोऽवाह्योनपरः प्रणवोऽव्ययः।

उस प्रणव में पहले पीछे का भेद नहीं है। बाहर-भीतर का भेद नहीं है। वह अव्यय है जो वस्तु उत्पन्न होती है, उससे कुछ पहले होता है। जो वस्तु नष्ट हो जाती है, उससे कुछ बाद में रहता है। जिससे पहिले कुछ नहीं है, वह अनादि और जिसके पीछे कुछ नहीं वह अनन्त है। प्रणव अनादि, अनन्त और अव्यय है अर्थात् अविनाशी है। उसके बाहर-भीतर कुछ नहीं अर्थात् अद्वैत है। यह सम्पूर्ण प्रपंच प्रणव में से ही निकला है, प्रणव में ही लय होगा और मध्य में भी वह प्रणव रूप ही है।

अथर्वशिरोपनिषद् के अनुसार--

अथ कस्मादुच्यते ओंकारो यस्मादुच्चार्यमाण एवं प्राणान र्ध्वमुत्कामयति तस्मादुच्यते ओंकारः। अथ कस्मादुच्यते प्रणवः यस्मादुच्चार्यमाण एव ऋग्यजुः सामार्थवांगिरसं ब्रह्म ब्राह्मणेभ्यः प्रणामयति नामयति च तस्मादुच्यते प्रणवः।

अब ओंकार किस कारण से कहा जाता है? इसलिए कि उसका उच्चारण करने में प्राणों को ऊपर खींचना पड़ता है, इसी से आपको ओंकार कहा जाता है। प्रणव कहने का कारण यह है कि उसका उच्चा-रण करते समय ऋक् यज, साम, अथर्व, अंगिरस, ब्रह्मब्राह्मण को प्रणाम करने में आता है इसलिए उसका नाम प्रणव है।

मनुस्मृति के अनुसार वेदों से ही भूत, भविष्य और वर्तमान रूपों की सिद्धि होती हैं संसार के समस्त वेदों के मूल में हैं वेद के शब्द। उसका यह अर्थ हुआ कि वेद में सारे शब्दों का अन्तर्भाव होता

है वेद का अन्तर्भाव गायत्री में ही होता है। गायत्री का अन्तर्भाव प्रणव में माना गया है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि सारे संसार की सम्पूर्ण शब्द सृष्टि ही ओंकार है। यह शब्द सृष्टि केवल मनुष्यों के शब्दों तक ही सीमित नहीं है वरन् इसे प्राणीमात्र के शब्दो की समष्टि समझना चाहिए।

छान्दोग्योपनिषद् में ओंकार की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए कहा गया है—

प्रजापति के मन में समस्त लोकों के सार ग्रहण करने की इच्छा जाग्रत हुई। इस इच्छा को पूर्ण करने के लिए प्रजापति ने ध्यान की साधना की। उसके परिणाम स्वरूप त्रयीविद्या की उत्पत्ति हुई। त्रयी-विद्या से भूः, भुवः, स्वः व्याहृतियाँ उत्पन्न हुई। इन व्याहृतियों की पुनरालोचना से ओंकार की उत्पत्ति हुई।

योग की भाषा में ओंकार की परिभाषा इस प्रकार से की जा सकती है—

वाणी के कई प्रकार हैं वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती व परा। वैखरी स्थूल है, परा अत्यन्त सूक्ष्म। हम जिन शब्दों का उच्चारण करते हैं, उसे वैखरी वाणी कहा जाता है। इससे सूक्ष्म मध्यका, मध्यमा से सूक्ष्म पश्यन्ती और पश्यन्ती से सूक्ष्म परा वाणी है। यह चैतन्यान्य है। इस परा वाणी को ही आदि शक्ति ओंकार की संज्ञा दी गई है।

शिवपुराण में प्रणव की व्याख्या इस प्रकार की है—

प्रोहि प्रकृतिजातस्य संसारस्य महोदधेः।
नवं नावावावमिति प्रणवंवै विदुर्बुधाः ॥
प्रः प्रपञ्चो न नास्ति वो युष्माकं प्रणवं विदुः।
प्रकर्षेण नयेद्यस्मान्मोक्षं वः प्रणवं विदुः ॥
स्वजापकानां योगिनां स्वमन्त्रपूजकस्य च।
सर्वं मंक्षयं कृत्वा दिव्यज्ञानं तु नूतनम् ॥

तमेव मायारहितं नूननं परिचक्षते ।
प्रकर्षेण महात्मानं नवं शुद्धस्वरूपकम् ॥
नूतनं वै करोतीति प्रणवं तं विदुर्बुधाः ।

सूतजी बोले—प्रणव का अर्थ कहता हूँ । प्रकृति द्वारा प्रकट सब संसार से तरने के लिए नौका रूप होने के कारण यह प्रणव है अथवा 'प्र' से प्रपंच 'न' से नहीं और 'व' से तुममें अर्थात् आत्मा में प्रपंच नहीं है । यह अर्थ समझो अथवा प्रकृष्टता से जप करने वाले को मोक्ष दाता होने से इसे प्रणव कहा गया है । अपने जप करने वाले जाप को तथा मन्त्र पूजकों के कर्मों को क्षीण करके दिव्य ज्ञान देने वाला होने से इसे प्रणव कहा गया । माया रहित होने से प्रणव नूतन भी कहलाता है । प्रकृष्टता से यह महात्मा और नवीन स्वरूप वाला देता है तथा नवीन कर देने वाला होने से पण्डितजन इसे प्रणव कहते हैं ।

ब्रह्मादिस्थावनान्तानां सर्वेषा प्राणिनां खलु ।
प्राणः प्रणव एवायं तस्मात्प्रणव इरितः ॥

ब्रह्मा से लेकर स्थावर पर्यन्त यह सम्पूर्ण प्राणियों का प्राण होता है इसी से इसका नाम 'प्रणव' यह होता है ।

योग दर्शन में ईश्वर के स्वरूप की चर्चा करते हुए 'तस्य वाचकः प्रणवः' (पाद १।२७) कहकर बताया गया कि 'प्रणव, ईश्वर का वाचक (बोध कराने वाला नाम) है । भोजवृत्ति के अनुसार 'प्रकर्षेण तूयते स्तूयतेऽनेनेति, स्तौति वा प्रणव ओंकारः' प्रकर्ष के साथ जिसकी स्तुति की जाती है, जिसके प्रति मृदुता का पूज्य भाव रहता है, वह ओंकार ही प्रणव है । श्री नागेश भट्ट के अनुसार त्रिमात्रा (प्लुत सहित) ओ३म् को ही 'प्रणव' कहते हैं ।

शास्त्रों में ईश्वर के अनेकों नाम कहे गये हैं और भाषाओं तथा देशों में ईश्वर के अनेक नाम लिये जाते हैं, परन्तु मूल प्रकृति और ईश्वर का जिस स्थान पर सम्बन्ध है, वहाँ से एक अनाहत ध्वनि

ॐ निरन्तर निकलती रहती है। वह ध्वनि ही मूल ऊर्जा है। वही विद्युत् चुम्बक आदि अनेक रूपों में वर्तित होकर संसार का सृजन, संचालन और संहरण करती हैं। संसार के सभी कार्यकलाप उसी में हैं उसी से अनुप्राणित हैं इस स्वयं निःसृत अनादि ध्वनि को योगी लोग समाधि में सुनते हैं और ब्रह्मानन्द का आस्वादन करते हुएं आत्म-विभोर से रहते हैं। स्तुति-योग इसी दिव्य ध्वनि को प्रणव या ॐ कहते हैं। ईश्वर का स्वयं घोषित अपना नाम है। ध्यानरूपी वैज्ञानिक प्रयोग द्वारा स्वयं सिद्ध ब्रह्म हैं। इसी से त्रिगुणाकार स्रष्टार हंस के रूप में स्मरण किया गया—

अक्षरं त्रिगुणाकारं, सर्वाक्षरमयं शुभम्।
त्र्यवर्णं प्रणवं हंसं, स्रष्टारं परमेश्वरम्॥

ॐ अविनाशी, त्रिगुणात्मक सभी अक्षरों ध्वनियों में ओतप्रोत शुभ, त्रयवर्ण रूप प्रणव है। वही हंस (आत्मा) है। वही सृष्टि को रचने परमेश्वर है।

स्तवन-योग है उसी से, 'प्रणव' कहाता ओम्।
प्राण-प्रवाह है परमगति, ज्योति रूप है सोम॥

प्रणव की उपासना (पास बैठना) सूक्ष्म शरीर को अगोचर प्राण-प्रवाह से प्लावित करके मल, आवरण और विक्षेप का निर्हरण करती है। फलतः साधक की बुद्धि सूक्ष्मग्रही बनती है, कामनायें और आस्थायें उत्कृष्ट और सप्राण होती हैं। आप से आप योग-क्षेम का वाहन होता है। जीवन आनन्दमय हो जाता है।

युञ्जीत प्रणवे चेतः, प्रणवो ब्रह्म-निर्भयम्।
प्रणवे नित्ययुक्तस्य, न भयं विद्यते क्वचित्॥

प्रणव ही निर्भय ब्रह्म है, अर्थात् प्रणव ही समस्त भयों को दूर करने वाला है, जीव को निर्भय बनाने वाला है। मन के साथ उसी का ध्यान करना चाहिए। प्रणव में चित्त लगाने वाले को कभी कोई भय नहीं होता है।'

प्रणवं हृदीश्वरं विद्यात्सर्वस्य हृदि संस्थितम् ।
सर्व व्यापिनमोंकारं मत्वा धीरो न शोचति ।।

सब प्राणियों के हृदय में स्थिति सर्वव्यापी ईश्वर ही निश्चित रूप से प्रणव हैं। इसको आकाशवत् सर्वव्यापक अनुभव ही धीर पुरुष (शुद्ध उपासक) कोई चिन्ता नहीं करता, कभी दुःख नहीं होता।

प्रणव रूप संसार है वही आदि-अवसान ।
हो सबके प्रति प्रेम अति, तभी प्रणव का ज्ञान ।।

जो सारे संसार को प्रणवमय देखता है, सबसे अति आत्मीयता का व्यवहार रखता है, उसी ने प्रणव को स्वानुभव से जाना है, ऐसा समझना चाहिए।

गायत्री मन्त्र में प्रणव की परिभाषा देते हुए भगवान् शङ्कर कहते हैं—

प्रकृष्टनूतनो वर्णो, नित्यनूतन विग्रहः ।

अर्थात् 'प्र'—अत्यन्त नव-नवीन। नित्य नवीन शरीर धारी ॐ रूप ब्रह्मा ही प्रणव है। ईश्वर जिस प्रकार देश-निरपेक्ष है, किसी देश, स्थान, वस्तु प्रभृति से अबाधित नहीं है, हर समय हर स्थान पर उपस्थित है, उसी प्रकार वह काल-निरपेक्ष भी है। वह काल द्वारा बाधित नहीं है। ऐसा नहीं है कि काल में था, किसी काल में नही रहेगा। वह भूत, वर्तमान और भविष्यत् का निर्माता है और इससे सर्वथा परे (अलग) भी है। वह कालातीत है वह काल (समय) का भी काल (यमराज) है। सर्व पुरातन होकर भी वह नित्य नवीन है। उसे बुढ़ापा अथवा बुढ़ापे जन्य शिथिलता नहीं सताती है। उसकी माधुर्यमयी मोहकता चिर नवीन है। उसका स्वभाव जीर्णता को जानता ही नहीं है। इसलिये उसे प्रणव (अत्यन्त नूतन) कहा जाता है। जीर्णता (जरा) रहित निर्विकारता ही उसकी मनोमुग्धकारी प्रणवता है। अतिशत, प्रेम, वात्सल्य, करुणा, उदारता, सदाशयता, सहृदयता,

और अहेतुक कृपालुता की प्रतिमूर्ति ही प्रणव है। वह पावनतम प्रवाह है, जिसमें अलौकिक सत्य है, इसी से वह प्रणव है।

संक्षिप्त में यह प्रणव का शास्त्रोक्त व्याख्या है।

ओंकार और प्रणव में थोड़ा अन्तर है जो इस प्रकार समझना चाहिए। प्रणव ध्वनि को केवल चित्त-वृत्ति का निरोध करके ही सुना जाना सम्भव है। ओंकार उसी ध्वनि का गौण रूप से बोलना मात्र है। इस तरह से ओंकार को प्रणव का स्थूल रूप मानना चाहिए। ओंकार को त्रिवर्णात्मक सगुण ब्रह्म की संज्ञा दे सकते हैं और प्रणव को निर्गुण ब्रह्म की।

ओंकार के उन्नीस अर्थ

ॐ शब्द 'आप्लृ' व्याप्तौ और 'अव' रक्षणे धातु से सिद्ध होता है। 'आप्लृ' धातु से निर्मित ॐ का अर्थ सर्वव्यापी होता है और 'अव' धातु से निर्मित ॐ का अर्थ संसार सागर से रक्षा करने वाला होता है। 'अव' धातु में मन् प्रत्यय होता है। 'अव्रतेष्टिलोप,' इस उणादि के सूत्र से 'टि' का लोप होता है। अव+म् ऐसी अवस्था में ज्वर स्वर० इत्यादि कृदन्त व सूत्र से 'व' का उढ़ होता है। तब अ+ऊ+म् ऐसी अवस्था हो जाती है। तदन्तर आद्गुणः सूत्र से गुण होकर ॐ सिद्ध होता है।

धातु-पाठ में जितने अधिक अर्थ 'अव' धातु के हैं, उतने किसी और धातु के नहीं। यथा—अव— रक्षण, गति, कान्ति, प्रीति, तृप्ति अवगम, प्रवेश, स्वाम्यर्थ, याचन-क्रिया, इच्छा, दीप्ति, अवाप्ति आलिंग, हिंसा, भोग और वृद्धि।

'अव' धातु के इन उन्नीस अर्थों के अनुसार ॐ शब्द के १६ अर्थ किये गये हैं। पाठकों के मनस्तल पर ॐ की विशद कल्पना सुस्पष्ट करने की दृष्टि से नीचे ॐ के विविध अर्थों पर विचार किया जा रहा है।

(१) रक्षण

'अव' रक्षण के अनुसार संसार-सागरात् रक्षतीति ॐ। 'ॐ' संसार रूप सागर में डूबते हुए जीवों की रक्षा करने वाला है भवसागर से पार लगाने वाला है।

(२) गति

इस अर्थ के अनुसार ॐ रूप ब्रह्म सर्वगत है। सर्वत्र व्याप्त है। वह परम गति रूप है, परा प्रकम्पन (एब्सोल्यूट वाइब्रेशन) है। सब कालो में सब जगह होने से सर्वज्ञ है। सब कुछ जानने वाला है। विश्व मर्यादा को ज्ञान पूर्वक चलाने के लिये वह सर्वत्र गतिशील है। वह नित्य कर्ममय है। कभी आलस्य-प्रमाद या आनाकानी नहीं करता। किम्बहुना गति ही चेतना है। गति ही जीवन है। वही ॐ का यथार्थ 'दर्शन' (स्वभाव) है।

(३) कान्ति

ॐ से ही यह विश्व प्रकाशमान है। वह परम सुन्दर है। रूप, दृश्य भाव, ज्ञान और प्रकृति का सौन्दर्य जो भी जहाँ हम अनुभव करते है, वहाँ ॐ ही कान्तिमान हो रहा है। पक्षियों के कलरव में सरिता के कल-कल में पत्ती-पत्ती में, गंध भरे रंगीन पुष्पों में भक्तजन उसी की मनोहारिणी छटा देख-देखकर आत्म विभोर हो जाते हैं।

(४) प्रीति

ॐ रूप परमात्मा परम प्रेममय हैं। प्रकृत मधुर हैं। परम प्रेमास्पद हैं। वह सर्व प्रेम करने वाले होने के नाते "सर्वसुहृद्" कहलाते हैं। गीता में ॐ के प्रति युक्त स्वभाव का वर्णन करते हुए भगवान्

कृष्ण कहते हैं जो उसे सर्वसुहृद ऐसा जान लेता है, वह परमशान्ति को प्राप्त हो जाता है ॐ की सर्व सुहृदयता पर विश्वास रखने वाला व्यक्ति जीवमात्र के प्रति मैत्री भाव अपने में विकसित करता हैं। सबके प्रति प्रीति, आत्मीयता, सद्भावना और उत्कृष्ट भाव रखने के कारण उसे सब ओर प्रेम और शुभकामना की प्राप्ति होती है। अतएव स्पष्ट है कि ॐ की प्रीति को सर्व-सहृदया समझने वाला व्यक्ति परम शान्ति को प्राप्त करता है।

(५) तृप्ति

ॐ तृप्ति रूप है। भक्तों को तुष्टि-पुष्टि और परितृप्ति देने वाला है। ॐ का जप आत्मा की क्षुधा को शान्त करता है ॐ की रसानुभूति सन्तोष ही नहीं मादन मस्ती भी लाती है। श्रद्धालु को प्रमुदित रखती है।

(६) अवगम

सर्व अवगच्छीति ॐ है। ॐ समस्त प्राणियों के मनोभावों का जानने वाला है। उससे कुछ भी छिपा नहीं है। उससे कुछ छिपाया नहीं जा सकता है। ॐ की सर्वज्ञता, पर विश्वास करने वाला निष्पाप हो जाता है। ऐसे निर्मल अन्त करण वाले व्यक्ति को अदृश्य दर्शन, दूराभास दिव्य प्रतीतियाँ अनायास होने लगती हैं। ॐ की अवगम्यता से वह भी अवगत बन जाता है ऐसा तत्ववेत्ता ऋषियों का कहना है।

(७) प्रवेश

अवति सूक्ष्मत्वात्प्रविशतीति ॐ। ॐ अत्यन्त सूक्ष्म है। सबमें प्रवेश करने वाला है। ध्यान करने पर उसकी सात्विकता उपासक के अणु-अणु में, कोश-कोश में सहज ही अनुप्रविष्ट हो जाती है। उसके जीवन में ईश्वर ऊर्जा का अवतरण हो जाता है, जिससे वह स्वभावतः दिया बन जाता है।

८. श्रवण

अवति—सर्वं शृणोतीति ॐ। ॐ सर्वश्रोत्र है। श्रुति में उसे सहस्र श्रवण कहा गया है। वह गुप्त विषय को, ध्वनि को भी सुन लेता है। गोस्वामी तुलसीदास के शब्दों में वह 'बिनु पद चले सुने बिनु काना' है।

९. स्वाम्यर्थ

अवति—आधिपत्यं करोतीति ॐ। समस्त चराचर जगत् का स्वामी होने से ॐ महासम्राट् रूप है। वह सारे जगत् पर शासन करता है, न्याय व्यवस्था करता है सन्त मलूकदास के शब्दों में वह अगोचर ब्रह्म, सबका अधिपति है झीने झरोखे में बैठा हुआ है। सबका मुजरा ले रहा है। जैसी तिसकी चाकरी (करनी) है, वैसा उसको दे रहा है। वह न्यायाधिराज है।

१०. याचन

ॐ परम निधान है, परम धाम है। उपसकों की याचना को हम कौशल से पूर्ण करता है, जिससे अभाव की आवश्यक पूर्ति के साथ ही याचकता (याचकवृत्ति) भी समाप्त हो जाती है। वह समस्त एश्वर्यों के साथ ही साथ निष्कामता को भी देने वाला है। स्वयं किसी से कुछ नहीं माँगता, किसी से किसी की अपेक्षा नहीं करता। फिर भी सदाव्रती है। अपने प्रेमी याचकों की सर्वतोभावेन सहायता करता है।

११. इच्छा शक्ति

अवति संसार चक्रं चालयतीति ॐ। इस क्रियात्मक (गतिशील) संसार का निर्माता होने से ॐ समस्त क्रियाओं का संचालक है। नदी के जल-प्रवाह के समान अनादिकाल से प्रवाहमान् यह घटनाओं का क्रम-क्रम उत्थान-पतन उसी से परिचालित है और अनन्त काल तक उसी से प्रवर्तमान रहेगा। घटना-प्रवाह रूप संसृति का वही सूत्र वाहक है।

१२. इच्छायाम्

अवति—इच्छातीति ॐ। स्वयं इच्छा रहित होने पर भी ॐ समस्त में शुभ कामनाओं का प्रकाश है। निम्न गामिनी इच्छायें त्रिगुणात्मक प्रकृति के आकर्षणों से उत्पन्न होती हैं। उच्चस्तरीय जीवन की उत्कृष्ट उत्कण्ठायें ॐ के नित्य सम्पर्क से उपासक के हृदयतल पर आपसे आप स्फुरित होती हुई उसके जीवन को आकर्षित करती हैं। ॐ की उपासना का यही मधुरिम फल है। रुचियों का संस्कार होता है, उच्चता का संसार होता है।

१३. दीप्ति

अवति—दीप्यतीति ॐ ज्ञान स्वरूप होने के कारण, भर्गोज्योति होने से ॐ अज्ञानान्धकार का नाश करने वाला है। ज्ञान-विवेक, सूझ-बूझ, दूरदर्शिता और समझदारी जानने-बढ़ाने वाला है। ॐ की उपासना से अन्धविश्वास काफूर हो जाते हैं, मूढ़ मान्यतायें नष्ट हो जाती हैं। आत्म-प्रज्ञा या ऋतम्भरा बुद्धि विकसित होती है। सूक्ष्म रहस्यों को समझने की, ग्रहण करने की, सूक्ष्म शक्तियों को अपने में साधारण करने की, क्षमता बढ़ती है। प्रत्युत्पन्न-मति की दीप्ति ॐ की उपासना से सम्भव है।

१४. अवाप्ति

अवति—प्रदर्शयतीति ॐ। निश्चय ही ॐ अणु-अणु व्यापी होने से अगोचर है, फिर भी वह पवित्र अन्तःकरण वाले साधकों के प्रति अपने को उनके भावानुकूल प्रदर्शित करता है। दर्शनाभिलाषी उपासकों को अपना साक्षात्कार कराता है, अपना दुर्लभ दर्शन देकर इन्हें कृतकृत्य करता है।

१५. आलिंगन

अवति—आलिंगतीति। ॐ अपने उपासकों को आश्लेषित

करता है, मधुर-मधुर भावों के साथ प्रेमी भक्तों का आलिंगन करता है। जिस प्रकार कथित शिशु को माता चूमती-चुमकारती और छाती से लगाती है, उसी प्रकार भव-संसृति के त्रय-तापों से दग्ध-दुःखी प्राणियों के पास दौड़कर आता है, उनकी व्यथा को दूर करता है। उनको चूमता-चाटता और छाती से लगाता है अपने स्नेह से उनके हृदयों को सिक्त करता है।

१६. 'अव' हिंसायाम्

अवति-हिंसतीत ॐ। ॐ परम स्निग्ध होते हुए भी एक दृष्टि से परम क्रूर भी है। हिंसा प्रेमी भी है। दुष्टात्माओं के प्रति वह सदैव हिंसालु रहता है। धुराचारियों, पापियों-पामरों के प्रति उसका हिंसक होना उचित भी है। डाक्टर फोड़े के सड़ने पर जिस प्रकार अंग-विच्छेद कर बड़ी क्रूरता के साथ उच्छेदन कर देता है, वह रोगी के रोने-धोने को, चीख-पुकार को नहीं सुनता। उनका ऐसा करना परोक्ष रूप में व्याधित को व्याधि मुक्त करता ही है। सो, उसी प्रकार पाप के प्रतिकार के लिए, पाप प्रवृत्ति के नाश के लिए ॐ का हिंस्र होना भी लाभकारी है। ॐ के उपासक को अपने इष्ट के स्वभाव की इस विशेषता को समझ कर प्रयत्न पूर्वक पापकर्म से बचना चाहिए तभी वह कोप का पात्र न बनकर ॐ का कृपा-भाजन बनेगा।

१७. 'अव' दाने

अवति-ददातीति ॐ। ॐ दयालु है। दानशील है। पात्र की योग्यता आवश्यकता के अनुसार वह उन्हें सुखदायक पदार्थ ही नहीं देता, उनको उपयोग में लाने की सुबुद्धि भी प्रदान करता है।

१८. भोग

लीन करोतीति ॐ। 'अव' धातु का अर्थ लय करना भी है। प्रलय के समय ॐ ही समस्त स्थूल जगत् को अपने अदृश्य रूप में लीन कर लेता है। सृष्टि का आदिकर्ता, संचालक और व्यवस्थापक

होने के साथ ही साथ सृष्टि-संहार करने की अद्भुत क्षमता वाला ॐ है। इसी से उसे 'प्रलयंकर' कहते हैं।

१६. वृद्धि

अत्रति-वर्द्धयतीति ॐ। सृष्टि के महत्तत्व में परिवर्तन करना, स्थूल जगत् का सूक्ष्मीकरण करना, सूक्ष्मभाव में बदलना योग कहलाता है। उसी प्रकार सूक्ष्मभाव से स्थूलभाव में रूपान्तरित करना 'वृद्धि' कहलाता है। सृष्टि के रचनाकाल में वह महत्तत्व सूक्ष्मता) में लीन प्रकृति के सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्वों की क्रम से स्थूल बनाता है। स्थूलीकरण या सृष्टिकरण से सृष्टि का उदय होता है। संसृति के विस्तार होता है, समष्टि के समान ही व्यष्टि, ओ३म् व्यष्टि का भी उत्तरोत्तर विकास करता है। व्यक्ति को क्रम क्रम से उत्कर्ष के उच्चतर स्तरो पर प्रतिष्ठित करता है। यही वृद्धि का ॐ परम अर्थ है।

उपयोगिता

ॐ के उपर्युक्त अर्थ परब्रह्म की अनेक विशेषताओं के सूचक है। उसके गुण, स्वभाव और रूप यत्किंचित स्पष्ट होते हैं। इन गुणों पर विचार करने से, मनन-निदिध्यासान करने से ब्रह्म के स्वरूप की, उसकी रुचि-प्रकृति की कल्पना की जा सकती है। मनस्तल पर उसका भाव चित्र बनाया जा सकता है। ॐ का जाप करते समय उपासक यदि इस प्रकार के भाव-चित्रों पर ध्यान केन्द्रित करे तो उस के अन्दर परमात्मा से भव्य गुणों का अवतरण होगा।

मन ही मन ॐ का भाव-चित्र बनाते हुए जो जप किया जाता है, उसे भावभरी उपासना कहते हैं। भावभरी भक्ति ही आशुफलदायिनी है। भाव-उपासना से साधक के अन्दर इन १६ गुणों का विकास होता है। पहले उसके भावों में परिवर्तन आता है। उसके अन्तर का संस्कार होता है। कुवासनायें मिटती हैं। सत्संस्कारों की वृद्धि होने से उत्कृष्ट लक्ष्य के प्रति ललक बढ़ती है। आन्तरिक क्षमतायें बढ़ती हैं कुशलता

आती हैं। जीवन आनन्द से भर जाता है। योग-क्षेम का वहन, अभावों का नाश सम्पूर्ण जीवन को रसमय बना देता।

संस्कृत व्याकरण के अनुसार ॐ अव्यय शब्द है उसके रूप नहीं चलते। वह अलिंगी हैं।

ॐ अव्यय व अलौकिक है

ईश्वर वाचक जितने शब्द हैं ये सभी सलिंगी हैं कोई शब्द स्त्रीलिंग हैं तो कोई पुलिंग या नपुंसकलिंग। ईश्वर के अदिति, भूमि आदि वैदिक नाम स्त्रीलिंग वाची है। इन्द्र, वरुण, आदित्य आदि पुल्लिग हैं। ब्रह्मन् विश्वात्मन् जैसे ईश्वर वाचक शब्द नपुंसक लिंग के अन्तर्गत आते हैं ये सभी शब्द विकार युक्त हैं। इन सबके रूप आठों विभक्तियों (कारणों) में चलते हैं। फलतः इनके रूपों में परिवर्तन होना रहता है। किन्तु ओ३म् के साथ ऐसा नहीं है। सर्वथा शुद्ध-बुद्ध हैं। सब स्थानों पर तीनों कालों में समरस है, एक रूप है। सर्वतः अपरिवर्तनशील है।

अरूप ही नहीं ॐ अलिंग भी हैं, अलिंग का अर्थ लक्षण, चिह्न प्रतीत और पहिचान के होते हैं। ॐ का स्वरूप कल्पनीय है, उसका कोई चिह्न नहीं प्रतीत होता।

निश्चय ही ॐ की उपासना सद्य कल्याणप्रद है। ॐ जिन अर्थों का बीज है, उन अर्थों की, गुणों की आदर्शों की स्फुरणा साधक की अन्तःभूमि में होती है। गति के साथ-साथ शक्ति भी प्राप्त होती हैं। उमंग उत्साह, अन्तःस्फूर्ति और उत्साह पुरुषार्थ को प्राणवान बनाता है। फलस्वरूप आध्यात्मिक साधना का मार्ग सुगम हो जाता है। भय संशय का परिहार होता है। विघ्न बाधायें चूर-२ होती चलती हैं। ॐ की उपर्युक्त १९ शिक्षायें यदि साधक के मन पर जम जाय तो उसका कल्याण होने में देर नहीं लगती यह निश्चय है।

व्यष्टि के विकास के लिए ही नहीं समष्टि के विकास के लिए भी ॐ के ये अर्थ नीति-निर्धारक सूत्र के रूप में बड़े उपयोगी हैं। सामाजिक कार्यकर्त्ता उनसे यथेष्ट शिक्षा और प्रेरणा ले सकते हैं। यदि हमारा सामाजिक जीवन ॐ की उक्त भावना से भावित हो जाय तो द्वेष, संघर्ष, युद्ध, अभाव जोर अशान्ति का नाश होकर भूतल पर ही स्वर्ग अवतरित किया जा सकता है। वह विशेष ब्रह्म हैं। अव्यय होने से उसे ऐसा पूर्ण कहा गया है, जिससे आराधक सात्विकता, प्राण ऊर्जा प्रभृति पूर्ण मात्रा में आकर्षित करता है, फिर भी उसकी पूर्णता में न्यूनता नहीं आने पाती। इसी से उसके विषय में यह प्रसिद्ध है—

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुच्यते।
पूणस्य पूर्णमादाय, पूर्ण मेवावशिष्यते॥

अर्थात् 'वह ॐ परब्रह्म सब प्रकार से पूर्ण है। इससे निर्मित यह जगत् भी पूर्ण है क्योंकि उस पूर्ण परमात्मा से ही यह पूर्ण उत्पन्न हुआ हैं। उस पूर्ण (जगत्) को निकाल लेने पर भी वह पूर्ण हीं रहता है। उसकी पूर्णता में कोई कमी नहीं आती ऐसी विलक्षण ॐ की पूर्णता है।

ॐ में सापेक्षता का भाव नहीं वह सर्वनिरपेक्ष है। सर्वभावमय है। उसमें कोई अभाव नहीं है। भगवान् के अन्य नाम ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य अर्थ के सूचक भी हैं। अतः उसमें लौकिकता है किन्तु ॐ सर्वथा अलौकिक है। यही ओ३म् की अव्ययता है।

———

ओंकार की शब्द योजना का तत्व दर्शन

ओ३म् शब्द और वर्णमाला

संस्कृत और देवनागरी वर्णमाला का विकास वाणी संस्थान के सूक्ष्मतम अवयवों के आधार पर किया गया है। उनका अपना सूक्ष्म विज्ञान है। शिशु जब जन्म लेता है, तो अबोध के मुँह से अनायास ही ध्वनि निःसृत होती है, यह स्वर मूलक होती है।

संस्कृत में अ, इ, उ, ऋ और लृ ये ही पाँच ह्रस्व स्वर हैं। ये ही मूल स्वर हैं। इनमें ही स्वर अक्षर मिलकर ए, ऐ, ओ, औ आदि बन गये हैं। अ+इ मिलकर 'ए' स्वर बना है और अ+ए मिलकर 'ऐ' बना है। इसी प्रकार अ+उ से 'ओ' और अ+ओ से मिलकर 'और' बना है। इससे 'अ' की प्रधानता है।

ॐ शब्द में भी 'अ' ही प्रधान है। वही पहला अक्षर है। 'अ' अविनाशी है, सर्वव्यापक है। 'अ' के बिना कोई व्यंजन शुद्ध बोला नहीं जा सकता। शुद्ध और स्पष्ट उच्चारण के लिए प्रत्येक व्यंजन 'अ' की अपेक्षा रखता है सो इससे भी 'अ' का महत्व 'अ' की प्रतिष्ठा और उपयोगिता स्पष्ट परिलक्षित होती है। परन्तु ध्यान रहे 'अ' तो वैखरी वाणी है। 'अ' तो ब्रह्म का स्थूल रूप है। चिन्मय विग्रह है। 'अ' का अचिन्त्य स्वरूप अनाहत परा-पश्यन्ति रूप भी है। अतः 'अ' की श्रेष्ठता का प्रतिपादन मूलतः उसकी श्रेष्ठता का प्रतिपादन है।

पाँच अक्षरों के मध्य का अक्षर 'उ' है। ॐ में भी मध्य का अक्षर 'उ' है। अ और उ मिलकर ही 'ओ' हुआ है। 'ओ' ध्वनि

आश्चर्य सूचक है, आह्लादकारी भी है सो ॐ का क्रियाकलाप भी, ॐ का विज्ञान भी बड़ा विस्मयकारी है। गीता (२।२६) में कहा गया है—

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वद ति सैव चान्य: ।
आश्चर्यवच्चैनमन्य: शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्।

अर्थात् वह परमात्मा बड़ा विलक्षण है। उसे देखने वाला, उसके सम्बन्ध में चिन्तन-मनन और विचार करने वाला व्यक्ति आश्चर्यान्वित होजाता है। ज्यों-ज्यों वह उसके सम्बन्ध में समझता जाता है, त्यों-त्यों विस्मय-बढ़ता जाता है। उसका वर्णन, उनके स्वरूप की चर्चा भी वह चकित हुआ-सा करता है। उसके रहस्य प्रभाव और गतिविधि के सम्बन्ध में सुनता हुआ पुरुष भी अद्भूतता का ही बोध करता है तथ्यत: ब्रह्म-विभुग्धकारी विस्मय के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। 'ॐ' से इसी बात की सम्पुष्टि होती हैं।

ॐ का अन्तिम वर्ण 'म्' है। जिसके अनेक अर्थ हैं। भाषा की दृष्टि से विचार करे तो हमें पता लगेगा कि भाषा में भी इसका अपना एक विशिष्ट स्थान है। सभी व्यंजनों को पाँच वर्गों में क वर्ग' च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग और प वर्ग में संगठित किया है। इन पाँचों वर्गों में अन्तिम अक्षर मकार ही है। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं है। ऋषियों ने जान-बूझकर ऐसा अक्षर क्रम नियम किया है। उन्होंने ॐ के अनुसार ही अपनी अक्षर माला को बनाया है।

संस्कृत भाषा में प्रसिद्ध सूत्र मोऽनुस्वार: (अष्टध्यायी ८।३।२३) के अनुसार 'म' के स्थान पर प्रात: अनुस्वार हो जाता है। अनुस्वार हो जाने पर यह मकार सब अक्षरों के सिर पर चढ़ जाता है इससे सिद्ध हुआ कि मकार सब अक्षरों में प्रबल है सो 'म' वाची माया की प्रबलता सर्व विदित है।

'म' का यह अनुस्वार ही तन्त्र में बिन्दु कहलाता है। सभी तान्त्रिक मन्त्र बिन्दु युक्त अर्थात् अनुस्वार युक्त ही होते हैं। जैसे—

ह्रीं, श्रीं, क्रीं, क्लीं, अं, खं, घं, आं, इं, पों, फों, बों, भों, मों, इत्यादि।

यह मकार बिन्दु ही तान्त्रिक मन्त्रों का बिन्दु है। तान्त्रिक साधनायें ऋद्धि-सिद्ध की साधनायें हैं। तन्त्र में सर्वत्र ही मात्रा की विशेपता हैं। यही कारण है कि वे 'म' को नीचे सहीं रखना चाहते। ओ३म् सम्पूर्ण साधना है। सर्वाङ्ग-साधना है। तान्त्रिक साधना के समान वह मात्र लौकिक नहीं है, एकांगी नहीं है। ॐ उपासना जीवन की समग्रता को लेकर चलती है। इसीलिए वह समग्रता की उपासना कहलाती है। ॐ की उपासना से लोक के साथ-साथ परलोक भी सुधरता है। यान्त्रिक साधनाओं से पारलौकिक लाभ उतना नहीं होता। इसी दृष्टि से विज्ञ ऋषियों ने प्रधानता के क्रम से 'म' को अन्त में रखना ही उचित समझा। हमें भी इस बोध का अनुसरण करना चाहिए।

ओ३म् शब्द का प्लुत-उच्चारण

जय जप आदि में वेद मन्त्र का प्रयोग करते समय प्रत्येक मन्त्र का आदि में ॐ लगाने का शास्त्रों में स्पष्ट विधान है। कतिपय मन्त्रों की साधना ॐ के पुट द्वारा की जाती है। अर्थात् मन्त्र के आदि और अन्त में ॐ का उच्चारण किया जाता है। ऋष्यादि न्यास, पद न्यास, अक्षर न्यासादि में ॐ का विशेष महत्व है। गायत्री मन्त्र की उच्चस्तरीय विशेष साधना में प्रत्येक व्याहृति के साथ ॐ का वाचन, ॐ का सम्पुट लगाया जाता है। महामृत्युञ्जयादि मन्त्रों की साधनाओं का सम्पादन भी इसी रीति से किया जाता है।

यही नहीं महर्षि पाणिनि कहते हैं कि जब वैदिक मन्त्र यज्ञ में

पढ़े जायें तो जहाँ-जहाँ मन्त्र में टि' आया हो, वहाँ-वहाँ ॐ शब्द का पाठ किया जाय। अष्टाध्यायी के प्रसिद्ध सूत्र 'प्रणवेन्टेः' (८।२।८९) के अनुसार 'टी' के स्थान पर 'ॐ' शब्द का आदेश व्याकरण के नियम से होता है। ऐसा न करना दोषपूर्ण माना गया है।

मनुस्मृति के अनुसार तो प्रत्येक वेद मन्त्र के आदि और अन्त में ॐ का वाचन अनिवार्य रूप से करने का आदेश है जो ब्रह्मचारी मन्त्र के प्रारम्भ में ॐ का उच्चारण नहीं करता, उसे वेद पाठ का पुण्यफल नही मिलता है। इसी प्रकार जो वटु मन्त्र के अन्त में ॐ का वाचन नहीं करता, वह विनाश को प्राप्त होता है—

ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा।
स्रवत्यनों कृतं पूर्वं परस्ताच्च विशीर्यते ॥

शास्त्रों में यह भी बताया गया है कि ॐ शब्द का प्लुत' उच्चारण किया जाना चाहिए। प्लुत' का अर्थ त्रिमात्रा है। 'प्लुत' तीन मात्रा का होता है। इसीलिये ॐ पद को लिखते समय 'ओ' के आगे 'प्लुत' के संकेत के रूप में तीन का अङ्क लिखा जाता है। ॐ का उच्चारण करते समय 'औं' की ध्वनि त्रिवार अर्थात् उच्च और तीव्र करनी चाहिए। मन्द स्वर या अस्पष्ट उच्चारण से यथेष्ट लाभ नहीं होता। अति गमनशील वेगवान् मन को निग्रह करने के लिए ही 'प्लुत'—स्पन्दन की अपेक्षा है इससे वात संस्थान (नाड़ी समुदाय) सजग हो जाता है, चैतन्य हो जाता है। एकाग्रता आती है। ब्रह्म वर्चस्व का आधान या आचूषण (एक्सापंजन) होता है। ध्यान प्रगल्भ बनाता है। अतएव शरीर क्रियाशास्त्र, मनोविज्ञान और योग विज्ञान की दृष्टि से भी ॐ के 'प्लुत' उच्चारण का बड़ा महत्व है।

शुद्धता से शुद्धता आती है। श्री नागेश ने कहा है कि प्रणव प्लुत जप ही शुद्ध है। इससे आन्तरिक शुचिता आती है। भावलोक

प्रशस्त होता है। येन केन प्रकारेण ॐ का जप करने से उतना लाभ नहीं होता, जितना प्लुत युक्त शुद्ध उच्चारण का होता है। मन्द स्वर से उपांशु जप किया जाता है। इस उपांशु जप में भी प्लुत पर यथेष्ट ध्यान दिया जा सकता है। प्लुत के लिए जोर से (तार स्वर से) जाप किया जाए, यह आवश्यक नहीं है। तार स्वर से किया जाने वाला उच्चारण 'कीर्तन' की श्रेणी में आता है। कीर्तन का अपना महत्व है, जप स्मरण का अपना। मानसिक जप में भी प्लुत पर उचित बल दिया जाना सर्वथा सम्भव है।

प्लुत का गूढार्थ

वस्तुत ॐ चिन्मय है। जड़ न होकर स्वयं चैतन्य है। 'ओ' पर प्लुत लगाने का अर्थ यही है कि ब्रह्म ही सर्व पर है। सबसे बड़ा है, सर्वोपरि है, सर्वेश है। 'प्लुत' उसकी महानता (ब्रह्मता), प्रभुविष्णुता, सर्व व्यापकता और सर्वोत्कृष्टता का द्योतक है। वह सर्वप्रधान है, यही 'प्लुत' तार स्वर से निनादित करता है। ॐ के जापक को यह रहस्य भली-भाँति हृदयङ्गम कर लेना चाहिए। उसे टोने-टुटकों, भूत प्रेत, देवी देवताओं, यन्त्र-तन्त्र की उपेक्षा एकमेव ईश्वर पर ही निष्ठा रखनी चाहिए। उसकी श्रद्धा, उसका ईश्वर-विश्वास दृढ़ होना चाहिए, यही 'प्लुत' का उद्घोष है। जो लोग ईश्वर को छोड़कर अन्यो की उपासना करते हैं, वे जड़-बुद्धि हैं, वे अन्धविश्वासी हैं, उन्होंने 'प्लुत' का रहस्य नहीं समझा है। प्लुत का अर्थ समझने और उसे जीवन में उतारने पर ही उपासना प्राणवान् बनती है। प्राणवान् उपासना की सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करने वाली और आशु सिद्धि-सफलता देने वाली होती है। प्लुत की निष्ठा ही साधना का प्राण है।

'ओ' पर प्लुत या बल भावना की प्रबलता का द्योतक है। प्रायः हमारी उपासना भावपूर्ण नहीं होती। हम वाणी से मन्त्र पढ़ते होते हैं और मन से तरह-तरह की बाते सोचते रहते हैं। ऐसी पूजा भाव शून्य पूजा कहलाती है। भावना के अभाव में वह निष्प्राण है। उससे

अधिक लाभ क्योंकर हो सकता है ? 'प्लुत' कहता है कि हमें अपनी अर्चा-पूजा भाव-पूर्ण बनानी चाहिए। हमें भव्य-भव्य भावों से ईश्वर की पूजा करनी चाहिए।

ओ३म् और त्रिविध प्रकर्ष

ॐ की गुरुता त्रिविध प्रकर्षों में सन्निहित है। 'अ' ऊर्ध्वगामी चुम्बक और 'म' अधोगामो चुम्बक का सूचक है। 'अ' उत्तरी ध्रुव हैं, 'म' दक्षिणी ध्रुव है। 'अ' उत्कर्षण और 'म' अपकर्षण के मध्य संकर्षण चलता है। इन्हीं तीन कर्षणों से पच्चीस हजार मील परिधि वाली और लगभग उन्नीस हजार टन भार वाली हमारी पृथ्वी शून्य आकाश में टिकी हुई है। 'अ' 'उ' 'म' की प्रबलता का इससे बढ़कर उदाहरण और क्या हो सकता है ? ॐ की उपासना करने वाले साधक को ॐ के गुरुत्व पर पूर्ण श्रद्धा रखनी चाहिए, यही 'अ' 'उ' 'म' के तीन प्रकर्षों की शिक्षा है। उसे बार-बार इस तथ्य पर मनन करना चाहिए कि 'अ'उ,म' के उत्कर्षण, संकर्षण और जड़ कर्म नहीं है। स्वत: चैतन्य हैं।

ओ३म् शब्द की रचना और गूढ़ार्थ

ॐ शब्द ब्रह्म का वाचक है। 'तस्य वाचक: प्रणव:' कहकर योग सूत्र के प्रणेता महर्षि पतञ्जलि ने भी इसी तथ्य की ओर संकेत किया है। व्याकरण की दृष्टि से विचार करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि यह पद गूढ़ार्थ है।

अ, उ म और समस्त विद्याएँ

ॐ तीन अक्षरों से मिलकर बना है अ, उ, म संस्कृत व्याकरण के अनुसार प्रत्येक अक्षर. ध्वनि सार्थक है, पूर्ण शब्द है। जड़ शब्द नहीं शब्द ब्रह्म है। जिस प्रकार 'क' अक्षर होते हुए सार्थक शब्द भी है क्योंकि 'क' के अर्थ जल के होते हैं, जिस प्रकार 'ख' अक्षर होते हुये सार्थक शब्द भी है, क्योंकि 'ख' के आकाश के होते हैं, ठीक उसी प्रकार 'अ' स्वर रूप अक्षर होकर भी एक पूर्ण शब्द है और

इसका अर्थ ब्रह्म' है। 'उ' अक्षर भी है और शब्द के रूप में इसका अर्थ 'जीव या आत्मा' होता है। 'म' व्यंजन होने के नाते एक अक्षर है। किन्तु प्रकृतिवाची होने के नाते प्रकृति या माया का अर्थ ध्वनित करने के कारण वह स्वयं में पूर्ण शब्द है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार अ' उ और म के संयोजन से बना ॐ शब्द ईश्वर, जीव और प्रकृति का प्रतिनिधि है। ईश्वर जीव और प्रकृति ही समस्त विद्याओं के मूल विषय हैं। भौतिकशास्त्र, रसायन शास्त्र, पुरातत्व विज्ञान और खगोल विज्ञान में प्रकृति के विविध रूपों की क्रियाकलापों की ही तो चर्चा होती है। ये सभी प्रकृति के साथ हैं। भूगोल, भूगर्भ विज्ञान, कृषि विज्ञान, प्रभृति विज्ञानों में प्रकृति का विश्लेषण किया जाता है। इसी प्रकार इतिहास नागरिकशास्त्र, समाजशास्त्र, जीवविज्ञान, वनस्पति विज्ञान आदि विषयों में जीव और प्रकृति का अध्ययन किया जाता है। मनोविज्ञान (मेटा-फिजिक्स) शुद्ध जीवविज्ञान है। दर्शनशास्त्र जिन्हें अंग्रेजी में फिलासफी' कहते हैं। ईश्वर, जीव और प्रकृति के अध्ययन करते हैं। इस तरह हम देखते हैं कि सब ओर अ, उ, म की प्रभा फैली हुयी है और जितने भी विषय स्कूल, कालेज और विश्वविद्यालयों में पढ़ाये जाते हैं, उनमें अ, उ, म का ही प्रकारान्तर से अध्ययन होता है। हमारा सारा विज्ञान-ज्ञान, क्रिया-व्याहार अ, उ, म का मनन-विश्लेषण है। मनुष्य जाति ने आज तक ज्ञान राशि के रूप में जो कुछ भी अबतक संजोया है, जो कुछ भी अनुसंधान-आविष्कार उसने अब तक किये हैं और भविष्य में भी जिन पर शोध होता रहेगा, वह मूलतः अ, उ, म ही है। इसके अतिरिक्त कुछ नहीं।

'अक्षराणाम् अकारोऽस्मि' सभी अक्षरों (वर्णों) के मध्य में मैं अकार हूँ। इसका सीधा अर्थ यह है कि परमात्मा की विभूति को यदि वर्णों में देखना हो तो उसे 'अ' में देखो। सभी अक्षरों

का यह 'आदि' है। परमात्मा भी सभी का आदि है। 'अ' सर्वथा स्वाधीन अक्षर है। इसका उच्चारण स्वयं सिद्ध है। ,अ' ध्वनि ही मूल ध्वनि है। अपने उच्चारण में इसको किसी सहायक (ध्वनि) की आवश्यकता नहीं है। सो पर ब्रह्म भी सर्वदा स्वाधीन है, स्वयभू है। उसकी विद्यमानता सर्व-निरपेक्ष है।

सभी हल्-व्यंजन अक्षर अपने उच्चारण में पराधीन हैं। जब तक उनके साथ किसी स्वर का योग नहीं होता, तब तक उनके उच्चारण में सरलता नहीं आती है। हलो के उच्चारण करने में स्वर ही सहायक होते हैं। इसी प्रकार नाना नाम रूपात्मक तथा मनोवेद्य यह संसार 'अ' (ब्रह्म) के आश्रय से ही गतिशील हो रहा है। 'अ' ही उसके महाप्राण हैं, प्रेरणा केन्द्र हैं, जीवन स्रोत हैं।

अकार की एक विशेषता यह भी है कि जब किसी हल अक्षर से मिलता है, तब उसकी ध्वनि को स्पष्ट तथा सरल तो बनाता ही है, परन्तु अपने को छिपाए रहता है। स्वयं प्रकाश में नहीं आता श्रोता को 'अ' का भान लहीं होने पाता। यही विशेषता परमेश्वर में स्पष्ट परिलक्षित होती है। उसने अखिल सृष्टि की रचना की है और अपने को छिपाया भी है। वह सबका आधार है, फिर भी अव्यक्त है। वह सबमें ओत-प्रोत हैं, अनुस्यूत है, फिर भी अदृश्य है, अगोचर है। प्रभु की अलौकिकता के साथ 'अ' का अनुपम सहचर है इसीसे उसे पर-ब्रह्म, अत्यन्त सूक्ष्म, परात्पर और सर्वोपरि भी कहते हैं।

परोपकारी पुरुष का भी यह स्वभाव होता है। वह नेकी करके भी अपने को प्रकाश में नहीं आने देता। साधु या सज्जन पुरुष 'अमानी मानदः होते हैं। वे दूसरे को मान देते हैं, दूसरों के कार्य को तो बनाते हैं, किन्तु स्वयं अहंकार नहीं करते। इस तरह हम देखते हैं। कि अकार बड़ा परोपकारी है निरहंकारी है। ब्रह्म भी अहेतुक दयालु, अहमत्व से शून्य है। 'अ' ब्रह्म की कृपालुता, सहज कोमलता, परोंपकारिता पर

ही प्रकाश नहीं डालता, वह उसके ॐ के रूप में समुच्चार हमें भी उस-सा परोपकारी, निरंकारी, सर्वसुहृद और सर्व हितैषी बनने की प्रेरणा देता है।

मात्र प्रकाश रूप पराध्वनि अपने को मध्यमा में क्रमशः स्थूलान्तरित कर अन्तस्थल प्राण वायु के आघात से कण्ठादि स्थानों में होकर जिह्वा के प्रयत्न से वैखरी (श्रव्य गिरा) का रूप धारण करते हैं, तो जिन स्थानों से अक्षरों का उच्चारण होता है, उन सब में प्रथम स्थान कण्ठ ही है। और, जिन अक्षरो को कण्ठ स्थान से बोला जाता है, उन सब में अकार अक्षर है। इससे यह सिद्ध होजाता है कि सृष्टि उपक्रम के समय परमात्मा से जब अक्षरोंच्चारण विद्या का विधान हुआ तो सबसे पूर्व 'अ' की ध्वनि ही होगी। इसी से उसे आदि नाद भी कहते हैं। अतः स्पष्ट ही है कि 'अ' का नित्य सम्बन्ध, 'अ' की हरा-गिरा की साधना है, नादानुसन्धान है। जिसे सुरति-योग, लय योग, नादयोग आदि नामों से पुकारा जाता है, वह वस्तुतः 'अ-योग' ही है

ॐ के अ, उ, म् में 'अ' की ज्येष्ठता का यह विवेचन उसके आदि (प्रारम्भ) में होने के औचित्य को आप प्रकट करता है। 'उ' और 'म्' प्राणिजगत् और प्रकृति-विलास उस 'अ' का अनुगामी हैं, यह भी स्पष्ट ही है। किम्बहुना 'उ'और 'म्' उस 'अ' रूप अचिन्त्य ब्रह्मके व्यक्ति रूप हैं। अतः अ, उ, म्, में परस्पर एकता, एक तारतम्यता, अभेदता और अभिन्नता है। वाष्प, जल और हिम खण्ड के समान ये तीनों ही वस्तु एक ही हैं। यही ॐ का तत्व-दर्शन है। यही उसका गूढ़ रहस्य है।

बुद्धिमान् उपासक को ॐ के इस दिव्य स्वरूप को भली प्रकार बुद्धिगत करके ॐ की उत्कृष्टताओं की उपासना करनी चाहिए। ॐ की उक्त उत्कृष्टताओं का अपने में अवतरण ही उपासना का चरम फल है।

अ, उ, म के अन्य अर्थ

जिस प्रकार सारङ्ग द्विज आदि शब्दों के अनेक अर्थ होते हैं, उसी प्रकार समस्त शब्द (कम्पाउण्ड वर्ड) ॐ के भी अनेक अर्थ हैं। ॐ ही त्रयवेद है, त्रिविद्या है। 'अ' से ऋग्वेद 'उ' से सामवेद 'म्' से यजुर्वेद का वोध होता है। साहित्य की तीन ही विधायें हैं—पद्यात्मक, गद्यात्मक और चम्पू या उभयात्मक। सो पद्यात्मक गद्यात्मक और उभयात्मक तीन प्रकार का जो उत्कृष्ट साहित्य है, वही अपने अर्थ में ऋक्: साम और यजु: कहलाता है। यह सत्यं शिव सुन्दरम् या समस्त साहित्य भी ॐ स्वरूप हैं।

अग्नि भी तीन ही माने गये हैं, यथा—गार्हपत्य, आवहनीय, और दक्षिणाग्नि। यज्ञोपवीत में भी तीन सूत्र होते हैं, जो क्रमशः ऋषि ऋण, देव ऋण और पितृ ऋण शोधन की प्रेरणा मनुष्य मात्र को दिया करते हैं। यह तीनों अग्नियाँ, ये त्रय और यह तीन ऋणों का विवेक अ, उ, म ही है। ॐ से ही इनका उद्‌भव हुआ है और ॐ से ही इनका पर्यवसान है।

शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है—

त्रयो वै देवा:। वसवो रुद्रा, आदित्या:। तेषा विभतानि सवनानि। वसूनामेव प्रात: सवनम्, रुद्राणां माध्यन्दित सवनम्, आदित्यानां तृतीया सवनम्।

(शतपथ ब्राह्मण काण्ड ४)

तीन ही वैदिक देवता हैं—वसु, रुद्र और आदित्य। उनके सवन भी तीन ही हैं। प्रात सवन, माध्यन्दित सवन और तृतीय सवन। प्रातः सवन वसुओं का, मध्याह्न सवन रुद्रगणों का और तृतीय सवन आदित्यों का कहा गया है। ये त्रिवेद और त्रय सवन क्रमशः अ, उ, म ही हैं।

'अ' 'उ' म ही ब्रह्मा विष्णु और महेश नाम से प्रथित पौराणिक देवता है महालक्ष्मी महासरस्वती और महाकाली—ये तीन देवियाँ

या ब्रह्म शक्तियों को अ, उ, म अन्तर्हित किया गया है। ये सभी ॐ से अभिन्न हैं। त्रिपुण्ड, त्रिशूल और त्रिविक्रम भी ॐ ही हैं।

भारतीय धर्मशास्त्र के अनुसार माता पिता और आचार्य ये ही गुरु माने गये हैं। इनको ॐ स्वरूप कहा गया है। समापन संस्कार का वैदिक अनुशासन आचार्य देवो भव, मातृदेवो भव, पितृदेवो भव है। इन तीनों के प्रति ॐ वत् श्रद्धा-भाव रखने की प्रेरणा देता है।

सांख्य शास्त्र में आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक नाम से तीन दुःख माने गये हैं। ये ही 'त्रिविध-दुरित' हैं। इन्हीं से छुटकारा पाने को मोक्ष बताया गया। सो 'अ' 'उ' 'म' ही त्रिताप है और मध्यस्थ 'प्लुत' ध्वनि ही इनको दूर भगाने वाला गम्भीर घोष है। सिंहनाद है।

मनुष्य मात्र को सदैव ध्यान रखना चाहिए कि स्थूल, सूक्ष्म और कारण नाम से तीन शरीर हैं। अ, उ, म से क्रमशः इन त्रिविध शरीरों को अभिहित किया जाता है। मध्य में रहने वाला प्लुत मनुष्य मात्र का ध्यान इन त्रिविध शरीरों के स्वास्थ्य की ओर अनवरत दिलाता है। वह यही उपदेश करता है कि ये शरीर आत्मा के वाहन हैं। जीवन यात्रा के संबल हैं। आत्म देव के मन्दिर के त्रिविध कक्ष हैं। त्रिविध आयाम हैं। इनको इसी दृष्टि से रखा और संवारा जाना चाहिए। यही दृष्टि रखते हुए नित्य नये उत्साह के साथ जीवनी उद्देश्य की पूर्ति में निष्ठावान होना चाहिए।

मोक्ष आत्म विकास, परमात्मा की प्रीति आत्व-साक्षात्कार प्रभृति शब्दों द्वारा जीवन के जिस महान् उद्देश्य की परिकल्पना हमारे सामने प्रस्तुत की है, वह भी त्रिरूप है आत्म-निर्माण, परिवार निर्माण और समाज निर्माण के तीन प्रकल्पों के द्वारा ही उसे साधा जा सकता है। ज्ञान योग, कर्मयोग और भक्ति योग ये तीन ही मुख्य मार्ग हैं। इन त्रिविध निर्माणों एवं त्रिविध मार्गों का व्याख्यान

है। इस रहस्य को जो समझता है और तदनुसार प्रबल पुरुषार्थ करता है, वही 'प्राज्ञ' है वही ओ३म्‌विद् है।

ॐ के इस तत्वज्ञान को निम्न पंक्तियों में भली प्रकार सुगठित किया गया है—

चिन्मय ओ३म् त्रय-अक्षरी,
'ओ पर प्लुत प्रधान।
तीन कर्ष, तीन गुण, तत्व त्रय,
देश-काल त्रय महान॥
ऋण, अग्नि, देवि-देव, गुरु,
सूत्र, वेद भी तीन।
दुःख त्रय, तन त्रय मार्ग त्रय,
प्रति अक्षर में तीन॥
ओ३म् ब्रह्म ही स्वयंभू,
अक्षरशः सत्य प्रमाणित।
ओत-प्रोत सब में वही,
सब उससे अनुप्राणित॥

तीन लोक, तीन काल और ओ३म्

तीन लोक हैं भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक। इन्हें क्रमशः पृथ्वी अंतरिक्ष और द्युलोक भी कहते हैं। भूः, भुवः, स्वः यही वेद की तीन महाव्याहृतियाँ हैं, जो इन त्रिविध लोकों के पर्याय कहे जा सकते हैं। ॐ मन्त्र के अ उ म क्रमशः भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक प्रवाची हैं ऐसा कहने का तात्पर्य केवल इतना ही है कि ईश्वर एकदेशीय नहीं है, सर्वदेशीय है। ईश्वराधन करते समय भक्त को परमात्मा के विषय में ऐसी बुद्धि या भावना अपने में जागृत रखनी चाहिए। अपने ऊपर नीचे बाँये-दाँए सब ओर परमात्मा का अनुभव करने वाला सभी प्रकार के भयों से मुक्त हो जाता है। ईश्वर के प्रति सार्वदेशिक-भावना रखने वाले व्यक्ति को चिन्तायें नहीं सताती। उसका मस्तिष्क भय-चिन्ता

जनित तनावों (संस्पर्शों) से सर्वथा मुक्त हो जाता है। उसके मन का भाव कुछ इस प्रकार का हो जाता है कि जब सब ओर मेरा संरक्षक ईश्वर मौजूद हैं, तब मुझे किस बात का डर ? तब मुझे किस बात का खतरा ?

तीनों लोकों के समान तीन ही काल हैं—भूतकाल, वर्तमानकाल, भविष्यतकाल। 'अ' भूतकाल है। 'उ' वर्तमान काल है और 'म' भविष्यत् काल है। ॐ इस प्रकार त्रिविध कालों का सूचक है। परमात्मा सर्वदेशीय ही नहीं हैं, सर्वकालिक भी है। वह हर समय हर जगह उपस्थित है। ईश्वर की सर्व व्यापकता के साथ ही साथ सर्व-कालता पर भी विश्वास करना चाहिए जो सर्वत्र है, सर्वकालिक है, उसका सर्वज्ञ होना भी स्वाभाविक है। भगवान् सब कुछ जानने वाले हैं, सर्वज्ञाता हैं, सर्ववेद्य भी हैं। उससे कुछ छिपा नहीं है, उनसे कुछ छिपाया नहीं जा सकता। यदि अ, उ, म का सन्देश है साधक को इसे धारण करना चाहिए। परमात्मा की प्राप्ति के लिए उसे सभी प्रकार के दुराव, छल-कपट, मिथ्याचार से दूर रहना चाहिये।

साधक को स्मरण रखना चाहिये कि ॐ प्लुत धर्मी है, जो इस बात को इंगित करता है कि ब्रह्म सर्वदेशी और सर्वकालिक ही नहीं है, वह देश और काल से परे भी है। वह देशातीत है। वह कालातीत है। समस्त ब्रह्माण्ड उसके अंश में निहित है। वह तो देश-काल के द्वारा बाधित नहीं है। वह तो देश-काल का प्रणेता है। प्लुत की तार-स्वरता (उच्च-उच्चारण) इसी रहस्य का उद्घाटन करती है।

ॐ के अ-उ-म से विविध गतियों (मोशन्स) का बोधन होता है। तो प्लुत से परागति (एब्सोल्यूट वाइब्रेसन) का ज्ञान होता है। वस्तुतः प्लुत महाविज्ञान आइन्स्टीन के विज्ञान-सिद्ध चतुर्मीमा सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। तदनुसार प्लुत परागति (एब्सोल्यूट मोशन) कालातीतता (एबसोल्यूट टाइम), देशातीता (एब्सोल्यूट स्पेस) और (एब्सोल्यूट फोर्स) का तुमुल निनाद है। यह जानकर बड़ा आश्चर्य

होता है कि परमात्मा का ॐ नाम वट बीज की तरह अपने गर्भ में ऐसी विशालता संजोये हुए हैं।

गीता के दसवें अध्याय में विभूति वर्णन और ग्यारहवें अध्याय में विश्व रूप दर्शन के द्वारा परब्रह्म के गुण, रुचि, प्रभाव, रहस्य और प्रकृति का भव्य चित्रण किया गया है, वह मन्त्रराज ॐ के अ, उ, म में सन्निहित है, क्या यह विस्मय कारक नहीं है। इस प्रकार ॐ के स्वरूप को और उसकी विभूतियों को जो समजता है, वही यथाथ ज्ञानी है। उसकी दृष्टि ही सम्यक् दृष्टि है। उसकी भावना ही सम्यक् भावना है। वही परमात्मा का सच्चा उपासक है।

ओंकार और गायत्री की अभिन्नता

देवी भागवत में एक स्थल पर कहा है—

ओंकार पितृरूपेण गायत्री मातरं तथा।
पितरो यो न जानाति स विप्रस्त्वन्यरेतजः॥

जो ब्राह्मण ओंकार को पितृरूप से और गायत्री को मातृरूप से नही जानता है, उसे हीनवीर्य (अधम) समझना चाहिए।

इस कथन का आशय यही है कि वही साधक बुद्धिमान् है, जो ॐ के प्रति पितृबुद्धि और गायत्री मन्त्र के प्रति मातृबुद्धि रखता है। दोनों के प्रति आत्मीयता रखता है। ॐ सहित गायत्री की श्रद्धा, और भक्ति के साथ उपासना करता है।

संसार में भी हम देखते हैं, जिन बालकों के ऊपर पिता की छत्र-छाया नहीं रहती, वे प्रगति-पथ का दूर तक अवलम्बन नही कर पाते हैं। कोई रोक-टोक, कोई दबाव, कोई निगरानी, कोई समर्थ अनुशासन न रहने के कारण प्रायः पितृहीन बालक अनपढ़ ही नही रह जाते, उच्छृंखल, स्वेच्छाचारी, और दुर्व्यसनी भी हो जाते है। इसी प्रकार बालक-बालिकाओं को स्नेहदात्री माता का प्रेम नहीं मिलता तो उनके

संवेगों (इमोशन्स) का भली प्रकार विकास नहीं हो पाता है। सद्भावों के विकास के लिए, आत्मीयता, मैत्रीभाव, भ्रातृभाव, त्याग भाव, प्रेम भाव हर्ष उल्लास प्रवृत्ति मनोभावों के समुचित विकास के लिए ममतामयी माँ के वात्सल्य की अनिवार्य अपेक्षा रहती है। ऐसा आधुनिक मनोवैज्ञानिम भी मानते हैं।

तात्पर्य यह है कि शिशु के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास के लिए प्रबुद्ध माता और पिता दोनों की नितान्त आवश्यकता है। यही बात साधक रूप शिशु के समुचित विकास के लिए भी अपरिहार्य है। उसे ॐ रूपी पिता और गायत्री रूपी माता का सरक्षण चाहिए।

पिता को जनक या उत्पन्न करने वाला कहा जाता है सो, वास्तव में ॐ रूप पराध्वनि के विस्फोट से ही समस्त संसार का प्रादुर्भाव, हुआ है। अमृत-बिन्दूपनिषद् में कहा गया है—

ॐकार-प्रभवा: देवा, ॐकार-प्रभवा: स्वरा: ।
ॐकार-प्रभवं सर्वं, त्रैलोक्यं सचराचरम् ।।

'ओंकार से ही सब देवता उत्पन्न हुए हैं। ओंकार से ही सब प्रकार उत्पन्न हुए है। तीनों लोकों में चर-अचर प्राणी हैं, वे सभी ओंकार से ही उत्पन्न हुए हैं। ओंकार ही इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का जनक (पिता) है।—'

व्युत्पत्ति के अनुसार 'पातीति पिता' जो अधोमार्ग से, नरक में गिरने से हमारी रक्षा करता है, वही वास्तव में 'पिता' है। इस दृष्टि से विचार करने पर भी ॐ की 'पितृता' का स्पष्ट बोध हो जाता है। ॐ को शास्त्रकारों ने इसलिए ही 'पिता' नहीं कहा है कि उसी से सम्पूर्ण विश्व का उद्भव हुआ है, वरन् इसलिए भी उसे पिता की संज्ञा से विभूषित किया गया है कि वह साधक की पद पर रक्षा करता है। सत्-सत् प्रेरणायें देकर वह उसको नरकगामी होने से रोकता है—

पिता वही है जो पद-पद पर,
दुरितों से करता हो रक्षा ॥
योग-क्षेम का वहन करे जो,
बढ़ती जिससे ब्रह्म विवक्षा ॥

ॐ पिता तुल्य है । वह उद्‌बोधन, आत्म-भर्त्सना दे-देकर साधक को दुरितों (पाप कर्मों) से बचाता है । वह साधक का भली प्रकार से भरण-पोषण करता है । उसके योग-क्षेम का वहन करता है । उसी की कृपा से उत्कृष्ट जीवन यापन की ललक प्राणवान संकल्प का रूप धारण करती है । और साधक को क्रम-क्रम से उच्चातिउच्च स्तरों पर प्रतिष्ठित करती है ।

उपासक को ॐ की आराधना करते समय ओ३म् के इसी पितृत्व' पर भाव भरी दृष्टि रखनी चाहिए । ॐ को पिता मानते हुए ही उनके प्रति भावपूर्ण आत्म-निवेदन, अनुनय-हीनता के ओछे विचारों को छोड़-कर अपने को योग्य पिता का योग्य युवराज' बनाने के लिए सतत प्रयत्नवान है । जो यह मानता है कि मैं परम पिता के संरक्षण में हूँ । मुझे किसी प्रकार भय, दैन्य, अधैर्य का संशय नहीं है । जो जितना अधिक निश्चिन्त है. जितना अधिक आत्मविश्वासी है, वह उतना ही अधिक ॐ को अपने संरक्षक अभिभावक के रूप में, पिता के रूप में अनुभव करता है ।

'मातृ' शब्द शक्ति का प्रतीक है । 'माता' पुरुष (ब्रह्म या जगत्पिता) की वह मूलभूत शक्ति है, जिसके सहारे यह संसार प्रकट हुआ है और प्रकट होकर स्थित है । जिस समय 'एकमेवाद्वितीयम्' परब्रह्म में 'एकोऽहं बहुस्याम्' की भावना स्फुरित हुई, उसी समय उसकी चिच्छक्ति या समस्या प्रकृति त्रिगुणमयी जगज्जननी के रूप में आविर्भूत हुई । उसने अपने गुणों का प्रसार किया और ब्रह्म को अपनी माया से आवृत्त कर डाला· इस प्रकार वह 'महामाया' कहलाई । इस महामाया के संयोग से परब्रह्म का एक अंश परमात्मा बना, परमात्मा अपने एक अंश से आत्मा रूप में

प्रकट हुआ और आत्मा जीव रूप से संसार की लीलायें करने लगा। जगज्जननी को ब्रह्म या परमात्मा की प्रकृति स्वभाव, धर्म, महामाया और आद्या शक्ति इसी हेतु से कहा जाता है। हिरण्यगर्भ और पितामह ब्रह्मा सभी के आदि में वहीं है प्रकृति के सम्बन्ध से ही व्यष्टि-समष्टि का उद्भव हुआ है।

इस गहन रहस्य को एक उदाहरण द्वारा सरलता से हृदयगम किया जा सकता है। जिस प्रकार एक ही वृक्ष में पुल्लिग कुसुम और स्त्रीलिंग पुष्प हुआ करते हैं और वह वृक्ष इन दोनो लिंगो के योग से अपने को सफल बनाता है, नवीन सृष्टि करता हैं, उसी प्रकार इस ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति भी पिता और माता, परब्रह्म और प्रकृति के संयोग से हुई है।

ऊपर देवी भागवत के जिस श्लोक का उल्लेख किया गया है, उसमें गायत्री को माता की, जगज्जननी की सञ्ज्ञा से अभिहित किया गया है। वेदों में भी उसे देवानां माताऽमृतस्य नाभिः,' 'गायत्री छन्दसां माता गायत्री सर्वाणि सवनानि वहति' वेदमाता, अमृतायोनि, प्राण प्रदात्री इसी दृष्टि से कहा गया है।

'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति' के अनुसार गायत्री माता का उन्मुक्त वात्सल्य सदा सर्वदा उपासक को उपलब्ध है। अन्य-मनस्कता के साथ भी गायत्री की जो साधना करता है, सूझबूझ विवेक बुद्धि देकर माता उसे भी अपने स्नेह से सिक्त करती रहती है।

गायत्री मन्त्र समस्त मनोरथों को पूर्ण करने वाला है। गायत्री जप से मनोविकास, बुद्धि विकास लोक-परलोक का सुधार सहज ही होता है। गायत्री की शक्ति अपरिमित है। जिस प्रकार अग्नि की उपासना से ताप और प्रकाश मिलता है, उसी प्रकार गायत्री की उपासना से शक्ति और प्रत्युत्पन्नमतित्व की संप्राप्ति होती है।

माँ की ममता लोक प्रसिद्ध है। वह अपने पुत्र से अहेतुक प्रेम

करती है। उसका प्रेम प्रतिदान की अपेक्षा नहीं रखता। प्रेम करना कृपा करना चुमकारना, पुचकारना ढाँढस देना, धैर्य बँधाना, आशा-उत्साह और सहयोग देना, मातृ-हृदय की स्वाभाविक वृत्ति होती है। सो गायत्री उपासक को भी पदे-पदे जगज्जननी की प्रसन्नता, प्रसादता, कृपा, स्निग्धता, भव्य-भव्य भावोद्भावनी उदारता और आत्मीयता की अनुभूति हो, तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है ?

माता तो प्रेमरूपा ही होती है। यह घृणा करना, उपेक्षा करना जानती ही नही। मलावेष्टित शिशु को भी वह हाथ पकड़ कर नहलाती है, चुमकारती-पुचकारती हुई साबुन लगाती है, अंग-अंग को स्वच्छ करती है, सुगन्धित तेल पाउडर प्रभृति से सुवासित करती है। हाथ पकड़-पकड़ कर उसे चलना फिरना, उठना-बैठना सिखाती है। रोग ग्रस्त होने पर रातों रात जाग-जागकर अपने कष्टों की चिन्ता न करके वे-वे उपाय करती है, जिनसे उसका प्राण प्यारा बालक शीघ्र स्वस्थ हो। गायत्री माँ भी पाप-प्रविष्ट साधक के प्रति ऐसा ही वात्सल्यपूर्ण व्यवहार अनवरत करती रहती है। उसकी प्रत्येक क्रिया, प्रत्येक अवस्था इसी भावना से भाविन्न होती है कि किस प्रकार मेरा यह बालक (साधक) हृष्ट-पुष्ट स्वस्थ सबल स्वच्छ और पवित्र बने। उसके स्वभाव की मृदुता उपासक के मानसिक तनावों के, अवसाद-विषाद को दूर करती है।

पिता और माता के प्रति पूज्य भाव रखना, उनकी आज्ञाओं का विनीत भाव से पालन करना जहाँ जननी-जनक को प्रमुदित करता है, वहीं उसे माता-पिता की कृपा-विभूतियों से सम्पन्न और समुन्नित भी करना है। उसी प्रकार ॐ और गायत्री मन्त्र के जाप स्मरण के प्रति उदात्तभाव रखने और शास्त्रों में वर्णित अथवा अन्तर (हृदय) प्रबोधित कर्तव्यों का जागरूकता के साथ पालन करने से बुद्धिमान साधक दोनों की प्रसादता पाता है। लौकिक अभावों और समस्याओं को दूर करके

ऋद्धि-सिद्धियों से ही सम्पन्न नहीं होता, परम पद को भी प्राप्त कर लेता है।

जिस प्रकार प्रकृति और पुरुष, अर्द्धनारी नटेश्वर, श्रद्धा और विश्वास एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों में अभिन्नता है। उसी प्रकार ॐ और गायत्री भी सर्वथा अभिन्न हैं। दोनों के संरक्षण से ही पूर्णता सम्भव है।

ओंकार और ब्रह्म की एकता

वेदान्त में जिस परम तत्व की परब्रह्म संज्ञा प्रदान की गई है, वह सर्वोच्च परम पुरुष है, जड़ चेतन सब प्राणियों में प्रतिष्ठित है तथा नाम जाति व वर्ग-भेद से अतीत है। उस परम सूक्ष्म का ज्ञान प्राप्त करने के हेतु वेदों ने सम्बोधन के हेतु प्रतीक रूप में नाम का आलम्बन लिया होता है परन्तु हम उसे नाम प्रदान करतेहैं और वह नाम से पुकारने पर उत्तर भी देता है। वह हमारी ध्वनियों से परिचित होता है और हम भी उसकी भावनाओं को किसी न किसी ध्वनि आदि के संकेत से हृमयगंम कर लेते हैं। ठीक इसी प्रकार हम परम पुरुष को हृदगंम करते हैं। संसार के कष्ठों से आकुल व्याकुल हम अपनी पीढ़ा की मुक्ति के हेतु अपने 'इष्टदेव की शरण में जाते हैं और अपने 'आराध्यदेव' को किसी संज्ञा से सम्बोधित करते हैं। वह संज्ञा नाम उस देवता का प्रतीक हो जाता है और उसके माध्यम से ही उस अधिदेव का स्मरण तथा ध्यान किया जाता है। परम पुरुष भी इसी भाँति नाम से युक्त होता है और पुकारे जाने पर वह अव्यक्तव्यक्त हो जाता है।

परात्पर ब्रह्म ही सबसे परे है, उससे परे किसी तत्व, की परि-कल्पना भी नहीं की जा सकती। वेदों में उसे ही ॐ की संज्ञा से संज्ञित किया गया है। इसीलिए एकाक्षर ब्रह्म की उपासना की जाती

है। ॐ ही सर्वस्व है ॐ ही परमतत्व है और ॐ ही सर्वव्यापक परम चेतन है। 'सर्वत्वोप ख्यायम्'—यह ॐ का ही प्रसार है। ॐ ही परब्रह्म का प्रतीक अथवा नाम है। हम जीवधारियों का आदि नाम ॐ ही है। मनुष्य की निपुण प्रकृति ॐ में ही समाहित है। इस भौतिक सृष्टि की उद्भावना ॐ से ही हुई है। ॐ में ही सृष्टि उद्भावना अवस्थित तथा लय है। यदि सम्पूर्ण सृष्टि अथवा स्थिति की दुग्ध से उपमा दें तो ॐ को हम नवनीत की संज्ञा दे सकते हैं। ॐ ही परम सार है, सूक्ष्त रूप में यह यत्र-तत्र स्थित है।

ॐ ध्वनि में 'अ' 'उ' और 'म' की ध्वनि-जयी है। 'अ' इस दृश्यतय संसार का 'उ' सूक्ष्म जगत् का 'म' मनोमय जगत् को नक्षत्र लोक भुवलोक तथा स्वर्गलोक को प्रतिष्ठित करता है। 'म' इन्द्रियों से परे ज्ञानवाणी, मन और बुद्धि वाङ्मनो गोचर से परे ज्ञान का परिचय देता है।

ॐ ही समस्त जड़ चैतन्य का प्रतिरूप है। हमारा समस्त प्राण, वुद्धि एव ज्ञान पूर्णतया ॐ पर ही आश्रित है, अतएव ॐ में परम प्राण परम वुद्धि एवं परमज्ञान है। अखिल सृष्टि ॐ से ही प्रादुर्भूत है, ॐ में वर्तमान है तथा ॐ में ही लय को प्राप्त होती हैं।

स्वर सभी वर्णों के अधिष्ठान हैं। स्वमेव रवि की भाँति प्रकाशमान ध्वनि ही स्वर है। विना किसी अन्य ध्वनि के यह सहज उच्चरित होता है। व्यञ्जन आदि के अन्त में स्वर की सहायता के अभाव में उच्चरित नहीं हो सकता। स्वर तथा व्यञ्जन का सम्बन्ध आत्मा तथा शरीर की भांति है। शरीर अपने अस्तित्व के लिए आत्मा पर आश्रित है। व्यञ्जन स्वर पर आश्रित है। स्वरवहुला भाषा संस्कृत के सभी स्वर 'अ' तथा 'उ' के अन्दर समाहित है। यह दोनों स्वर भी स्वरों को जन्म देने वाले हैं—आदि स्वर है। संसार की समस्त भाषाओं के समस्त वर्ण इस परम पावन एकाक्षर ॐ के अन्दर समाहित

हैं। ॐ ध्वनि परम विराट् तत्व के रूप में समस्त ध्वनियों में व्याप्त है यह सर्वव्याप्त ध्वनि ॐ ही ब्रह्म का यथार्थ प्रतीक नाम है।

'सोऽहं हमारी अत्यन्त स्वाभाविक ध्वनि है। हम प्रत्येक क्षण साँस लेने की स्थिति में 'सो' की ओर साँस छोड़ने की स्थिति में 'ह' की ध्वनि स्वतः उत्पन्न करते हैं। यह प्रतिश्वास पर अनायास उत्पन्न 'सोऽहं' की ध्वनि ही स्वाभाविक ध्वनि प्रकृति ध्वनि है। इस ध्वनि के माध्यम से हम हर श्वांस में 'मैं वह परमतत्व हूँ' की सतत् घोषणा करते रहते हैं। इस 'सोऽहं' ध्वनि में 'स' तथा 'ह' व्यंजन है, इन दोनों का एकीकरण करने वाले हैं। 'ॐ के 'अ' तथा 'उ' और 'म' का अनुस्वार ॐ। 'स' और 'ह' जो कि मिथ्या नाम और रूप के द्योतक हैं, के निकाल देने पर जो मूल ध्वनि 'सोऽहं' में अवशिष्ट रहती है, वह ॐ ही हैं। यह ॐ ही सत् नाम है—एकमात्र सत्य है। ॐ ही आदि ध्वनि है यही हमारी श्वांस प्रतिश्वास का परम पवित्र सतत गायन है। यह ॐ ही परम शान्तिमय वाणी है। ॐ ही चित्त को परम शान्ति, एकाग्रता, समता, साम्य तथा आत्मोपगम्य का दायक है। यह एकाक्षर ॐ समस्त विश्व को अपने अंश में स्थित रखता है—

'अथवा बहुनैतेन् कि ज्ञातेन तवार्जुन
विष्टाम्याहिद कृत्स्नं एकांशेनस्थितो जगत्।'

हे अर्जुन! मैं तुम से ज्ञान की बहुत सी बातें क्या कहूँ, मैं एक अंश से जगत् में व्याप्त हूँ।'

इस अखिल विश्व में सम्पूर्ण अस्तित्व 'अ' ओर 'म' के मध्य में स्थित है! आद्यन्त सभी इसके अन्दर समाहित हैं जो कुछ भी कल्पनातीत, कालातीत तथा देहातीत परमतत्व है, यह सब ॐ में समाहित है। ॐ के अतिरिक्त अन्य कोई प्रतीक इस अखिल अस्तित्व को अपने अन्दर आत्मसात नहीं कर सकता।

प्रकृति में सर्वत्र ही ॐ की परम पावन ध्वनि गुंजित है।

गंगा के निर्मल निरन्तर प्रवाह में दूर से सुनाई दी जाने वाली प्रत्येक ध्वनि में, जलवृष्टि में, अग्निकाण्ड से निकलती लपलपाती लपटों में वज्र निपात में सर्वत्र ॐ ही गुंजरित है। यह आकाश की भाँति सर्व-व्यापी है।

एकाक्षरी मन्त्र ॐ वेदों के दूध का नवनीत है—परम सार है। भवसागर के सन्तगण के उस पार 'अभव' और अमृत के तट तक ले जाने वाली तरी है। अतएव ॐ का जप, ध्यान ब्रह्म का ध्यान ही है।

ॐ ब्रह्म का रूप है। जैसे व्यक्ति अपने कल्पित नाम के श्रवण मात्र से आनन्दित होता है, वैसे ही ब्रह्म अपने प्रतीकात्मक नाम ॐ के श्रवण से आह्लादित होता हैं। जैसे गिरा और अर्थ, जल एवं तरंगों की भाँति अपृथक हैं, वैही ही ॐ और सच्चिदानन्द ब्रह्म भी अपृथक् हैं। सृष्टि की समस्त ध्वनियाँ ॐ में समाहित हैं। जितने भी अर्थ हैं, वे सभी नाम वाणी रूप अर्थात् ध्वनिरूप होने के कारण 'ॐ' में समाये हुए हैं। ॐ में सृष्टि का जन्म और ॐ में ही लय है। सृष्टि की प्रत्येक स्थिति में व्याप्त ॐ की महिमा अनन्त है। यह ही यथार्थ में परम आराध्य है। साधना के समारम्भ में ॐ की दीर्घ स्वरीय उच्चारण निर्गुण ब्रह्म के प्रतीक के रूप में करना चाहिए।

क्या ॐ के अतिरिक्त ब्रह्म को कोई अन्य संज्ञा नहीं हैं। क्यों श्रुति ने 'तस्य याचकः प्रणवः' की उद्घोषणा की ? वास्तव में अखिल सृष्टि के कण-कण में परिव्याप्त ॐ अतिरिक्त कोई अन्य ध्वनि है ही नहीं। ऋषियों के अनुभूत प्रयोग तथा विज्ञान से यह पूर्णतया सिद्ध हो चुका है कि ॐ और ब्रह्म सत्ता अपृथक् है—'गिरा अर्थ जल वीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न' है। जिस प्रकार वीणि और भाव तथा शब्द और अर्थ अपृथक हैं, उसी प्रकार एकाक्षर ब्रह्म ॐ और सच्चिदानन्द स्वरूप परात्पर ब्रह्म भी अभिन्न है। नाम और नामी में कोई भेद नहीं होता। इस प्रकार ब्रह्म नाम ॐ तथा ब्रह्म में भी कोई

भेद नहीं है। एकाक्षर ब्रह्म परब्रह्म का सर्व सुलभ सर्वजनीय रूप है। यह सभी नाम, ध्वनियों, भाषाओं तथा शब्दों में सर्व-प्रमुख है।

प्राण के कम्पन अथवा संघर्षी गतिशीलता से तेज उत्पन्न होता है। यह तेज ही सघन गति युक्त वायु के कम्पन से जब हमारे कण्ठनाल को संघर्षित करता है तब ही ध्वनि रूप में-शब्द रूप में प्रकटित होता है। यह ध्वनि कण्ठ, तालू, मूर्द्धा, जिह्वा, दन्त, ओष्ठ तथा नासिका से प्रकटित होती है।

कण्ठ वर्णी 'अ' ध्वनि मूलध्वनि है। यह वर्णमाला की उद्घाटिका ध्वनि है। 'उ' ओष्ठ वर्णी है। 'उ' ध्वनि यन्त्र में आदि से अन्त्यओष्ठ तक गुंजन का कम्पन करती है। 'म' ओष्ठ्य और सानुनासिका है। नासिका निःसृत इस ध्वनि की उत्पत्ति दोनों अधरों के संयुक्त रूप से मिलने पर व बन्द ओष्ठों से होती है। ॐ में इन तीनों ध्वनियों का संगम हुआ है। 'अ' उ, 'म' के रूप में एकाक्षर ॐ ध्वनि यन्त्र के आघात को अपने अन्दर समेटे हैं। इस प्रकार ॐ ध्वनि सर्वव्यापी स्वरूप हैं। संसार की समस्त भाषाओं के सारे शब्द एवं ध्वनियाँ 'ॐ' से ही उत्पन्न हुई हैं। यह ॐ स्वरों तथा ध्वनियों की जननी है। 'ॐ' मित्येतदक्षरमिदं सर्वं' ॐ परब्रह्म है। ॐ सारी ध्वनियों, शब्दों वाणी रूप आदि का मूल स्रोत है। इसकी अखिल विश्व में अखण्ड व्याप्ति है। अतएव ॐ की आराधना अखिल विश्व में परिव्याप्त परम चेतन सत सच्चिदानन्द ब्रह्म की आराधना है। ॐ में ध्यान मग्न होकर ही ब्रह्मानन्द की अनुभूति की जा सकती है।

शास्त्र भी ओंकार और ब्रह्म की एकता का समर्थन करते हैं।

ब्रह्म और 'ॐ' की एकता का बोध करते हुए मैत्रायण्युपनिषद् (५।३) में कहा गया है ब्रह्म के दो ही स्वरूप है, मूर्त और अमूर्त। उनमें से जो मूर्त है, वह असत्य है, जो अमूर्त है, वह सत्य है। वही ब्रह्म है। जो ब्रह्म है, वही ज्योति है, जो ज्यति है, वही आदित्य

है; वही ॐ है, वही आत्मा है। ॐ में सब कुछ अवस्थित है, इसे 'समस्त कामनाओं की पूर्ति करने वाला भी बताया गया है।' 'ॐ' पवित्र अक्षर है। इस अक्षर को जानकर मनुष्य जिसकी इच्छा करे वह उसे प्राप्त हो जाता है।' अगले श्लोक में ॐ' के स्थूल शरीर की व्याख्या करते हुए कहा गया है 'अग्नि वायु और सूर्य के रूप में यह प्रकाश वाला है, रुद्र और विष्णु के रूप में अधिपति है, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि और आवाहीन यह उनके ३ मुख हैं, ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद को वह जानता है। भूः भुवः, और स्वः यह ३ उसके लोक हैं, भूत, भविष्य और वर्तमान उसके काल हैं। प्राण अग्नि और आदित्य उसके प्रताप है, अन्न जल और चन्द्रमा उसके पोषण हैं। बुद्धि, मन और ओंकार उसके चेतन हैं और प्राण, अपान तथा व्यान उनके प्राण हैं। (५।४)

अथर्वशिर उपनिषद् में कहा है जो ओंकार है, वह प्रणव है, जो प्रणव है, वही सर्वव्यापी है। जो स्वेव्यापी है, वही अनन्त है, जो अनन्त है, वही तारक रूप है. जो तारक रूप है, वही सूक्ष्म रूप है जो सूक्ष्म रूप है, वही शुक्ल है, वही विद्युत् रूप है वही परब्रह्म है।

ओंकार में क्या-क्या स्थित है, इसका विवेचन करते हुए प्रणवोपनिषद् में कहा गया है—उस ओंकार में तीन देव, तीनों लोक, वेद जप तथा अग्नियाँ कही गयी है, साथ ही तीनों मात्रा अर्धमात्रा भी उसमें निहित हैं। क्योंकि वह उस परमशिव तत्व का ही स्वरूप है। (१।३)। ऋग्वेद गार्हपत्य (अग्नि) पृथिवी व ब्रह्म ये तीन तत्व ब्रह्मदेवताओं ने ॐ के तीन अक्षर 'अ' 'उ' 'म' में से जो पहला अक्षर अ है उसमें स्थित बताये है इन सबका स्वरूप वह अ है (४) यजुर्वेद आकाश दक्षिणाग्नि तथा देवश्रेष्ठ भगवान् विष्णु का स्वरूप अकार को कहा गया है (५)। सामवेद, स्वर्ग, आवाहनीय (अग्नि) परमदेव शंकर का स्वरूप 'मकार

को बताया गया है (६) तीन देवों, तीन वेदों और तीन अग्नियों की उपासना से हो जाता है।

माण्डूक्योपनिषद् (१) में कहा गया है—

ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद् भविष्यदिति सर्वमोंकार एव। यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योंकार एवं ॥१

'ओंकारमय अविनाशी ब्रह्म है, उसकी महिमा को प्रत्येक लक्षित कराने वाला यह सम्पूर्ण विश्व है। भूत, भविष्य, वर्तमान आदि तीनों कालों वाला यह संसार ओंकार ही है और तीनों कालों से परे भी जो अन्य तत्व है, वह भी ओंकार ही है।'

छान्दोग्योपनिषद् (१।१।१) में कहा है—

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत्।
ओमिति व्युद्गायति तस्योपव्याख्यानम् ॥

'ओंकार व उद्गीथ अक्षर एक ही हैं। अक्षर का अर्थ यहाँ अविनाशी है। यह ही ओंकार है।'

छान्दोग्योपनिषद् (८।२।३।३) में भी यही भाव ओत-प्रोत है—

ओंकार ऐवेदं सर्वमोंकार ऐवेदं सर्वम्।

'ओंकार द्वारा समस्त वाणी (शब्द) व्याप्त होने से यह परमात्मा से भिन्न नहीं है। ओंकार ही सब कुछ है।'

गौडपादकीयकारिका में ओंकार को निर्भय रूप ब्रह्म की संज्ञा दी है

युंजीय प्रणवे चेतः प्रणवो ब्रह्म निर्भयम्।

अमृतबिन्दुपनिषद् में वर्णन है—

ओंकारप्रभवा देवा ओंकारप्रभवाः स्वराः।
ओंकारप्रभवं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥

'ओंकार से ही समस्त देवताओं की उत्पत्ति हुई। ओंकार से ही समस्त प्रकार के स्वरों का प्रादुर्भाव हुआ। त्रैलोक्य में चर-अचर

सृष्टि का मूल ओंकार ही है। अतः सगुण 'अपर ब्रह्म' और निर्गुण परब्रह्म' ओंकार ही है—

तैत्तरीयोपनिषद् (१।८) में ओंकार व्याख्या करते हुए कहा गया है—

ओमिति ब्रह्म । ओमितीदं सर्वम्............

'ओंकार ही ब्रह्म है। ओंकार ही यह सम्पूर्ण जगत् है।

गीता (८।११) में स्वयं भगवान् ने कहा है—

'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म है।'

'ओंकार एकाक्षर ब्रह्म है'।

यही वचन ध्यानबिन्दूपनिषद् है, माण्डूक्योपनिषद् (१।८) सूर्योपनिषद् ८, छांदोग्योपनिषद् (२।२३।४) अमृतनादोपनिषद् २१. प्रणवोपनिषद् २, तारसिरोपनिषद् १२ रामोत्तरतापनीयोपनिषद् (२।१।५) योगावासिष्ठ ५।५४।२ में आया है।

वृहदाण्यकोपदिषद् में 'ॐ' एक अक्षर को आत्मा (परमात्मा) के रूप में जानने की प्रेरणा दी गई है—

ओमित्येव जानीय आत्मानाम्, अन्यावाचो विमुंचय अमृतस्यैव सेतुः।

अकारो विष्णुरुद्दिष्ट अकारस्तु महेश्वरः।
मकारेणोच्यते ब्रह्मा प्रणवेन त्रयो मताः ॥

'अकार को विष्णु का, उकार को महेश्वर का और मकार को ब्रह्मा का वाचक समझना चाहिए। अतः त्रिअक्षरमय ओंकार साक्षात् ब्रह्म का प्रतीक है।

ओंकार और ब्रह्म की एकता को सिद्ध करने के लिए लोकमान्य तिलक ने गीता रहस्य में कहा है—

पहले समस्त वेद अनादि ओंकार से उपजे हैं और वेदों के निकल चुकने पर उनके नित्य शब्दों से ही चलकर ब्रह्मा ने जब सारी सृष्टि

का निर्माण किया है (गी १७।१३, म, मा, शा २३१, ५६।५८) तब मूल आरम्भ में ओंकार को छोड और कुछ न था। इससे सिद्ध होता है कि ओंकार ही सच्चा ब्रह्मस्वरूप है (माण्डूक्य १, तैत्ति, १।८)

ओंकार ब्रह्म एक ही अभिन्न हैं। अतः ओंकार साधक को ब्रह्म से अभिन्नता का अनुभव करना चाहिए। यह भावना जितनी परिपक्व होती जाएगी, साधक उतना ही सिद्धि के मार्ग पर बढ़ता जाएगा। ब्रह्म से एक्य की अनुभूति हों ओंकार की पूर्ण सिद्धि है।

ओंकार के ब्रह्मवाचक दस नामों की व्याख्या

योग संख्या के अनुसार ॐ के मुख्य दस नाम हैं—

ओंकारं प्रणवं चैक सर्वव्यायिनमेव च।
अनन्तञ्च तथा तारं शुक्लं वैद्युतमेव च।
तुर्यं हंसं परब्रह्म इति नामानि जानते।

ॐ या ओंकार, प्रणव, सर्वव्यापी, अनन्त, तार, शुक्ल, वैद्युत, तुर्य हंस और परब्रह्म—ये ॐ के दस नाम हैं। इन नामों द्वारा प्राज्ञजन उस 'दिव्य तत्व' को जानते हैं। इन नामों से ही वे उसे पूजते हैं।

एकमेव होने के नाते उसे ॐ कहते हैं, क्योंकि उसका पावन स्पन्दन पावन प्रवाह ॐ के आकार में चाक्रिक और चक्र-वहि है। नित्य नवीन होने से उसे प्रणव कहते हैं। जग-जः में ओत-प्रोत होने से 'सर्वव्यापी, सीमा रहित होने से 'अनन्त' भवसागर से साधक जनों को पार उतारने वाला होने से 'तार', ज्योति रूप निर्मल और

परम पवित्र होने से, परम शुद्ध होने से 'शुक्ल' अत्यन्त शक्ति पुंज होने से 'वैद्युत्' और नित्य-तृप्त या परमानन्दमय होने से 'तुर्य' कहलाता है। वही सबकी अन्तरात्मा है। अतः उसे 'हंस' नाम से सम्बोधित किया जाता है। सबसे सूक्ष्म, सबसे परे, सबसे विशाल और सर्वोत्कृष्ट होने से उसे 'परब्रह्म' के रूप में स्मरण किया जाता है।

शिव-अथर्वशार्षोपनिषद् में ॐ के इन नामों की व्याख्या बड़े ही मार्मिक शब्दो में प्रश्नोत्तर शैली में इस प्रकार दी गई है—

अथ कस्मादुच्यते ओंकारः?' 'यस्मादुच्चार्यमाण एव प्राणानूर्ध्वमुत्क्रामयति तस्मादुच्यते ओंकारः।

ब्रह्म को ओंकार क्यों कहते हैं? उच्चारण मात्र से ही वह प्राणों को ऊपर की ओर आकर्षित करता है, इसीलिए उसे ओंकार कहते हैं।

अथ कस्मादुच्यते प्रणवः? 'यस्मादुच्चार्यमाण एव ऋग्-यजुः-सामाथर्वाङ्गिरसं ब्रह्म ब्राह्मणेभ्यः प्रणामयति नामयति च तस्मादुच्यते प्रणवः।'

ब्रह्म को प्रणव क्यों कहते हैं? इस पर ऋषि ने कहा—उच्चारण मात्र से ही वह ब्रह्म अभिवन्दित होता है और ब्राह्मणों के लिए (श्रेष्ठ उपासकों के लिए) ऋग्यजु, साम आदि का तत्वज्ञान देता है। इसलिये उसे प्रणव कहते हैं।

अथ कस्मादुच्यते सर्वव्यापी? यस्मादुच्चार्यमाण एव यथा स्नेहेन पललपिण्डमिव शान्तरूपमोतप्रोतमनप्राप्तो व्यतिषक्तश्च तस्मादुच्यते सर्वव्यापी।

ब्रह्म को सर्वव्यापी क्यों कहते हैं? इस पर ऋषि ने बतलाया कि उच्चारण मात्र से तिलचूर्ण में तेल की तरह शान्तरूप होकर वह जगत् में ओत-प्रोत तथा परिव्याप्त हुआ प्रतीत होने लगता है, इसीलिये उसे सर्वव्यापी कहते हैं।

अथ कस्मादुच्यतेऽनन्तः ?—'यस्मादुच्चार्यमाण एव तिर्यगूर्ध्वमधस्ताच्चास्यान्तो नोपलभ्यते तस्मादुच्यतेऽनन्तः।'

ब्रह्म को 'अनन्त' क्यों कहा जाता है? इस पर ऋषिवर बोले—उच्चारण मात्र से ही उपासक यह अनुभव करने लगता है कि उस ब्रह्म का ऊद्ध्वं-अध, आस-पास, कहीं अन्त नहीं है। वह सीमातीत है। इसीलिए उसे अनन्त कहते हैं।

'अथं कस्मादुच्यते तारम् ?'—'यस्मादुच्चार्यमाण एव गर्भजन्य-व्याधि-जरा-मरण-संसार-महाभयात्तारयति त्रातते च तस्मादुच्यते तारम्।'

ब्रह्म को 'तार' पद से क्यों सम्बोधित करते हैं? इस पर ऋषि ने बताया—उच्चारण मात्र से ही गर्भ, जन्म, व्याधि, जरा मृत्यु आदि संसार सागर के महाभय से वह उपासक को तारता है। इसी लिए उसे 'तार' कहते हैं।

'अथं कस्मादुच्यते शुक्लम् ?'—यस्मादुच्चार्यमाण एव क्लन्दते क्लामयति च तस्मादुच्यते शुक्लम्।'

'ब्रह्म' को 'शुक्ल' पद से क्यों सम्बोधित करते हैं? इस पर ऋषि ने कहा—उच्चारण मात्र से ही प्रसन्न होकर वह उपासक के हृदय को आर्द्र करके, दया-द्रवित करके संसार के प्रति उपेक्षाभाव (ग्लानि) उत्पन्न करता है। और उसे शुद्ध, पवित्र निर्विकार स्वरूप बना देता है, इसीलिए उसे शुक्ल कहते हैं।

'अथं कस्मादुच्यते सूक्ष्मम् ?'—यस्मादुच्चार्यमाण एव सूक्ष्मो भूत्वा शरीराण्यधितिष्ठति सर्वाणि चाङ्गानि अभिमृशति, तस्मादुच्यते सूक्ष्मम्।'

ब्रह्म को सूक्ष्म क्यों कहते हैं? उच्चारण मात्र से सूक्ष्म रूप होकर वह उपासक के शरीर में प्रतिष्ठित हो जाता है, और अङ्ग-अङ्ग को अपने मृदु स्पर्श से परिमार्जित (शुद्ध) और प्रफुल्लित करता है। इसी लिए उसे 'सूक्ष्म' (परतर) कहते हैं।

'अथं कस्मादुच्यते वैद्युतम् ?'—'यस्मादुच्चार्यमाण एव व्यक्ते महति तमसि द्योतयति । तस्मादुच्यते वैद्युतम् ।'

ब्रह्म को वैद्युत क्यों कहा जाता है ? इस प्रश्न के उत्तर में ऋषि ने बताया कि उच्चारण मात्र से ही उपासक के हृदय में व्यक्त होकर महान् अन्धकार में विजली के समान प्रकाश करता है, अपने मादन स्वरूप को द्योतित (प्रकट) करता है। इसीलिए उसे वैद्युत कहते हैं।

'अथं कस्मादुच्यते परंब्रह्म ?'—यस्मात् परमपर परायणम् चबृहद्बृहत्या बृंहयति तस्मादुच्यते परं ब्रह्म ।'

उस परमात्मा को परम ब्रह्म क्यों कहते हैं ? ऋषि ने उत्तर दिया कि उच्चारण मात्र से वह अपनी महत्ता के द्वारा उपासक के हृदय में पर अपर ब्रह्म भाव (अद्वैत भावना) परिपुष्ट करता है। इसलिए उसे परब्रह्म कहते है। परमभाव का पोषण होने के कारण वह परब्रह्म है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ॐ की ये दशों परिभाषायें ब्रह्म की दस प्रमुख विशेषताओं पर विपुल प्रकाश डालती हैं। उपासक को ॐ की इन दशों विशिष्टताओं को भली प्रकार समझ कर विश्वास पूर्वक उपासना करनी चाहिये। उसे अन्य देवी-देवताओं, भूत-प्रेत, पीर पेगम्बरों में बिखरी अपनी आस्थाओं को समेट कर एक मात्र ॐ के प्रति अनन्य निष्ठा व्यक्त करनी चाहिये। उसे ही सर्वकार सर्व महान, ज्योति रूप, विद्युत् रूप, परमानन्दमय निस्तापरक और सर्वत्राता तथा सर्व सुहृदय एवं सर्वसहायक समझकर उसकी महती कृपाओं और अनुदानों के लिये उसके प्रति अनुगृहीत (कृतज्ञ) होना चाहिये। सर्वतोभावेन उसी का ध्यान, उसी की अपने भावों और व्यवहारों से अवतारणा करनी चाहिए। इधर-उधर मन भटकाना व्यर्थ है। यही इस परिभाषा का सार है।

ओंकार के इन नामों की उक्त दिव्यता का मनन, निदिध्यासन स्मरण चिन्तन भी उपासना ही है। तोता रटन के समान ॐ का उच्चा-

रण उतना लाभदायक नहीं होगा जितना कि 'ॐ' का जप-स्मरण करते समय मन ही मन बिना जिह्वा हिलाये 'ॐ' की तथोक्त भावना भी की जावे। भावना ही उपासना को प्राणवान् बनाती है।

ओंकार और विकास की चार अवस्थायें

उपनिषद्-काल के सर्वश्रेष्ठ महात्मा और योगीराज याज्ञवल्क्य ने ईश्वर, स्वर और 'ॐ' का विशद वर्णन किया है—

अदृष्टविग्रहो देवो; भाव-ग्राहो मनोमयः।
तस्योङ्कारः स्मृतो नाम, तेनाहूतः प्रसीदति ॥

'ईश्वर अदृष्ट-विग्रह है, अरूप है। भावों के द्वारा ही उसे पकड़ा जा सकता है क्योंकि वह मनोमय है। स्मृति ग्रन्थ में 'ॐ' उसका नाम बताया गया है। 'ॐ' के द्वारा उसका आह्वन करने पर वह प्रसन्न होता है।'

यहाँ ओंकार को ब्रह्म का वाचक और उसके अर्थ को वाच्य ब्रह्म कहा गया है। उस ब्रह्म को मनोमय करने का स्पष्ट तात्पर्य यह है कि अदृश्य और अरूप होकर भी भावना से परे नहीं है। वह चेतन-विग्रह है। भावमय सदस्पन्दन है। भाव को देखा नहीं जा सकता, भावों के द्वारा ही उसको समझा जा सकता है, सो निराकार ब्रह्म सर्वतः अगोचर होने पर भी भावपूर्ण 'ॐ' के जप-स्मरण से भावलोक में देखा जा सकता है। हम अपने मन में उसका साक्षात्कार 'ॐ' के आवाहन द्वारा कर सकते हैं।

'ॐ' सदा ही दीर्घ, प्लुत और अति दीर्घ उच्चारण करने योग्य

है। ॐ अव्यय है। इस दृष्टि से उसे त्र्यक्षर, चतुक्षर तथा षोडश मात्रा तक का माना जाता है। महामुनि वाष्कल के मत से ॐ एकमात्रिक है। रुद्रकायन इसकी दो मात्रा, देवर्षि नारद दो मात्रा, महात्मा मोद्गल् ३, महर्षि वशिष्ठ ४, मनु ३ और पराशर तथा याज्ञवल्क्य जी उसे अमात्र मानते हैं। अमात्र का अभिप्राय दीर्घ-प्रणव से है। दीर्घ प्रणव में एक ही उच्चारण होता है।

योगियों के विचार से समग्र ओंकार से ग्यारह मात्रायें हैं। इनके नाम अ, उ, म, बिन्दु, अर्द्ध-चन्द्र निरोध, नाद, निदान, शक्ति, व्यापिनी और सभना है। उनकी दृष्टि से समस्त विश्व ओंकार में ही स्थित है। ॐ आनन्दायिनी दिव्य ज्योति है। योगीजन ॐ की प्राणमयी अरुणोर्शा का वर्तुल रूप में सर्वत्र दर्शन करते हैं।

स्थूल, सूक्ष्म और कारण—ये तीन शरीर हैं। इनके सम्बन्ध में आत्मा की तीन उपाधि अर्थात् नाम हैं—विश्व जीव, तैजस् और प्राज्ञ। स्थूल शरीराभिमानी आत्मा को विश्व या जीव कहते हैं। सूक्ष्म शरीराभिमानी आत्मा की संज्ञा तैजस् है और कारण शरीर अभिमानी आत्मा 'प्राज्ञ' कहलाता है। इसी प्रकार जगत् तीन हैं—स्थूल जगत्, सूक्ष्म जगत् और कारण जगत्। परमात्मा का तीनों जगतों से सम्बन्ध है। वही उनका रचियता, नियन्ता और व्यवस्थापक है। परमात्मा की जिस शक्ति अथवा अंशविशेष का सम्बन्ध स्थूल जगत् से है, वह 'विराट्' कहलाता है। सूक्ष्म जगत् के शासक के रूप में वह हिरण्यगर्भ नाम से अभिहित किया जाता है। और कारण जगत् के शासक के नाते वही ईश्वर पद से विभूषित किया जाता है।

स्थूल, सूक्ष्म और कारण ही 'अ' 'उ' और 'म' है। क्रमशः ब्रह्म का पहला पाद, दूसरा पाद और तीसरा पाद भी कहते हैं।

कारण-शरीर और कारण-जगत् ये पद केवल शुद्ध परमात्म तत्व है, जो सर्वथा निर्विकार, एक रस और अभेद है। यही ॐ का चतुर्थ पाद है। यह समस्त उपाधियों और मात्राओं (संस्पर्शों) से

रहित है। निरवयंव पूर्ण विराम है मांडूक्योपनिषद् में इस सर्वथा अचिन्त्य चतुर्थ पाद का इस प्रकार उल्लेख मिलता है—

अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोङ्कार आत्मैव संविशत्यात्मनाऽऽत्मानं य एवं वेद य एवं वेद।

मा० १२

परमात्मा का चौथा पाद समस्त मात्राओं से विकारों और संस्पर्शों से रहित है। उसमें न कोई व्यवहार है न कोई प्रपञ्च वह शिव (कल्याणस्वरूप) और अद्वैत है। वही ॐ की आत्मा है। जो उसे इस प्रकार जानता है, वह आत्मा से आत्मा में प्रवेश कर जाता है।

ऋग्वेद ने प्रकृति से परे इस परब्रह्म को समझाने का प्रयत्न इन शब्दों में किया है।

एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायांश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपदस्यामृतं दिवि॥

(ऋक् १।९०।३)

ब्रह्म का चतुर्थ पाद निरवधि है। सोमातीत है। कल्पनातीत है। फिर भी उसे कुछ इस प्रकार अनुमान किया जा सकता है कि त्रिपाद वाला स्थूल सूक्ष्म और कारण रूप समस्त व्यष्टि-समष्टि ब्रह्माण्ड उसका एक अंश (पाद) भर है। उससे परे उत्तरोत्तर विस्तृत तीन पाद और हैं। यह तीन पाद अमृतमय प्रकाश रूप हैं, जो सर्वथा अगम्य है।

इस शुद्ध निगुर्ण स्वरूपचतुर्थ पाद के विषय में गीता ने कहा—

न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः।
यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥

गीता १५।६

वह परब्रह्म सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि से परे है। उसको न सूर्य प्रकाशित कर सकता है, न चन्द्रमा और न अग्नि ही प्रकाशित कर

सकता है। तथा जिस परम पद को प्राप्त होकर मनुष्य पीछे संसार में नहीं आता है, वही तप परम है।

श्रुति ने भी निषेधात्मक शैली में उसका वर्णन किया है—

अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमक्ष्यपदेश्यमेकात्म-प्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थमन्यन्त आत्मा स विज्ञेयः।

हेरत हेरत हे सखी, हेरत गया हिराय।
बूँद समानी समुद्र में, सो कत हेरी जाय॥

वह सर्वथा अदृष्य है। उसको व्यवहार में नहीं ला सकते। उसको पकड़ नहीं सकते। उसका कोई चिह्न नहीं है। वह विचार में नहीं आ सकता। उसको बतला नहीं सकते। उसका वर्णन नहीं हो सकता। वह शुद्ध तत्व है। वह शुद्ध आत्मा है। केवल यही प्रतीति उसमें सार है। वहाँ प्रपंच का झगड़ा नहीं है। वह सर्वथा शान्त है, शिव है और अद्वैत (गणना से परे) है। उसको चौथा पाद मानते हैं। वह शुद्ध आत्मा है। उसी को जानना चाहिए।

सन्त कबीर ने इसी हर—तत्व रूप चतुर्थ पाद को असम्प्रज्ञात समाधि में देखा। वह कहते हैं कि उसका ध्यान करने बैठा। ध्यान करते-करते मैं सब कुछ भूल गया ध्यान ध्याता-ध्येय तीनों ही विलुप्त हो गये। हेरते हेरते मैं ही हिरा गया—सब सुध-बुध भूल गया। फिर उस स्वरूप के विषय में मैं क्या बताऊँ—

अब वैसे अपनी इस जाग्रत अवस्था में मैं कह सकता हूँ कि असम्प्रज्ञात स्थित में आने से पूर्व जैसी मुझे प्रतीति (आभास) हो रही थी, वह इस प्रकार है—

प्रखर ध्यान (जिसे समाधि कहना ही उपयुक्त होगा) की सूक्ष्मता और गम्भीरता वाली तुरीय अवस्था में ब्रह्म के चतुर्थ पाद का निम्न होना सर्वथा संभाव्य है। योगशास्त्र की भाषा में वही मानव जीवन का चरम लक्ष्य है। वही परम निष्कृति है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि विश्वात्मा प्रथम पाद है। तेजस् आत्मा द्वितीय प्रज्ञात्मा तृतीत और प्रज्ञा से परे तुरीय आत्मा चतुर्थ पाद है। यहाँ पाद का अर्थ अवस्था, स्तर या विकास के माप दण्ड (पैमाना) मानना चाहिए। अमात्र अर्थात् तुरीयावस्था, जिसे नित्य-तृप्ति की अवस्था भी कहते हैं, जो मैत्रीभाव, तटस्थता भाव, प्रेम भाव की परिपक्वावस्था ही है, ब्रह्मानन्द, अलमस्ती, आत्म तृप्ति, मनोमय प्रभृति शब्दों द्वारा जिसकी ओर इंगित किया जाता है, वही आत्मा का चरमोत्कर्ष है। उसी को नित्य समाधि, सहज समाधि, जीवन्मुक्ति परमपद, परमानन्द, कैवल्य प्रभृति संज्ञाओं से अभिहित किया जाता है। वही विकास की चरम सीमा है वही मानव जीवन का सर्वोत्कृष्ट लक्ष्य है। उस 'अमात्र-स्थिति' के प्रति भी हमें सजग होना चाहिए। निष्ठावान होना चाहिए। क्रम-क्रम प्रतिपाद की साधना सिद्धि (सफल) करते हुए हमें ॐ के इस चतुर्थ पाद पर ही आरूढ़ होना है। इसी में जीवन का साफल्य है। चतुर्विध पुरुषार्थों की इति है।

———

नीचे ओ३म् के इन चारों पादों को, विकास की इन चारों भूमिकाओं को भली विधि स्पष्ट करने के लिए हम एक सारिणी (टेबिल) यहाँ दे रहे हैं—

ओंकार की मात्रायें	आत्मा	ब्रह्म	स्वरूप पाद	व्याहृति पाद
१. अ	विश्वपिण्ड	वैश्वानरयाविराट्ब्रह्मांड	सत्	भूः अर्थात् ऋक् ज्ञान
२. उ	तैजस्	हिरण्यगर्भयाज्योतिवलय	चित	भुवः ,, यजु-कर्म
३. म्	प्रज्ञान	ईश्वर या शबलसगुणब्रह्म	आनन्द (सबीज) या भाव भरित)	स्वः ,, साम उपासना
४. अमात्र	तुरीय	आनन्द, कैवल्य या निर्गुण ब्रह्म	आन्नद निर्बीज या भावोलय	सत्यः ,, गुणातीत—स्थित

अबस्था, शरीर, कोष, लोक एवं सृष्टि की कार्य की दृष्टि से ओ३म् के चारों पादों का विवेचन नीचे की सारिणी में दृष्टव्य है—

ओंकार की मात्रायें	अवस्था पाद	शरीर पाद	कोष पाद	लोक पाद	कार्य पाद
१. अ	जाग्रत अवस्था	स्थूल शरीर	अन्नमय तथा प्राणमय कोष	पृथ्वी, जल	सृष्टि-सर्ग
२. उ	स्वप्न अवस्था	सूक्ष्म शरीर	मनोमय कोष	अन्तरिक्ष, वायु	अहंकार,स्थिति संचालन
३. म्	सुषुप्ति अवस्था	कारण शरीर	विज्ञानमय कोष	द्यौः तेज,	महत् अर्थात् प्रलय
४. अमात्र	नेति-नेति अवस्था	समाधि	आनन्दमय कोष	पराकाश	साम्यावस्था,त्रिगुणातीत स्थिति

ओंकार साधना के कुछ सफल प्रयोग

प्रातः काल शौच, स्नान से निवृत्त होकर शुद्ध एकान्त स्थान में विधि पूर्वक आसन पर बैठना और यह संकल्प करना कि मैं आज अमुक समय से अमुक समय तक, अमुक कामना के लिए अमुक मन्त्र का जप करूँ। इस अवसर पर जिस प्रकार किसी अन्य व्यक्ति से बात की जाती है, उसी प्रकार अपने से बात करनी चाहिए। इसका परिणाम यह होगा कि जिस समय तक जप करने का संकल्प करेंगे. उसने समय तक आपका चित्त शान्तिपूर्वक जप करने में ही संलग्न रहेगा।

आरम्भ में कम से कम दस बार दीर्घ श्वास-प्रश्वास लेने चाहिए। एक बार स्थिरतापूर्वक श्वास लेकर उसे धीरे-धीरे बाहर निकालने को एक प्राणायाम समझना चाहिए। इस की संख्या को कालक्रमानुसार धीरे-धीरे बढ़ाते रहना चाहिए। फिर शान्ति मन्त्र पढ़कर थोड़ी देर ओंकार का जप करते रहना चाहिए। इस प्रकार मन्त्र जप के कुछ प्रयोग नीचे दिये जाते हैं—

दैव वाणी सुनना

यद्यपि तपस्वियों के लिए निरन्तर मन्त्र-जप करते रहना का आदेश दिया गया है, पर गृहस्थियों को 'जीविकोपार्जन' के काम धन्धों से उतना अवकाश मिल सकना कठिन है। इसलिए उनको सोने से दो घण्टा पहले हाथ-पैर और मुख, धोकर शुद्ध वस्त्र धारण करके आसन अथवा जमीन पर बिछाये हुए शुद्ध बिस्तर पर बैठकर संकल्प और प्राणायाम करना, पीछे तीन बार शान्ति मन्त्र बोलना चाहिए। जब

चित्त पूर्ण शान्त हो जाए तब संसार की सब चिन्ताओं को भूलकर आनन्दयुक्त मन और मधुर कोमल ध्वनि से 'ॐ ॐ' इस प्रकार जप करना शुरू करें। अगर जप करते-करते नींद आ जाय तो सो जायें। जप करते-करते निद्रावश हो जाने से समस्त रात्रि मन में जप हुआ करता है। रात के बीच में अथवा प्रातःकाल करने पर स्पयं अपने मन में यह भाव उत्पन्न होगा कि हम रात भर जप करते रहे हैं। इस प्रकार निद्रा शान्तिपूर्वक आती है और विना परिश्रम के ही मन्त्र जप का लाभ प्राप्त होता है। इस अभ्यास को निरन्तर करते रहने से कुछ समय पश्चात् साधक को दैवी वाणी सुनाई पढ़ने लगती है और प्रश्न का उत्तर मिल जाता है। आरोग्यता की दृष्टि से भी यह प्रयोग अत्यन्त हितकारी है।

प्रणव पूजा से कामना सिद्धि

प्रणव अर्थात् ओंकार परब्रह्म की साक्षात् मूर्ति है। ऐसी वेद, शास्त्र, पुराण आदि सभी धर्म ग्रन्थों की मान्यता है। इसलिए प्रणव का पूजन करना मनुष्यमात्र का सर्वोतम धर्म है।

इसकी विधि यह है कि प्रातःकाल स्नान-संध्यादि नित्यकर्म से निवृत्त होकर शुद्ध और पवित्र स्थान पर एक चौकी पर थाली रखकर उसमें गुलाब के फूल की पंखुडियों से 'ॐ' की आकृति बनायें और उसकी विधिपूर्वक भक्ति सहित पूजा करें। धूप, दीप, आरती, नैवेद्य आदि से सत्कार करके सामने बैठकर 'ॐ' का जप करें और ब्रह्मचर्य का पालन करें।

उज्जैन के स्व० ब्रह्मर्षि शिवदत्तजी के एक इन्दौर निवासी मित्र इस प्रकार प्रणव-पूजा करने से जाग्रत अवस्था में ही भूत और भविष्य की बातों को दैवी वाणी के रूप में सुनने लगे थे जो बाद में यथार्थ सिद्ध होती थीं।

इच्छित वस्तु की प्राप्ति

जो मनुष्य बैठे २ जप न कर सकते हों वे लेटे हुए, खड़े रहकर या चलते हुए भी जप कर सकते हैं। इन्दौर में एक दक्षिणी ब्राह्मण उठते बैठते, चलते-फिरते निरन्तर निष्काम भाव से ॐ का जप किया करते थे। उनको गाने का भी शौक था, इसलिए उन्होंने अपने जप को संगीतमय बना लिया था। वे मधुर कण्ठ से इस प्रकार गाया करते—

ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ
ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ
ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ
भज	मन	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ

इस प्रकार गाने से एक बार में छब्बीस 'ॐ' का जप होता था और गायन की सुन्दर ध्वनि से मन सर्वदा प्रसन्न रहता था। ॐ का अर्थ समझकर जप करने वाले साधक को ॐ का देवता साक्षात् दर्शन देता है और उपासक उसमें लीन हो जाता है जब उक्त दक्षिणी सज्जन से पूछा गया कि इस प्रकार 'ॐ' के गायन से आपको कोई लाभ या चमत्कार जान पड़ता है ?' उन्होंने उत्तर दिया 'और कोई चमत्कार तो मैंने नहीं देखा, परन्तु मुझे अपने जीवन में किसी बात की तंगी अथवा अशान्ति सहन नहीं करनी पड़ी। मुझे जिस वस्तु की आवश्यकता होता है, वह समय पर सहज में मिल जाती है। मेरी गृहस्थी सुखपूर्वक चलती है, यही मुझे एक महान् चमत्कार मालूम पड़ता है।'

मनोकामना की पूर्ति

सर्वप्रथम साधक को मन में यह संकल्प करना चाहिए कि, 'मैं अमुक कार्य के लिए ओंकार जप आरम्भ कर रहा हूँ। हे भगवान् ! आप दीन बन्धु, दीनानाथ हैं। मेरी मनोकामना को सिद्धि करें। आप जगत पिता हैं, हम आपकी सन्तान हैं, हम पर कृपा करें।'

इतनी बात शान्त चित्त से बोलकर शुभ दिवस, शुभ नक्षत्र, देखकर वह प्रयोग आरम्भ करना चाहिए। इसी दिन से ब्रह्मचर्य, सत्य भाषण, दान, परिग्रह का पालन करने लग जाना चाहिए। सदैव ओंकार में रहने वाले देवताओ का ध्यान करते रहना चाहिए। ऐसा दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिए कि वे देवता मेरे चारो तरफ जल, थल, आकाश में उपस्थित हैं और मेरी प्रार्थना को सुन रहे हैं, मेरी मनोकामना को अवश्य पूरा करेंगे।

इस प्रयोग के लिये कोई खुली जगह वाला एकान्त स्थान, नदी का किनारा अथवा जहाँ मनुष्यों की बस्ती न हो, ऐसा खुला हुआ जंगल अथवा खेत, अथवा किसी देवालय के समीप का खुला मैदान निश्चित करना चाहिये, जहाँ रात्रि के एकान्त में कोई आवाज सुनाई न दे, किसी तरह का हल्ला गुल्ला न हो। वहाँ पहुँचकर उत्तर दिशा की तरफ मुँह करके खड़े होना चाहिए। वहाँ उपर्युक्त रीति से संकल्प और भगवान् का स्मरण करके ऊँची आवाज में 'ॐ ॐ ॐ' अक्षर का लम्बा उच्चारण करते हुए अन्त में 'म' का उच्चारण करना चाहिए।

जिस प्रकार घण्टा में से धीरे-धीरे ध्वनि उत्पन्न होती है, उसी प्रकार ॐ के उच्चारण को बराबर लम्बा करते जाना चाहिए जो ऐसा न बन सके तो इसी प्रकार १ हजार बार 'ॐ' का उच्चारण करना चाहिए। इतना न कर सके तो ५०० या २५० बार ही उच्चारण करे। इस प्रकार जितनी अधिक संख्या में उच्चारण को बढ़ाया जा सके, उतना ही शुभ है। हमें समझना चाहिए कि यह संसार बिना तार के तार का एक विशाल स्टेशन है अरे ! यह तो एक कर्म क्षेत्र है। खेत में जैसा अनाज- फल-फूल बोया जायगा वैसा ही पैदा होता है उसी प्रकार यदि हम आकाश, वायु, तेज आदि पंचभूतों के क्षेत्र में भगवन्नाम के बीज बोयेंगे, वैसे ही उनके फल प्राप्त होंगे।

जब हम 'ॐ' शब्द द्वारा प्रभु से कुछ कहते हैं तो प्रति ध्वनि की तरह उसका श्रेष्ठ उत्तर हमको अवश्य मिल जायेगा। भगवान् तो अणु परमाणु तक में सर्वत्र व्याप्त हैं। वे कुछ सुनते हैं, सब कुछ देखते हैं। वे हमारी प्रार्थना को सुने बिना नहीं रह सकते। इसलिये दृढ़ श्रद्धा रखकर ओंकार का जप नियमित रूप से करते रहें। थोड़े ही दिनों में आपके लिए ऐसे संयोग मिलने लगेंगे कि जिनसे आपकी मनोकामना पूरी हो जायेगी। शास्त्रकारों ने, मुनि-ऋषियों ने शास्त्रों और मन्त्र-ग्रन्थों में जो कुछ लिखा है, वह बिल्कुल ठीक है, पर उसे आचरण में लाने वाले दृढ़ श्रद्धायुक्त व्यक्तियों की कमी है। बहुत से मनुष्य ऐसे प्रयोग थोड़े दिनो तक करते हैं, और जब कोई फल निकलता नहीं देखते तो उसे असत्य समझकर त्याग देते हैं। जैसे किसी जमीन में बीज बोया हो, उसमें अच्छा खाद डाला हो और भरपूर जल से सींचा हो तो उसमें बढ़िया फसल अवश्य होती है। पर अगर जमीन में बीज बोकर और खाद देकर, थोड़े समय ही सिंचाई की जाय और तभी अन्नकी आशा की जाय तो वह कैसे फसल हो सकती है ? यह देखकर अगर सिंचाई का कार्य बन्द कर दिया जाय तो सब मेहनत व्यर्थ हो जायगी।

इसी प्रकार थोड़े दिन ओंकार का जप करने के बाद कोई फल होता न देखकर यदि आप इस पवित्र कार्य को छोड़ दोगे तो आपका श्रम और समय व्यर्थ हो जाएगा और मनोकामना की पूर्ति भी संभव नहीं होगी। इसलिए यह समझना पड़ना है कि यदि आप ओंकार का जप आरम्भ करें तो जब तक आपकी मनोकामना सिद्ध हो तब तक उसे करते ही रहें। भगवान् भी भक्त की श्रद्धा की परीक्षा लेते हैं। प्रहलाद, ध्रुव, नरसी मेहता, मीराबाई आदि भक्तों को कसौटी पर खूब कसा गया, उनको अनेक संकट भी सहन करने पड़े पर जब उनकी अचल श्रद्धा को देखा तो उनको भगवान् का दर्शन—उनका पूर्ण अनुग्रह भी प्राप्त हुआ। इसलिए अगर भगवान्

के भक्त बनकर लोक-परलोक में सच्चा सुख प्राप्त करना हो तो श्रद्धा पूर्वक ओंकार उपासना परम कर्तव्य है।

देवी-देवताओं का साक्षात्कार

ओंकार अथवा अन्य देवी-देवताओं के उपासकों को अपने इष्टदेव के दर्शनों की इच्छा हो तो यह स्वाभाविक ही है। पर अधिकारी बने बिना, इसके योग्य पात्र बने बिना अर्थात् शुद्ध सतोगुणी जीवन यापन किये बिना यह सम्भव नहीं होता। राजसिक, तामसिक जीवन व्यतीत करने वाला अथवा अन्य पापकर्म करने वाला भगवान् का साक्षात्कार कैसे प्राप्त कर सकता है। इसलिए सर्वप्रथम अपने स्वभाव को शुद्ध और सात्विक बनाकर सत्य, अहिंसा, परोपकार, दया, क्षमा आदि जैसे सद्गुणों को धारण करके योग्य अधिकारी बनना चाहिए और तब इष्ट देव के दर्शनों अथवा उनके साथ वार्तालाप का प्रयोग करना चाहिये जिसकी विधि इस प्रकार है:—

उपासक को 'ॐ' का (अथवा अन्य किसी देवता का दर्शन करना हो तो उसका) चित्र सामने रखना चाहिए। पहले अपना नियमित संध्या वन्दन करके यह प्रयोग आरम्भ करें। इसके लिए एकान्त कमरा या कोठरी का होना आवश्यक है। चित्र से लगभग एक हाथ की दूरी पर एक घी का दिया इस प्रकार रखना चाहिए कि उसका प्रकाश चित्र के बीचोंबीच पड़े। उसके सामने बैठकर दीपक की शिखा के ऊपरी भाग को देखते रहें और इष्टदेव के दर्शनों की प्रार्थना करते रहें। एकटक देखने से आँखों में जल भर आवे तो उसको पोंछकर फिर देखते रहें। दीपक को हवा नहीं लगनी चाहिए और उसकी शिखा किसी प्रकार हिलनी नहीं चाहिए। इसलिये कमरे के दरवाजे, खिड़की आदि को ठीक ढङ्ग से बन्द कर लेना आवश्यक है। यह प्रयोग प्रातःकाल सूर्योदय से पहले अथवा रात्रि में ११ बजे से १ बजे तक करना चाहिए। रात्रि के समय पूरी शान्ति रहती है इसलिये वह समय सबसे

अधिक ठीक रहता है। इस अभ्यास से कुछ समय में इष्टदेव के दर्शन होने लगते हैं और प्रश्नों के उत्तर भी मिलने लगते हैं।

पर इतनी सावधानी अवश्य रखनी होगी कि जिन लोगों की आँखें कमजोर हों वह इस दीपक वाले प्रयोग को न करें, नहीं तो अन्धता का खतरा रहेगा। इसी प्रकार जिनका जीवन सात्विक नहीं है, जिनमें भगवान् के प्रति, देवी-देवताओं के प्रति दृढ़ श्रद्धा, आस्तिकता का भाव नहीं है, उनको भी यह प्रयोग करके अपना समय व्यर्थ नहीं गवांना चाहिए। यह केवल हार्दिक और अचल श्रद्धा के आधार पर ही सफल हो सकता है।

एक वर्ष में परब्रह्म दर्शन

ओंकार (प्रणव) के उपासकों के लिए हमारे प्राचीन ऋषि मुनियों ने स्वानुभव से सिद्ध किया है कि यदि यथाविधि प्रणवोपासना की जाय तो स्वार्थ सिद्धि साधन हो जाता हैं। पर जो साधक धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष इन ४ पदार्थों में से केवल मोक्ष प्राप्ति की इच्छा रखते हैं, जिन को जन्म-मरण के रहस्य का ज्ञान हो गया हो और इस कारण जिनकी सब इच्छा मृत्यु को प्राप्त हो गयी हों, जिनको परमात्मा के सिवाय और कोई चीज प्रिय न हो, उनके लिए संन्यास उपनिषद् में कहा गया है:—

सर्वेषामेव पापानां संघाते समुपस्थिते।
तारं द्वादश साहस्रं संच्छादनं हि तत् ॥१०३
यस्तु द्वादशः प्रणवं जपतेऽन्वहम्।
तस्य द्वादशभिर्मासैः परब्रह्म प्रकाशते ॥१०४

अर्थात् 'जब अनेक पापों का उदय हो तब (१२००० बारह हजार) प्रणव (ओ३म्) का जप करने से सब पाप दूर हो जाते हैं। जो साधक शांति से विधिपूर्वक एकान्त में, एक चित्त से, भगवान् के दर्शनों की तीव्र इच्छा रखकर १२००० प्रणव का एक वर्ष तक जप करता रहता है, उससे भगवान् प्रसन्न होकर उसी अवसर पर प्रकट होजाते हैं।

प्रणव (ॐ) को भगवान् का नाम ही समझना चाहिए। 'योग-सूत्र' में भी कहा गया है कि प्रणव (ॐ) के जप से ईश्वर का चैतन्य उदय होता है और सब व्याधियों का नाम हो जाता है।"

बारह महीनों में समस्त पापों के क्षय करने का यह कैसा सरल और सुन्दर उपाय है। पर बड़े-बड़े श्रीमान् सब प्रकार की सुविधायें होने पर भी एक वर्ष का समय निकाल कर पर्वत समान पापों से छुटकारा पाने का उपाय नहीं करते। इससे विदित होता है उनमें विषय भोग और शारीरिक सुख की आकांक्षा ने ही डेरा डाल रखा है। पर मध्यम वर्ग के लोग शास्त्र के वचनों पर जो विश्वास करके भगवान् प्राप्ति के उपरोक्त मार्ग को ग्रहण करेंगे, उनको अवश्य परमात्मा की प्राप्ति हो सकेगी। जीवन की सार्थकता सांसारिक भोगों में नहीं है वरन् भगवान् का सानिध्य प्राप्त करने में ही है।

नवग्रह-शांति

अनेक लोग यह शिकायत करते रहते हैं कि हमारी जन्मकुण्डली में ग्रह अनिष्टकारक पड़े हैं, इससे हमको प्रायः शारीरिक, मानसिक आर्थिक हानि होती रहती है, अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं। इसके लिए पण्डितों द्वारा जप कराके ग्रह शांति का उपाय बताया जाता है, पर इससे लाभ होने की थोड़ी ही संभावना होती है, और अनेक बार मन्त्र जप करने वाले अपना जाल फैला कर बहुत अधिक धन ठग कर लेते हैं। इसलिए यहाँ एक ऐसी विधि बतलाई जाती है, जिससे आप स्वयं जप द्वारा ग्रहों के हानिकारक प्रभाव से बच सकते हैं।

जप करने से शक्तियाँ सन्तुष्ट और अनुकूल होती है, उसमें कोई सन्देह नहीं, 'जप चिन्तामणि' नामक पुस्तक के लेखक का मत है कि जन्मकुण्डली के १२ कोण या 'भवन' में पड़ने वाले ग्रहों का शांति इष्टदेव का जप करने से होती है।

(१) प्रथम भवन का शरीर स्थान मन्त्र जप से शुद्ध होता

है। शरीर में रजोगुण और तमोगुण का ह्रास होकर सत्वगुण की वृद्धि होती है, व्याधी के बीज का नाश होता है। कल्पना का प्रकार घटता है, शुभ स्वप्न आने लगते हैं, स्वप्न में देवताओं के दर्शन होने लगते हैं, उनके साथ वार्तालाप होने लगता है। जब ऐसा अनुभव हो तब समझना चाहिए कि सत्वगुण की वृद्धि होने लगी है।

(२) दूसरे भवन का धन स्थान भी जप से शुद्ध होता है। इसको कुटुम्ब-भवन भी कहते हैं। धन की प्राप्ति होती है और यदि वह मनुष्य ऋणग्रस्त हो तो उससे मुक्त हो जाता है। कुटुम्ब का कोई व्यक्ति विदेश गया हो और उससे वियोग हुआ हो, अथवा किसी के साथ अनबन हुई हो उसका संयोग होता है कौटुम्बिक सुख की वृद्धि होती है।

(३) तीसरा भवन पराक्रम का स्थान है। इसको भ्रातृ-स्थान भी कहते हैं। मन्त्र जप करने से इसकी शुद्धि होकर जो कार्य पहले असम्भव जान पड़ता था, वह सहज साध्य जान पड़ने लगता है। बन्धुओं का अपने से द्वेष हो तो वह मन्त्र जप के प्रभाव से दूर होकर उनके हृदय में प्रेम-भाव उत्पन्न होता है।

(४) चौथा भवन मातृस्थान अथवा सुख स्थान कहा जाता है। इसका जप करने से मानसिक क्लेश दूर होकर सुख की वृद्धि होती है।

(५) पाँचवा भवन पुत्र-स्थान या विद्या स्थान कहा जाता है। मंत्र के प्रभाव से अपुत्रवान् पुरुष के सन्तान होती है और जो पुत्र प्रतिकूल आचरण वाला हो तो अनुकूल बन जाता है। पुत्र मूर्ख हो तो उसे विद्याभ्यास की तीव्र इच्छा होने लगती है। उसकी स्मरण शक्ति वृद्धि पाती है, पिता को संतोष होता है। पुत्र पिता का आज्ञाकारी सेवक जैसा बन जाता है।

(६) छठवां भवन शत्रु-स्थान है। वह मन्त्र जप से शुद्ध होकर बाहर के शत्रु और भीतर के शत्रुओं (काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि)

पर विजय पाता है। शत्रु मित्र की तरह बात करने लगते हैं। असाध्य व्याधियाँ तत्काल दूर होती हैं।

(७) सातवाँ भवन जाया-स्थान है। इसमें जप के प्रभाव से अविवाहित पुरुष या कन्याओं का विवाह हो जाता है। स्त्री प्रतिकूल हो तो अनुकूल या आज्ञाकारी बनती है।

(८) आठवाँ भवन मृत्यु-स्थान है। इस पर जप करने से अकाल मृत्यु और अल्प आयु टल जाती है और पूर्ण आयु का उपभोग करने का सौभाग्य प्राप्त होता है।

(९) नौवाँ भवन धर्म-स्थान है। इसका साधन करने से देवता से साक्षात्कार होता है। अधर्माचरण से प्रवृत्ति हटकर धर्माचरण की ओर जाती है। वह धार्मिक कार्य करता है। और सुखी होता है।

(१०) दसवाँ कर्म-स्थान कहा जाता है। इसे पितृ स्थान भी कहते हैं। पापकर्म वाला इसके जप से छुटकारा पाता है। श्रेष्ठ कर्म करके जीवन को शुद्ध रीति से व्यतीत करता है। श्रेष्ठ कर्म करने की बुद्धि उत्पन्न होती है।

(११) ग्यारहवाँ लाभ-स्थान है। जब वह जप द्वारा शुद्ध हो जाता है तो अनेक प्रकार के लाभ होते हैं। धन, धान्य, गृह, भूमि आदि का लाभ होता है। संसार में से दुःख दारिद्रय दूर होता है और सुख की वृद्धि होती है।

(१२) बारहवाँ व्यय-स्थान कहलाता है। इसके जप करने से दान, धर्म, परोपकार आदि शुभ कर्मों में धन का व्यय होता है। रजोगुण और तमोगुण का नाश होकर शुद्ध सत्वगुण होने से जीवन साथक प्राप्त होती है।

निसन्देह मन्त्र जप में अद्भुत शक्ति है। जीवन में जिस मनुष्य को मन्त्र जप करने की धुन लगती है, तीव्र इच्छा होती है, उसके समान भाग्यवान् और कोई नहीं। अनेक ऐसे व्यक्ति अब भी पाये

जाते हैं जो गुरु मन्त्र का नियमित जप करके सुख सम्पन्नता का जीवन विता रहे हैं।

स्वप्न में प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने का उपाय :—

स्वप्न कैसे आते हैं, इसके कार्य-कारण का सच्चा रहस्य अभी तक किसी को ज्ञात नहीं हो सका है, और आगे चलकर भी नहीं मिल सकेगा। परन्तु अनुभवी विद्वानों ने ऐसी विधियाँ ढूढ़ निकाली हैं, जिनसे सच्चे स्वप्न देखे जा सकते हैं और भूत, भविष्यत् वर्तमान का हाल स्वप्न द्वारा ही जाना जा सकता है।

मनोविज्ञान शास्त्र में बताया गया है कि हम जैसे विचार करके सोते हैं वैसा ही स्वप्न दिखाई पड़ता है। यदि अन्तरात्मा को किसी खास विषय की सूचना देकर निद्रावश हों तो उनका पालन होता है, किसी कठिन प्रश्न का उत्तर जानना हो तो वह मालूम हो जाता है। अनेक लोग सोते समय शान्त चित्त से अपने मन में आत्मा से प्रार्थना करते हैं कि आज मुझे चार बजे जगा देना। ऐसा करने से कठिन समय पर उनकी आँखें खुल जाती हैं।

इसका कारण यह बताया जाता है। अपना गुप्त मन असीम शक्तिवान् और सर्व व्यापक है। हम जो प्रश्न करते हैं, उनका उत्तर निद्रा में स्वप्न रूप में मिल जाता है। हमारे देश में स्वप्न का सम्बन्ध किसी देवता से होता है। मनुष्य का जो इष्टदेव होता है, उसका स्मरण करके जब उत्तर की प्रार्थना की जाती है तो स्वप्न में वही देव उत्तर देता है।

स्वप्न में किस प्रकार उत्तर मिलता है, इसका उदाहरण देते हुए एक अनुभवी सज्जन ने बतलाया है कि 'मेरा झुकाव भक्ति मार्ग की ओर हुआ, पर मैं एक निश्चित मार्ग पर न चलकर विभिन्न देवी देवताओं की पूजा-उपासना करने लगा। कुछ समय बाद एक साधु ने कही तुम 'ॐ कृष्णाय नमः स्वाहा' का जप किया करो। फिर एक संन्यासी से

भेंट हुई तो उन्होंने बताया कि एक ही मन्त्र में 'नमः' और 'स्वाहा' दोनों को नहीं बोलना चाहिए। इससे मन में बड़ी शंका पैदा हो गई। तब मैं परमात्मा से प्रार्थना करने लगा कि मुझे किसी ठीक मन्त्र का उपदेश दें। कुछ समय बाद मैं स्वप्न में एक सभा में पहुँचा, जिसमें एक-सी मुखाकृति के श्वेत वस्त्र धारण किये १००-१५० तरुण व्यक्ति बैठे थे। वे सब उठकर मेरे मुँह के सामने 'ॐ' 'ॐ' 'ॐ' बोलने लगे। निद्रा भंग होने पर जब मैंने स्वप्न की बात पर विचार किया तो स्पष्ट जान पड़ा कि मुझे 'ॐ' का ही जप करना चाहिए।

साधना स्थल का चुनाव

साधना स्थल का अपना विशेष महत्व है। साधना के अनुकूल संस्कारित भूमि पर जप करने से शान्ति व सफलता मिलती है। असंस्कारित व तमोगुणी विचारों वाली असुर भूमि पर जप करने से असफलता ही हाथ लगती है, वहाँ मन ही नहीं लगता। अतः अपनी परिस्थितियों और सुविधा के अनुसार स्थान का चुनाव विशेष सावधानी से करना चाहिए।

पर्वत शिखर और गिरि कन्दराओं में साधना का विशेष महत्व है। ऋषि मुनि आत्मचिन्तन, अनुसंधान और उत्थान के लिए एकान्त पर्वतीय प्रदेश ही चुनते रहे हैं। वहाँ पर घोर तपस्यायें करके वह आत्म कल्याण की उच्चतम स्थिति तक पहुँचे हैं, मानव उत्थान के निश्चल सिद्धान्तों की खोज की है जो आज तक विश्व के लिए प्रकाश का पुंज बने हुए हैं और इस विकसित बुद्धिवादी युग के लोग उन्हें अत्यन्त श्रद्धा से देखते हैं। साधना के फलस्वरूप जो सिद्धियाँ प्राप्त

होती थीं, वह आज असम्भव-सी लगने लगी हैं क्योंकि साधना के प्राचीन नियम पालन करना कठिन हो गया है।

ऋषियों के ऊँचे पर्वतीय प्रदेशों को अपना साधना स्थान चुनने का विशेष कारण था, जिसे आधुनिक चिन्तकों ने भी स्वीकार किया है। जो लोग बद्रीनारायण आदि पर्बतीय यात्राओं पर गये हैं, वहाँ पर कुछ अध्ययन, मनम, चिन्तन और साधना की है, वह जानते हैं कि अपर्वतीय स्थानी की अपेक्षा ऊँचे पहाड़ी स्थानो पर मन सहज में ही एकाग्र हो जाता है, उलझी गुत्थियाँ जल्दी सुलझने लगती हैं। आत्म अनुसंधान में सहयोग मिलता है और विचारों में एक अनोखा प्रवाह आता दिखाई देता है। ऐसा लगता है कि मौलिक चिन्तन के लिए ईश्वर ने हिमालय की ऊँची कन्दराओं को, विशेष रूप से बनाया है क्योंकि अनुभव बताता है कि जो चितन वहाँ सम्भव है, वह कोलाहल वाले नगरों में नहीं हो सकता।

नीचे के वातावरण में विचारों का गुप्त प्रवाह पूरी तरह ओत-प्रोत रहता है। काम, क्रोध, लोभ, भ्रष्टाचार, अहंकार, राग, द्वेष, शत्रुता आदि की विचार धारायें विभिन्न मस्तिष्कों से निकल कर वायु मण्डल में प्रवेश करती रहती हैं। नीचे के वातावरण में उन्ही का प्रभाव अधिक रहता है क्योंकि अधिकांश व्यक्ति इन्हीं विचारों से प्रभावित रहते हैं। निर्बल मन के व्यक्ति पर यह आक्रमण करते हैं और शीघ्र ही अपने पक्ष में कर लेते हैं। यही कारण है कि ऐसे व्यक्ति बुरे संग से जल्दी ही कुप्रवृत्तियों को ग्रहण कर लेते हैं सशक्त मन के व्यक्ति ही इन आसुरी शक्तियों का विरोध कर पाते हैं और निरन्तर संघर्ष में रह कर उन्हें पराजित करतें हैं।

आधुनिक मनोविज्ञान का भी यही मत है कि वायु मण्डल के निचले भागों में अधिक वायु का प्रभाव रहता है। जहाँ लाखों व्यक्तियों के विभिन्न प्रकार के विचारों की लहरें व कम्पनें चलती रहती हैं। अधिकांश सामान्य जनता का स्तर निम्नकोटि का होता है और स्व-

भावतः उनके मस्तिष्क से स्वार्थपरता के भौतिकवादी विचार ही निकलते और वह कमजोर मस्तिष्क वालों को अपना पक्षपाती बना लेते हैं। विरले विवेकी ही व्यक्ति उनका मुकाबला कर पाते हैं। ऊँचे वायुमण्डल में यह प्रभाव कम पड़ता है, इसलिये स्वतन्त्र विचार धारा को स्थापित करने में सहायता मिलती है।

कुछ प्रसिद्ध लेखकों का भी यह मत है। अँग्रेजी के प्रसिद्ध लेखक डा० सेमुअल जानसन का यह अनुभव था कि नीचे के कमरों में मन भारी रहता है। अच्छा लेखन ऊपर के कमरों में ही हो सकता है। उन्हें साहित्य सृजन के लिये लन्दन में तीसरी व चौथी मंजिल पर कमरा लेना पड़ा था, उनके प्रसिद्ध साहित्य की रचना ऊपर के ही कमरों में हुई है, प्रसिद्ध उपन्यासकार सर वाल्टर स्काउट का भी यही अनुभव है। उनके प्रसिद्ध उपन्यास भी ऊपर की मंजिल के कमरे में ही लिखे गये हैं।

उपरोक्त कारणों से पर्वतीय यात्राओं और साधनाओं को विशेष महत्व दिया जाता है। इसका कारण स्पष्ट है कि वहाँ पर चित्त की बाह्य वृत्तियों को अन्तर्मुखी करने में विशेष सहायता मिलती है।

योगाभ्यास के आधुनिक आश्रमों में साउन्ड प्रूफ कमरे बनाये गये हैं जहाँ वन, पर्वत जैसी शान्ति, एकान्त व कोलाहल से रहित स्थिति का अनुभव होता है। ऐसे स्थान पर साधना में सफलता का कोई सन्देह ही नहीं रह जाता।

गंगोत्री, जमनोत्री को तपोभूमि स्वीकार किया जाता है। उच्चकोटि के साधक उच्च साधनाओं का अभ्यास वहाँ करते हैं। उत्तर काशी भी उपयुक्त स्थान है। स्वामी दयानन्द ने भी इसे ध्वनियों के लिये अच्छा कहा है। स्वामी रामतीर्थ ने भी यहाँ तपस्या की थी। टेहरी भी इनका साधना स्थल रहा है। स्वामी दयानन्द ने केदार, बद्रीनाथ की भूमि को रमणीक व पवित्र बताते हुए साधना के लिए अनुकूल बताया है। ऋषिकेश से लेकर गरुड़ चट्टी तक, ऋषि

केश में गंगा तट के सभी आश्रम स्वर्ग-आश्रम और उसके ऊपर नील-कण्ठ का पर्वत, लक्ष्मण झूला से गरुणचट्टी तक का सारा स्थान जप के लिए श्रेष्ठ है। हिमाचल प्रदेश में योगेन्द्रनगर, कांगड़ा में वैजनाथ और देहरादून के निकटवर्ती पर्वत स्थल भी उपयुक्त हैं। जिन पर्वत-मालाओं पर ऋषियों ने घोर तप किये थे, उनका विशेष महत्व है।

नदी तट संगम की शीतलता में जप करना श्रेष्ठ कहा है। जल में बैठकर साधना करने पर शीघ्र सिद्धि मिलती है। प्रज्ञा चक्षु स्वामी विरजानन्द ने ऋषिकेश में गंगाजल में बैठकर गायत्री जप किया था। उन्होंने किसी विद्यालय में शिक्षा प्राप्त नहीं की परन्तु वह शास्त्रों के पण्डित बने।

यह साधना का स्वाभाविक स्थान है वहाँ सहज में ही बाह्य वृत्तियाँ अन्तर्मुखी होने लगती है। वहाँ नगर का अपवित्र वातावरण नहीं हैं, कौलाहल नहीं है, अशान्ति उत्पन्न करने वाला कोई साधन नहीं होता। इसलिये वहाँ जप में मन लगता है और एकाग्रता शीघ्र प्राप्त होती है। गृहस्थी, व्यापार और नौकरी के व्यस्त जीवन से दूर यहाँ चिंतन मनन का उपयुक्त अवसर मिलता है। एक सिद्ध महात्मा कहा करते थे कि गृहस्थी को भी वर्ष में एक मास के लिए साधना, चिन्तन, मनन की साधना के लिए वन में निवास करना चाहिए क्योंकि वहाँ के पवित्र वातावरण में सिद्धि की ओर तीव्र गति से पग बढ़ता है।

ऋषि गुफाओं में रहकर साधना रत रहते थे। गुफा में बाह्य वातावरण का प्रभाव नहीं रहता, शान्ति का वहाँ अखण्ड साम्राज्य रहता है। एकाग्रता और ध्यान के लिये यह स्थान बहुत ही उपयुक्त रहता है। आजकल अनेकों आश्रमों में विशेष प्रकार से गुफा बनाई गई हैं। वहाँ साधक को अनुकूलता अनुभव होती है।

ऋग्वेद (८।६।२८) में भी इसकी पुष्टि करते हुए कहा है:—

उपह्वरेगिरीणसंगमे च नदीनाम् धियो विप्रो ऽजायत ॥

पर्वत की गुफाओं और सरिताओं के संगम पर यदि ध्यान साधना की जाए तो साधक सच्चे रूप में ब्राह्मण बनता है।

देवालय में नित्य कथा, सत्संग होता है, अनेकों साधक वहाँ साधना करते है, प्रातः सायं आरती होती है, समय-समय पर कीर्तन आदि के आयोजन होते रहते हैं जिससे वातावरण दिव्य बना रहता है इसलिए वहाँ साधना शीघ्र लाभदायक होती है परन्तु मन्दिर में भी जहाँ दर्शनार्थियों की भीड़ रहती है, उत्तम परिणामों की आशा नहीं करनी चाहिए। वहाँ पर भी एकान्त, शांत, स्थान होना अनिवार्य है।

पर्वत, शिखर, वन, गुफा, सरिता तट अथवा देवालय की महत्ता का प्रतिपादन करने का यह भाव नहीं कि घर पर की गई साधना का कुछ फल नहीं होता मुख्य सिद्धान्त तो यह है कि जहाँ चित्त की एकाग्रता में सहायता मिलती है, वही स्थान उसके उपयुक्त है। घर का साधना स्थल यदि एकांत, शांत और दिव्य वातावरण से ओत-प्रोत है और कभी-२ वहाँ हवन होता रहता है तो उसी स्थान से अभीष्ट लाभ की आशा की जा सकती है। वहाँ परिवार के सदस्यों का आना कम हो, कोलाहल कम हो, ताकि साधना में बाधा न पड़े, निरन्तर साधना करते रहने पर वह स्थान भी संस्कारित होने लगता है और फिर कम समय में अधिक लाभ की भी सम्भावना हो सकती है। सिद्धपीठ, पुण्य क्षेत्र और तीर्थ पर साधना करने पर इसलिए सिद्धि मिलती है क्योंकि उस भूमि पर सिद्धिसाधकों ने लम्बे समय तक घोर तपश्चर्याएँ की हैं उनका प्रभाव वह भूमि ग्रहण किये रहती है। जिस भूमि पर जितनी साधना की जाती है, वहाँ पर उतनी ही शीघ्रता से सिद्धि मिलती है।

अतः ओंकार साधक को साधना के लिए ऐसा स्थान चुनना चाहिए जहाँ कोई बाधा न हो और चित्त की एकाग्रता सहज हो जाती है।

ओंकार साधना के विधि संकेत

(१) प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में उठकर शौच आदि से निवृत्त होकर स्नान कर स्वच्छ वस्त्र धारण करें और किसी बगीचे, सरिता के तट पर या अपने घर के स्वच्छ कमरे में साधना के लिए स्थान ग्रहण करे। सामने चौकी पर ओंकार और दीक्षा गुरु का चित्र होना चाहिए। यदि मूर्ति पूजा पर आस्था न हो तो ध्यान के लिए घृत का दीपक जला लेना चाहिए। धूप, अगरबत्ती से वातावरण को सुगन्धित करे। स्थान ऐसा चुनना चाहिए जहाँ कोयले आदि का विषाक्त धुँआ न आता हो क्योंकि साधक को प्राणायाम करना होगा। उसका उद्देश्य तो फेफड़ों में स्वच्छ वायु पहुँचाना है यदि विषैला धुँआ उधर आता होगा तो लाभ की जगह हानि ही होगी। साधना के अनुसार आसन का चुनाव करना चाहिए। हर प्रकार की साधना के लिए अलग-२ आसनों का विधान रहता हैं। आसन अपना अलग होना चाहिए जिस पर किसी दूसरे साधक ने जप किया हो, उस पर नहीं बैठना चाहिए। भूमि पर बैठकर साधना करने से दुःख, बांस पर दरिद्रता, पत्थर पर बैठकर जप करने से व्याधि, छिद्रयुक्त काष्ठ पर दुर्भाग्य तृण पर धन व यश का नाश और पत्तों पर बैठ कर जप करने से चित्त में भ्रम होता है। अतः अपनी साधना के लिए उसके अनुरूप विशिष्ट आसन का चुनाव करना चाहिए। साधारणतः कुशः के आसन पर बैठकर जप करना चाहिए। सात्विक उपासना के लिए वह श्रेष्ठ माना जाता है।

(२) दिशा विचार भी आवश्यक है। अपने मन से किसी भी दिशा में बैठकर जप नहीं करना चाहिए भिन्न उद्देश्यों के लिये भिन्न दिशाओं का निर्देश किया गया है। जैसे-उड्डीश तन्त्र के अनुसार वशीकरण में पूर्वमुख, धन प्राप्ति के लिये पश्चिम को, आयु रक्षार्थ,

शांति व पुष्टि कर्म में उत्तर को मुख करके जप करना चाहिए। जप करते समय पैरों को फैलाकर बैठना, बातें करना, नख काटना, रस्सी तिनका या डोरा तोड़ना, बालों को बाँधना आदि कार्य निषिद्ध माने गए हैं। यह भारद्वाज स्मृति १।२।८ में लिखा है—

(३) शास्त्र की आज्ञा है कि—

सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च।
विशिखो व्युपवीतश्च यत् करोति न तत् कृतम् ॥

अर्थात् सदैव यज्ञोपवीत ग्रहण करना चाहिए और सदा शिखा में ग्रन्थि लगाये रहना चाहिए। इनके अभाव में जो कार्य सम्पादन किया जाता है, वह असफल रहता है।'

(४) जप की संख्या निश्चित होनी चाहिए। इसे माला के माध्यम से गिनना चाहिए। भिन्न साधना के लिए भिन्न प्रकार की माला निश्चित की जाती है। अतः साधना के लिए उपयुक्त माला ही ग्रहण करनी चाहिए। प्रातःकाल में नाभि, मध्याह्न में हृदय और संध्याकाल में नासिका के निकट हाथ रखकर जप करना चाहिये।

(५) जप के पूर्व संध्या और मुद्राओं का प्रदर्शन करना चाहिए। संध्या आदि के बिना यदि जप आरम्भ किया जाएगा तो मन इधर-उधर उछलकूद करेगा, उसे एकाग्र करना कठिन पड़ जायेगा। जप साधना के पूर्व मन को कुछ उलझना आवश्यक है अन्यथा एकाग्रता में बाधा उपस्थित होगी।

(६) सुयोग्य गुरु से दीक्षा अवश्य लेनी चाहिए। केवल पुस्तकों से पढ़कर साधना करने से अभीष्ट सिद्धि नहीं होती क्योंकि साधना क्षेत्र की बाधाओं और उनके निवारण के उपायों से गुरु भली प्रकार परिचित होते। साधक की प्रकृति और क्षमता के अनुसार वह उपयुक्त निर्देश देते हैं और त्रुटियों का परिमार्जन भी साथ-साथ करते चलते हैं जिससे मार्ग प्रशस्त जरने में सुविधा रहती है। यदि मार्ग की रुकावटों

को दूर करने वाला मार्ग-दर्शक न हो तो साधना सिद्धि में देरी होना स्वाभाविक है।

साधना में अनेकों विघ्न आते हैं। उनसे निराश नहीं होना चाहिए। शीघ्र लाभ प्रतीत न होने पर साधना पर अविश्वास नहीं करना चाहिये वरन् अपनी साधना की कमियों का गम्भीरता पूर्वक निरीक्षण करना चाहिए और उन्हें दूर करके पुनः साधना में लग जाना चाहिए। साधना में दृढ़ता पूर्वक लगे रहना आवश्यक है।

(७) नित्य प्रति निर्धारित समय पर ही साधना करनी चाहिए। समय बदलना नहीं चाहिए। मन के चंचल स्वभाव से वह इधर-उधर घूमता रहता है, उसे बार-२ ओंकार के चित्र पर जमाने का अभ्यास करना चाहिए।

(८) साधना के लिए ऐसे आसन में बैठना चाहिए जिसमें अधिक देर तक बैठने में कष्ट नहो। पालथी मारकर सीधे ढङ्ग से बैठना उपयुक्त रहता है। मेरुदण्ड सदा सीधा हो ताकि सुषुम्ना में प्राण का प्रवाह सुविधा पूर्वक हो सके।

(९) साधारणतः तुलसी की माला का प्रयोग होता है। सकाम साधना में चन्दन की माला और तमोगुणी साधनों में रुद्राक्ष की माला युक्त होती है।

सामूहिक साधना में या जहाँ और व्यक्तियों का आना जाना हो माला वस्त्र से ढक लेनी चाहिए या गोमुखी में रखनी चाहिए। एकान्त स्थान होने पर इसे खुले रूप से जपा जा सकता है। जप इस तरह से करना चाहिए कि कण्ठ से ध्वनि तो होती रहे और होंठ भी हिलते रहें परन्तु पास में बैठा व्यक्ति उसे सुन न सके।

एक माला पूरी होने पर सुमेरु का उल्लंघन नहीं किया जाता बल्कि उसे मस्तक तथा नेत्रों से पीछे की तरफ उल्टाकर पुनः जप आरम्भ कर दिया जाता है।

(१०) वैसे तो साधना से उठना उपयुक्त नहीं माना जाता परन्तु मलमूत्र त्याग या किसी विवशता में उठना पड़े तो हाथ-मुँह धोकर पुनः साधना पर बैठना चाहिए और एक माला प्रायश्चित्त स्वरूप अतिरिक्त जपनी चाहिए।

(११) गोपथ ब्राह्मण (१।१।२२) के अनुसार 'साधक उस ओंकार का १००० बार जप करे, उसका मुख पूर्व की ओर हो, साधनाकाल में मौन रहे, तीन रात्रियों का उपवास करे, आसन कुशा का हो। इस तरह करने से उसके सब काम सिद्ध होते हैं।'

(१२) गीता प्रणव साधना के साथ इन्द्रिय संयम को आवश्यक मानती है यथा 'सब इन्द्रिय रूपी द्वारों का संयम कर और मन का हृदय में विरोध कर मस्तक में प्राण ले जाकर समाधि योग में स्थिर होने वाला उस एकाक्षर ब्रह्म ॐ का जप और मेरा स्मरण करता हुआ जो मनुष्य देह छोड़कर जाता है, उसे उत्तम गति मिलती है (८।१२।१३)।

(१३) अमृतनादोपनिषद् में विशेष नियमों के पालन का आग्रह किया गया है। योगी को भय, आलस्य, अधिक निद्रा, अधिक भोजन, अधिक जागरण, निराहार रहना और क्रोध करना त्याज्य है। इस प्रकार नियम पूर्वक नित्य अभ्यास करने वाला योगी स्वयं ज्ञान प्राप्त कर लेता है। चार मास में वह देव दर्शन करने लगता है, पाँच मास में देवताओं के समान सामर्थ्य वाला हो जाता है और छः मास में यदि वह चाहे तो जीवनमुक्त अवस्था को पा लेता है (२६।२९)।

(१४) साधक को चाहिए कि ध्यान में बैठते ही तीन बार, छः बार अथवा बारह बार दीर्घ प्रणव ॐ की ध्वनि का उच्च स्वर से उच्चारण करे। यह गहरी ध्वनि मन को संसार के विषयों से मुक्त कर गङ्गाजल की भाँति स्वच्छ और पावन कर देगी। ॐ

के सतत अभ्यास से साधक कबीर की इस स्थिति की अनुभूति में तरंगायित हो उठेगा—

मन ऐसो निर्मल भयो, जैसा गंगा नीर।
पाछे-पाछे हरि फिरें कहत कबीर-कबीर ॥

साधक को दीर्घ प्रणव की ॐ ध्वनि समाप्ति के तुरन्त पश्चात् ॐ का मानसिक जप तथा ध्यान का समारम्भ करना चाहिए।

१५—'नाद बिन्दु उपनिषद् में ओंकार उपासना के साथ नाद साधना का समावेश किया है, योगी को सिद्धासन में बैठना चाहिए वैष्णवी मुद्रा धारण करनी चाहिए और अनाहत ध्वनि को दायें कान में सुनना चाहिए। इस तरह नाद का किया गया अभ्यास बाहर की ध्वनियों को ढक लेता है। इस तरह से 'अकार' और 'मकार' के दोनों पक्षों पर विजय प्राप्त करके धीरे-धीरे सारे प्रणव को जीते। इस प्रकार करने पर साधक तुर्य पद को प्राप्त कर लेता है अर्थात् आत्म साक्षात्कार कर लेता है।' (३१-३२)

१६—श्रीमद्भागवत में ओंकार के उच्चारण की विधि का वर्णन करते हुए कहा गया है—

'दीर्घघण्टानिनादवत्'

घण्टे पर चोट मारने और छोड़ देने पर देर तक एक लम्बी ध्वनि का अभ्यास होता रहता है, ऐसे ही एक पूरे श्वास में एक बार ओंकार का उच्चारण करना चाहिए। घण्टे पर बार-बार चोट मारी जाए तीसरे टन टन में अनुस्युत एक लम्बी ध्वनि की अनुभूति होती ही है। उसी तरह से अ-उ-म् में अनुगत अमात्र का अनुरोधन अभीष्ट है।

ओंकार के इस उच्चारण को काकवाणी की भी संज्ञा दी जाती है, ऐसा अनुभव किया गया है कि कौआ जब काँव-काँव करता है तो गुदा तक शब्द का स्पन्दन होता है उसी तरह आचार्यों का निर्देश है कि

ओंकार का उच्चारण दीर्घ घण्टानाद की तरह तो होना चाहिए परन्तु उसके शब्दों का स्पन्दन मूलाधार चक्र से उठना चाहिए। यह विधि अपने मार्ग दर्शक गुरु से ही सीखनी चाहिए क्योंकि योग की क्रियायें अपने आप करने से रोगों की सम्भावना भी रहती है। योगीजनों ने चेतावनी दी है कि हमारे शरीर में एक मृत्यु नाड़ी होती है। ओंकार का जब उच्चारण किया जाता है तो प्राण ऊर्ध्वमुख होते हैं। विधि-पूर्वक न करने पर यदि प्राण उस नाड़ी में प्रवेश कर जायें तो मृत्यु भी हो सकती है अतः दीर्घ उच्चारण किसी अनुभवी साधक से सीखना चाहिए।

१७—योग दर्शन (१-२८) में महर्षि पतञ्जलि ने लिखा है 'प्रणव का जप और अर्थ विचारने से समाधि लाभ होता है।' महर्षि का आदेश है कि प्रणव का केवल जप ही पर्याप्त नहीं है वरन् जप के साथ उसका अर्थ चिन्तन भी आवश्यक है उससे चित्त की चंचलता नष्ट होती है। ॐ के तीन अक्षर हैं अ, उ, म। 'अकार' विराट् अग्नि, विष्णु आदि का अर्थ परिलक्षित होता है। 'उकार' से हिरण्यगर्भ, शक्र तैजस आदि का अभिप्राय लिया जाता है। 'मकार' से ईश्वर की प्राप्ति, प्रकृति आदि का बोध होता है। इसका स्थूल अर्थ इस प्रकार समझा जा सकता है—'अ' से तुष्टि की उत्पत्ति, 'उ' से स्थिति और 'म' से प्रलय का अर्थ ध्वनित होता है। ॐ का स्वाभाविक अर्थ है—क्योंकि 'अ' के उच्चारण से मुख खुल जाता है, 'उ' से वह विस्तृत होता है और 'म' से यह बन्द हो जाता है। प्रणवोपनिषद् के अनुसार 'अ' में ऋग्वेद, गार्हपत्य (अग्नि), पृथिवी व ब्रह्मा 'उ' में यजुर्वेद, आकाश, दक्षिणाग्नि और वेद श्रेष्ठ भगवान् विष्णु और 'म' में सामवेद, स्वर्ग आवाहनीय (अग्न) और परम देव शंकर की स्थिति है 'ॐ' जप साधना के साथ इस प्रकार उसका चिन्तन करना योग दर्शन का अभिप्राय है।

१८—ओंकार जप का निर्देश देते हुए कहा है —'अपने को देह में परिच्छिन्न मत देखो। अकार के उच्चारण के साथ भाव करो कि मैं विश्वात्मा हूँ, उकार के उच्चारण के साथ सूक्ष्म समष्टिरूप हिरण्यगर्भ अपने को देखो और मकार के साथ कारण समष्टि रूप ईश्वर देखो और फिर तीनों से परे अमात्र तुरीय परमात्मा में स्थित हो जाओ। इस प्रकार परिच्छिन्नता के अभिमान को समाप्त कर दो।'

१९—ओंकार की ३ मालाओं व प्रणव की उपासना पर टिप्पणी करते हुए एक विद्वान् ने लिखा है—

जब प्रणव का उच्चारण धर्म के अंगरूप में, क्रिया के अंग रूप में होता है, तब उस धर्म या क्रिया के लिए आवश्यक पवित्रता एवं विधि अपेक्षित होती है। स्थूल शरीर से प्रणव–सेवन, सूक्ष्म शरीर से प्रणव-सेवन, कारण शरीर से प्रणव सेवन और तुरीय रूप से प्रणव सेवन, इनमें जितना सूक्ष्म सेवन होगा उतना सर्वावस्था में रहेगा और जितना स्थूल सेवन होगा, उतना सर्वावस्था में प्रविष्ट नहीं होगा।'

पहले विस्तार–पूर्वक बताया जा चुका है कि केवल ओंकार साधना से ही आध्यात्मिक ज्ञान की उच्चतम स्थिति तक पहुँचा जा सकता है। पात्रता व साधक की योग्यता के अनुसार विधि क्रमशः इस प्रकार रहेगी—

(२०) पूर्व निर्देशित विधि के अनुसार ओंकार का उच्च उच्चारण करना चाहिये परन्तु वह उच्चारण केवल लकीर पीटने तक ही सीमित न हो। उसमें साधक की परम श्रद्धा की अनुभूति होनी चाहिए जैसे भगवान् का कीर्तन करते हुए साधन मस्ती में झूमता है, वैसे ही यह उच्चारण मस्ती से ओत-प्रोत हो और श्रोता को अत्यन्त कर्ण प्रिय लगे। दीर्घ घण्टा नाद की तरह ओंकार के उच्चारण की ध्वनि नाभि से आरम्भ होकर कण्ठ की ओर चढ़ती अनुभव हो। ओंकार ध्वनि पर किसी एक का अधिकार नहीं है। यह तो विश्व ध्वनि है। भावना यह करनी चाहिए कि मेरे ओंकार उच्चारण से वह ध्वनि सारे विश्व में

फैल रही है, सारे विश्व में उसकी पावन ध्वनि गूँज रही है, अणु-२ से वह ध्वनि प्रस्फुटित हो रहीं है। ऐसा लग रहा है जैसे सारा विश्व ओंकार का पवित्र उच्चारण कर रहा है, उस विराट् ब्रह्म की उपासना कर रहा है, उस विराट् ब्रह्म की उपासना करते-करते सारे विश्व में ओंकार ध्वनि को भरने की भावना से साधक को अपार आनन्द की अनुभूति होती है। इस एक मात्रा वाले ओंकार की उपासना करते हैं। इससे साधक अपने स्थूल शरीर का आभास करता है।

२१—मानसिक जप को दो मात्राओं वाले ओंकार की उपासना कहते हैं। इसमें साधक की क्षमता सूक्ष्म शरीर में प्रवेश हो जाती है। यहाँ उपास्य हिरण्यगर्भ है और उपासक—सूक्ष्म शरीर-तैजस है। इसकी साधना आरम्भ करते हुए स्थूल शरीर से अन्तर्मुखी होना पड़ता है और जप के साथ ध्यान करना होता है। ध्यान हृदय या आज्ञा चक्र में करना चाहियें। लम्बे समय तक इसका अभ्यास करना पड़ता है तब कहीं ध्यान जमने लगता है। ध्यान के परिपक्व होने की कई अवस्थायें हैं। पहली अवस्था की जब प्राप्ति होती है तो जहाँ ध्यान जमाया जा रहा था, उस स्थान विशेष का कोई चिह्न नहीं रह जाता। यह इस बात का प्रमाण है कि साधक को ध्यान की पहली परिपक्व अवस्था प्राप्त हो चुकी है और वह सूक्ष्म शरीर में प्रविष्ट हो चुका है।

२२—ध्यान की द्वितीय परिपक्व अवस्था प्राप्त करने के लिए मानसिक जाप को और अधिक सूक्ष्म करने की आवश्यकता रहती है। इस सूक्ष्म का अभिप्राय यह है कि जब जप-जप दिखाई नहीं देता, जब ओंकार की एक पवित्र धारा प्रवाहित होने लगती है, एक दिव्य ध्वनि होने लगती है जिसमें निर्मलता के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता इस पवित्र ध्वनि के साथ उसका दिव्य ध्यान ही शेष रह जाता है। इसे अ, उ, म वाले तीन मात्रा वाले ओंकार की उपासना कहते हैं।

इस साधना में सफलता प्राप्त होने पर साधक का प्रवेश कारण शरीर में हो जाता है सूक्ष्म शरीर का भी उसे आभास नहीं होता। यहाँ उपास्य ईश्वर होता है और उपासक कारण शरीर जिसे आत्मा की संज्ञा दी जाती है।

२३—ओंकार साधना की यहीं समाप्ति नहीं है। इससे आगे और साधना करनी होगी जिससे परम पद की प्राप्ति होती है। इसे ओंकार की अमात्र साधना कहते हैं। महात्मा आनन्द स्वामी ने इस सम्बन्ध में लिखा है—

इसका वर्णन पुस्तक का विषय नहीं। अनुभव ने यह बतलाया है कि वास्तविक जप तो वह है जब उपासक को स्वयं जप करने का यत्न न करना पड़े, अपितु एक स्वभाव-सा हो जाए। वाणी के प्रयोग की आवश्यकता ही न रहे, हृदय में ही ओ३म् की ध्वनि सुनाई देती रहे। हाँ, कभी-कभी ओ३म् नाम की ध्वनि का नशा जब अधिक बढ़ने लगता है तो स्थूल शरीर की वाणी भी सहसा 'ओ३म्-ओ३म्' पुकार उठती है। वास्तविक तथ्य यह है कि प्रणव या ओ३म् मुख द्वारा उच्चारण करने की वस्तु नहीं। हाँ मानसिक जप का ही इतना अभ्यास बढ़ा लेना चाहिए कि अन्तःकरण ही यह जाप करता रहे और यहीं उसकी ध्वनि सुनाई देती रहे और वहीं उसका ध्यान होता रहे। उसी अन्तःकरण में ओ३म् की ध्वनि तथा ध्यान का वेग जब बढ़े तो उसके परिणाम स्वरूप मुख द्वारा भी ओ३म् की रट अपने आप लगने लगती है। ओ३म् के ध्यान से मन बँध जाता है। मन की चंचलता मिटने लगती है और एक अद्भुत तथा दिव्य स्वाद आने लगता है।

यदि उपरोक्त निर्देशित विधियों के अनुसार, ओंकार उपासना की जय और नियम उपनियमों का पालन किया जाए तो कोई कारण नहीं कि अभीष्ट लाभ की सिद्धि न हो।

ओंकार की ध्यान साधना

परम लक्ष्य और साधना–

हमारे जीवन का चिर सहचर तथा सर्वश्रेष्ठ मित्र ॐ ही है। छान्दोग्योपनिषद् के अनुसार सफल भूतों का सार पृथ्वी है। पृथ्वी का सार जल है, जल का सार औषधि है, औषधि का सार पुरुष है, पुरुष का सार वाक् है वाक् का सार ऋक् है, ऋक् का साम है और साम का ओ३म्। ओ३म् परम सार तत्व है, ओ३म् परम वस्तु है, और ओ३म् परम मूल्यवान है—

'एषां भूतानां पृथिवी रसः पृथिव्या आपोः रसः अपामोषधयो रस ओषधीनां पुरुषो रसः पुरुषस्यः वाग्रसो वाच ऋग्रसः ऋचः साम रसः साम्न उद्गीथो रथः। स एष रसानां रसतमः परमः पराध्यंः आत्मा यदुद्गीथः।'

यह परम सारतत्व प्रणव ओ३म् ही शाश्वत आनन्द का प्रदायक है। ओ३म् ही सत्गुरु तथा हमारा पथ प्रदर्शक है। अतएव हमारा लक्ष्य प्रतिपल-प्रतिक्षण ओ३म् का चिन्तन, मनन एवं ध्यान होना चाहिये।

श्रुति ने ओ३म् की साधना को एक अत्यन्त सार्थक रूपक के माध्यम से इस प्रकार वर्णित किया है–

प्रणवो धनुः शरोह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥

प्रणव धनु है, जीवात्मा शर है, परमात्मा लक्ष्य है, शर की तरह तन्मय होकर शान्त चित्त से लक्ष्य भेद करना चाहिए।

उपनिषद् में पिप्पलाद ऋषि ने ओ३म् की साधना की प्रक्रिया बताते हुये कहा है—

"ज्ञान के धनुष को पकड़ कर उसमें उपासना, निरन्तर ध्यान से तेज किये हुये बाण को छोड़ो और फिर उसी सत्ता में लगा हुआ जो चिह्न है उससे उसको खींचकर, उस नश्वरीश्वर लक्ष्य को लक्षित करो। ओंकार धनुष है, आत्मा बाण है और उसका लक्ष्य ब्रह्म है। इसको अप्रमत्त—पूर्ण सावधान पुरुष लक्षित कर सकता है और यह बाण की भाँति लक्ष्य से एक रूप होकर ब्रह्म में सम्पूर्णतया तन्मय हो जाता है।

श्वेताश्वर ऋषि ने भी अपने साधनानुभव को इस प्रकार वर्णित किया है।

जैसे अग्नि काष्ठ के भीतर ही है पर उसकी मूर्ति बाहर दर्शित नहीं होती और न ही उससे चिह्न का नाश होता है वह अग्नि फिर लकड़ी से ग्रहण की जाती है। लकड़ियों के रगड़ने से उसमें निहित अग्नि प्रकाशित हो जाती है, ऐसे ही ओ३म् के द्वारा आत्मा इस देह में ग्रहण किया जाता है। अपनी आत्मा को नीचे की अरणि (लकड़ी) बनाकर ओ३म् को ऊपर की अरणि बनाकर ध्यान रूपी मथनी के अभ्यास से मूढ़ पुरुष को परमात्मा साक्षात्कार करना चाहिये—

आत्मानमर्बाणं कृत्वा प्रणवञ्चोत्तरारणिम् ।
ध्याननिर्मथनाभ्यासाद्देवं पश्येन्निगूढवत् ।।

वैखरी, उपांशु अथवा मानसिक रूप से ओ३म् की निरन्तर रट लगाना ही जप है। स्वामी शिवानन्द सरस्वती के अनुसार ओ३म् ध्वनि का उच्च स्वर से उच्चारण करना और इसकी प्रतिध्वनि को अपने श्वास के साथ ही मूलाधार चक्र से सहस्रार चक्र तक ले जाना ही ओ३म् कीर्तन है। निरन्तर ओ३म् की चिंता में लगे रहना ओ३म् चिंतन है। मन में ओ३म् का दृढ़ संकल्प ही मनन और ओ३म् व ब्रह्म की जिज्ञासा ही ॐ का विचार है। ॐ सर्वव्यापी शुद्ध चैतन्य स्वरूपोऽहं

'सोऽहं ब्रह्म ॐ—अर्थात् मैं सर्वव्यापी शुद्ध चैतन्य स्वरूप ब्रह्म हूँ—की अद्वैत ब्रह्म-भावना से अविच्छिन्न तैलधारावत् उस नित्य और अव्यक्त आत्मा का निदिध्यासन ही ॐ का ध्यान है।' हमें नाम रूपात्मक संसार को भुलाकर स्वयं को शुद्ध-बुद्ध सर्वव्यापी सच्चिदानन्द ब्रह्म समझना चाहिए ॐ साधना की यह ही अन्तिम परिणित है।

स्वामी शिवानन्द ने ओ३म् के निर्गुण ध्यान के दस भेद बताये हैं:-

१. ओ३म् का लय-चिन्तन।
२. लय चिन्तन अन्तःकरण का।
३. लय चिन्तन पंच तत्वों का।
४. अन्वयव्यतिरेक।
५. नेतिनेति।
६. अध्यारोपवाद भाग त्याग लक्षणा।
७. ओ३म् का अर्थ सहित चिन्तन, जप, स्मरण कीर्तन व ध्यान।
८. पंच कोश विलक्षण व्यतिरेक।
९. अवस्थात्रय साक्षी रूप ध्यान।
१०. त्रिगुणातीत अनन्त ब्रह्म भाव।
११. सोऽहं जप और ध्यानादि।

Dasrath Lal Bhatta
Changu-1, Bhaktapur

ॐ की ध्वनि तथा जाप के लाभ–

हमें उच्च एवं दीर्घ स्वरों में ओ३म् का उच्चारण करना चाहिये। ओ३म् की महाध्वनि केवल मुख से निकल कर हृदय से निकलनी चाहिये, इससे हृदयाकाश पावनतम हो जाता है। ॐ ध्वनि का उच्चारण एवं अभ्यास करते हुये हमें ओ३म् की सर्व व्यापकता, सर्व शक्तिमत्ता तथा परम आनन्दपूर्णता का भी सतत ध्यान रखना चाहिए, साथ ही यह भी निरन्तर अनुभव करना चाहिए कि वह महाध्वनि निरन्तर हमारी श्वास-प्रतिश्वास में, हमारे प्राणों के कण-कण में अपने मधुरतम रूप में गूँज रही है। ॐ का यह विधि ध्यान ही हमें

साधना के परमोच्च लक्ष्य तक पहुँचाता है। भागवत् में ओंकार के उच्चारण की आदर्श प्रक्रिया इस प्रकार वर्णित की है—

हृद्यविच्छिन्नमोंकारं घण्टानादं बिसोर्णवत्।
प्राणेनोदीर्य तत्राथ पुनः संवेशयेत् स्वरम्॥

हृदय में घण्टानाद के सदृश ओंकार का निरन्तर पद्मनालवत् अखण्ड उच्चारण करे। प्राण वायु की सहायता लेकर बारम्बार ओ३म् का उच्चारण करके पुनः पुनः हृदय के आभ्यान्तर गिराता जाये।

ओ३म् के ऐसे ज्ञानमय उच्चारण से मन को शीघ्र शान्ति प्राप्त होती है और सांसारिक विभ्रम समाप्त हो जाते हैं—

ध्यानेनेत्थं सुतीव्रेण युञ्जतो योगिनो मनः।
संयास्यत्याशु निर्वाणं द्रव्यज्ञानक्रियाभ्रमः॥

ओ३म् की परम पावन ध्वनि हमें पूर्णता प्रदान करती है। अतएव हमें ओ३म् की सतत् साधना आरम्भ करनी चाहिए। मुण्डकोपनिषद् में भी ओ३म् द्वारा परमात्मा के ध्यान करने का आदेश दिया है।

'ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानम्।'

ओ३म् की अर्थ सहित ध्वन्योच्चार एक स्वर से नाभि से सहस्रार तक ५ मिनट तक करना चाहिए, इस प्रणव ध्वनि में एकतारता होने से जो स्पन्दन गति उदभूत होती है। वे हमारे मन को सम्पूर्णतया, अकलुष कर वासना रहित कर चित्त को एकाग्र कर परमात्मा से तदाकार कर देगी।

ओ३म् के जाप का हमारे मन पर अत्यन्त व्यापक प्रभाव पड़ता है। इस परम पावन ओ३म् ध्वनि ने आज पाश्चात्यजनों का ध्यान भी आकर्षित कर रखा है। पाश्चात्य तत्त्वदर्शियों ने अपने प्रयोगों से प्रमाणित कर दिया है कि विराट् ब्रह्म से उद्भुत आदि ध्वनि ॐ अलौकिक शक्ति सम्पन्न है, इसके अजस्र जाप एवं उच्चारण से अत्यन्त उच्च अट्टालिकायें भूमिसात् हो सकती हैं। योगियों ने अभ्यास और अनु-

भव के आधार पर ओ३म् ध्वनि को कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करने वाली महाशक्ति के रूप में स्वीकार किया है।

ओंकार के आश्रय से प्रशान्त, अनादि, अजन्मा, अमर, अभय, सर्वव्याप्त परम सत्ता की प्राप्ति होती है। गीताकार भगवान कृष्ण ने अर्जुन से एकाक्षर ब्रह्म ओ३म् के जाप द्वारा परम गति प्राप्त होने के तथ्य का वर्णन किया है—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमांगतिम् ॥

वेद भी ओ३म् के जाप स्मरण का आदेश अत्यन्त स्पष्ट स्वरों में देते हैं। हे कर्मशील! ओ३म् का स्मरण कर—

'ओम् क्रतो स्मर।'

ओ३म् का ध्वन्यात्मक स्मरण हमारे हृदय के कुविचारों को दूर कर हमें आध्यात्मिक शक्ति से अभिमण्डित करता है, ओ३म् का सतत ध्वनन हमें जन्म चक्र से मुक्त कर देता है।

ओ३म् ध्वनि समस्त रोगों के लिये रामबाण औषधि के रूप में हैं। चित्त के उदास होने पर, शीश में पीड़ा के क्षणों में ओ३म् की ध्वनि करते हुए टहलने से शान्ति और पीड़ाहीनता का अनुभव होगा। इस ध्वनि के मानसिक ध्यानस्त उच्चारण से साधक दिव्यशक्ति की अनुभूति से संवादित होने लगता है। ओ३म् को योगियों ने 'अमृत मूरि रसायन' तथा परमौषधि की संज्ञा प्रदान की है।

ओ३म् की महाध्वनि विघ्नों की नाशिका हैं। योग दर्शन के अनुसार ओ३म् के जप करने वाले स्थान से विघ्नों का अभाव तथा आत्मा का स्वरूप ज्ञान होता है—

ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यान्तरायाभावश्च।

'ओ३म् के नामोच्चारण एवं जाप से जिन १४ विघ्नों तथा दोषों का परिहार होता है, योग दर्शन के अनुसार उनकी तालिका इस प्रकार है—

१. व्याधि—शारीरिक रोग।

२. स्त्यान—योग-साधन में प्रवृत्ति का न होना।

३. संशय।

४. प्रमाद।

५. आलस्य।

६. अविरति—सांसारिक विषय-वासना में आसक्ति तथा परमार्थ से विरक्ति।

७. भ्रान्ति-दर्शन—मिथ्याज्ञान तथा असन्तुलित विचार।

८. अलब्ध भूमिका—साधना करने पर किसी स्थिति को प्राप्त न कर सकना।

९. अनवस्थितत्व—ज्योति (दर्शन) प्राप्त होने के उपरान्त ज्योति का लुप्त हो जाना।

१०. दुःख-आधिभौतिक; आध्यात्मिक तथा आधिदैविक दुःख।

११. दौर्मनस्य—इच्छा की अभिपूर्ति न होने पर मन का विक्षुब्ध होना।

१२. अंगमेजयत्व—शरीर के अवयवों में सम्पन्न होना।

१३. श्वांस—भीतरी कुम्भक में विघ्न होना।

१४. प्रश्वास—बाहरी कुम्भक में विघ्न होना।

आध्यात्मिक रोग—भव पीड़ा से मुक्त होने के लिए साधक को ओ३म् के संजीवनी एवं विघ्ननाशक मन्त्र का जाप एवं उच्चारण करना चाहिए। ओ३म् की संजीवनी ध्वनि हमारे प्राणों को शुद्ध कर अमृमत्व मे आपूरित कर देती है। ओ३म् की महती ध्वनि साधक को शिव में लय कर देती है। इस प्रकार ओ३म् का जाप तथा नामोच्चार आत्मोद्धार का दृढ़ आधार है।

प्राणायाम युक्त ओंकार साधना

हमारे प्राणों की अत्यन्त स्वाभाविक ध्वनि होने के कारण ओ३म् का प्राणायाम से अवच्छिन्न सम्बन्ध हैं। वस्तुतः 'ओ३म्' और

प्राणायाम अभिन्न हैं। 'ओ३म्' सार्वभौमिक ध्वनि है। प्रत्येक देश धर्म, लिंग और वर्ण का मानव तथा पशु, पक्षी, जीवाणु एवं कीटाणु श्वास लेने की प्रक्रिया के पूरक में 'ओ' का तथा रेचक में 'म' की ध्वनि स्वभावतः ही करते हैं। 'ओ३म्' का पूरक तथा रेचन क्रिया में किया सचेतन जाप प्राणायाम के अभ्यास को दृढ़ता प्रदान करता है। प्राणायाम की इस क्रिया को सगर्भ प्राणायाम की संज्ञा प्रदान की जाती है। इसको पारिभाषिक पदावली में 'अजपा-जप' भी कहा जा सकता है। श्वास लेने और छोड़ने की क्रिया में सावधानी पूर्वक 'अ' और 'म' का मानसिक उच्चारण चलते-फिरते कार्य करते किया जा सकता है। इस जाप के साथ-साथ ओ३म् के विराटत्व का ध्यान भी साधा जा सकता है। इस अवस्था में साधक को निरन्तर यह अनुभव करना चाहिए कि कृष्ण की मधुर वंशी ध्वनि के समान ओ३म् की परम मधुर ध्वनि निरन्तर हमारे प्राणों में गूँज रही है। निरन्तर हमारे परम प्रिय का रस घोल रही है, निरन्तर लयमान होकर हमें हमारे परम प्रभु में लीन कर रही है। ओ३म् की ऐसी दिव्य अनुभूति ही साधक को परम शिव में लीन करने वाली होती है। वैष्णव भक्त इसी को राम धुनि लागी, गोपाल धुनि लागी, कैसे छुटे यह राम राम धुन लागी' कहकर संकीर्तन करते-करते अपने परम प्रिय एवं आराध्य को अपने प्राणों में अनुभव करते हैं। प्राणायाम से संयुक्त होकर 'ओ३म्' का अजपा-जाप' 'लघु' में 'विराट्' की अनुभूति कराता है और विन्दु को सिन्धु में विलयित करता है।

ओ३म् के ध्यान करने की बेला में यह ध्यान करना चाहिए कि 'अ'-'उ' तथा 'म' की अक्षर-त्रयी से सुलसित एकाक्षर ब्रह्म ओ३म् भगवान् के गर्भ धारण करने का स्थान है। ओ३म् के प्राणायाम की क्रिया के साथ ध्यान इस विधि से करना चाहिए —

प्राणायाम काल में नासिका के बाँये भाग से ओ३म् के 'अ' का १६ मात्राओं से पूरक ध्यान करते हुए तथा ६४ मात्राओं से कुम्भक

करते हुए 'उ' का और ३२ मात्राओं से रेचन करते हुए 'म' का ध्यान करना चाहिए। इसके साथ ही साथ 'अ' के पूरक काल में ब्रह्मा सरस्वती' 'उ' के कुम्भक काल में लक्ष्मी-विष्णु तथा 'म' के रेचन काल में शिव-पार्वती का ध्यान करना चाहिए। प्राणायाम सहित ॐ का ध्यान १ : ४ : २ के राशि क्रम से प्रारम्भ कर १६ : ६४ : ३२ की राशि तक आसानी से पहुँचाया जा सकता है। इस प्रकार के प्राणा-याम से कुण्डलिनी जाग्रत कर निर्विकल्प समाधि को सिद्ध किया जा सकता है।

त्राटक–

ओ३म् का त्राटक ध्यान अत्यन्त उपयोगी है। इस प्रक्रिया से ध्यान की सघन केन्द्रीभूतता का उद्भव होता है। ज्ञान योग के नये साधकों के लिये भी तीन मास तक ओ३म् के चित्र को केन्द्र बनाकर नेत्र खोलकर त्राटक ध्यान करना अत्यन्त लाभप्रद होता है। कुछ काल के अनन्तर ओ३म् के चित्र का नेत्र मूँदकर ध्यान करना चाहिए—यह मानसिक ध्यान ओ३म् का सगुण ध्यान से संज्ञित होगा। ध्यान की इस प्रक्रिया में साधक को प्रतिविश्वास में ओ३म् की ध्वनि तथा कानों से ओ३म् की ध्वनि सुनने की चेष्टा करनी चाहिए। बन्द नेत्रों से ओ३म् के सूक्ष्म दर्शन तथा कानों से ओ३म् के श्रवण के अतिरिक्त साधक को न तो किसी अन्य की कल्पना नहीं करनी चाहिए और न ही किसी अन्य ध्वनि को सुनना चाहिए। इस प्रकार ओ३म् से एकाग्र तथा तदाकार होकर साधक को ओ३म् ब्रह्म की शाश्वता अनन्तता, सर्वव्यापकता आदि की भावना भी करनी चाहिए। इस प्रकार ओ३म् के ध्यान से साधक श्रेष्ठतम चेतना की अनुभूति में तरंगायमान होकर 'सोऽहं की भावना को प्राप्त कर लेगा।

स्थूल और सूक्ष्म ध्यान–

ओ३म् में सगुण और निर्गुण उभय पक्ष ब्रह्म साधना निहित है। वस्तुतः ओंकार निर्गुण-सगुण स्वरूप अपने अन्दर समेटे हुए है।'

ओ३म् के चित्र का खुले नेत्रों से नाटकीय अभ्यास में उभयात्मक ध्यान या समुच्चयात्मक ध्यान की क्रिया विद्यमान है।

आरम्भ में ओ३म् के साथ शिव, राम, कृष्ण के विग्रह को भी ध्यान में ग्रहण किया जा सकता है, इसे सगुण ध्यान कहा जायेगा। लेकिन जब ओ३म् के साथ वेदान्त के महावाक्यों यथा 'अहं ब्रह्मास्मि' सोऽहं, तत्वमसि' का अनुचिन्तन किया जाता है तब यह ध्यान निर्गुण कोटि का हो जाता है। वेदान्त में निर्गुण ध्यान को 'निदिध्यासन' की संज्ञा प्रदान की गई है। इस निदिध्यासन की अवस्था साधक महती साधना के उपरान्त ही प्राप्त कर सकता है। जो साधक प्रखर बुद्धि, सूक्ष्म धारणा शक्ति, शुद्ध स्थिर विवेक, उदात्त भावना, आत्मावलम्बन के धर्त्ता होते हैं, वे ही इस ओ३म् की निर्गुण अहंग्रह उपासना के अधिकारी हो सकते हैं। सोऽहं का ध्यान निर्गुण ध्यान है। जो साधक आरम्भ में राम, कृष्ण, शिवादि का सगुण ध्यान धारण कर मन को सब विषयों से हटाकर एक तत्व में लीन करने का सुदीर्घ अभ्यास कर चुके हैं, उनके लिए ओ३म् ब्रह्म का निर्गुण ध्यान सहज साध्य है। निर्गुण ध्यान से ही साधना प्रारम्भ करने वाले साधक का मार्ग दुष्कर है, कठिन है।

निर्गुण का अभिप्राय गुणों का सर्वथा अभाव नहीं है। निर्गुण का अर्थ है कि ब्रह्म कतिपय गुण विशिष्ट ही नहीं है, वरन् उनमें बीज रूप में समस्त सम्भाव्य गुण अन्तर्भूत हैं। इसी कारण निर्गुण ध्यान में भी प्रारम्भिक अवस्था में कोई न कोई अव्यक्त मूर्ति प्रतिष्ठित रहती है। उदाहरण के लिये हिम स्थूल रूप है और हिम की शीतलता हिम का सूक्ष्म रूप है। अपने पिता की स्वरूपाकृति पिता का सगुण ध्यान है, और पितृत्व के गुणों का ध्यान पिता का निर्गुण ध्यान है। हिलते हुए तरलवादि वायु का सगुण ध्यान होगा और मन ही मन वायु की निराकार रूप सर्वव्यापी आकाश की परिकल्पना वायु का निर्गुण ध्यान है जिस पर कि चढ़कर इस निर्गुण ध्यान तक पहुँच सकते हैं।

ओ३म् के निर्गुण ध्यान में पहुँचकर साधक में ही शान्तिस्वरूप आत्मा हूँ—'शान्तोऽयमात्मा, मैं केवल शांतिरूप हूँ—'केवलं शान्तिरूपोऽस्मि' की विचारणा में लीन रहता है। इस स्थिति पर पहुँचकर साधक सत्यं शिवं सुन्दरं तथा 'सच्चिदानन्द सम्पूर्ण सुखं शान्तं' सत्यं ज्ञानमनन्तं ओ३म् ब्रह्म में लीन हो जाता है।

ओंकार ध्यान में सहायक मन्त्र

ध्यान ही सिद्धि के द्वार खोलता है। इसके बिना सफलता के उच्च शिखर पर चढ़ना असम्भव ही समझना चाहिए। सिद्धि को सुख का साधन मानकर इसका नियमित अभ्यास करना चाहिए। ध्यान के साथ उसकी सहयोगी प्रक्रियाओं का भी अभ्यास आवश्यक है। अपने को ब्रह्म से अलग समझना, द्वैत भावना को अपने मन में पुष्पित, पल्लवित होने का अवसर देते रहना अथवा अद्वैत की ओर कुछ प्रयत्न न करना—इन्हें सफलता में बाधक ही मानना चाहिए। एकता—अद्वैत ही सिद्धि का दूसरा नाम है। अतः इस भावना को अन्तःकरण में सजीव रखना चाहिए। इस भावना को केवल साधना-काल तक ही सीमित न रखें वरन् व्यवहारिक क्षेत्र में भी इसका उपयोग करना चाहिए। निरन्तर ब्रह्म भावना में निमग्न व्यक्ति का कायाकल्प-सा ही हो जाता है। अतः ध्यान साधना का इसे भी एक अंग मानना चाहिए। ध्यान के समय ओंकार का मानसिक जप करते रहना चाहिए। एकाग्रता और ध्यान की सिद्धि के लिए लम्बे समय के अभ्यास की आवश्यकता है। इसके लिए मन्त्रों का सहयोग लिया जा सकता है। प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त में उठकर ३ घण्टे तक और सायंकालीन संध्या में ३ घण्टे तक इन मन्त्रों का ध्यान किया जा सकता है। यदि साधना निरन्तर चलती रहे और कोई विशेष विघ्न मार्ग में न आए तो ३-४ वर्षों में निश्चित रूप से सिद्धि की सम्भावना हो सकती है। मन्त्र इस प्रकार हैं :—

(१)

१	ओ३म्	शिवोऽहं ।	ओ३म्,	ओ३म्,	ओ३म् ।
२	,,	अद्वैतोऽहं ।	,,	,,	,, ।
३	,,	अहमात्माऽहं ।	,,	,,	,, ।
४	,,	चैतन्योऽहं ।	,,	,,	,, ।
५	,,	चैतन्याऽहं ।	,,	,,	,, ।
६	,,	शिवकेवलोऽहं ।	,,	,,	,, ।
७	,,	परिपूर्णोऽहं ।	,,	,,	,, ।
८	,,	निर्गुणोऽहं ।	,,	,,	,, ।
९	,,	परमात्माऽहं ।	,,	,,	,, ।
१०	,,	हंसः सोऽहं सोऽहं हंसः ।	,,	,,	,, ।
११	,,	साक्षिस्वरूपोऽहम् ।	,,	,,	,, ।
१२	,,	निर्मलोऽहं ।	,,	,,	,, ।
१३	,,	चिन्मात्रोऽहं ।	,,	,,	,, ।
१४	,,	कूटस्थोऽहं ।	,,	,,	,, ।
१५	,,	निष्कलोऽहं ।	,,	,,	,, ।
१६	,,	विमलोऽहं ।	,,	,,	,, ।
१७	,,	नित्यतृप्त-स्वरूपोऽहं ।	,,	,,	,, ।
१८	,,	असंगोऽहं ।	,,	,,	,, ।

(२)

१ ॐ अहं ब्रह्माऽस्मि मन्त्रोऽयं ज्ञानानन्दं प्रयच्छति ॐ, ॐ, ॐ ।

२ ॐ केवलं केवलोऽहं हि केवलं केवलोऽस्म्यहम् । ,, ,, ,, ।

३ ॐ केवलं ज्ञानरूपोऽहं केवलं चिन्मयोऽस्म्यहम् ,, ,, ,, ।

४ ॐ सच्चिदानन्द स्वरूपोऽहं अहं ब्रह्मास्म्यहं सदा ,, ,, ,, ।

५ ॐ अखण्डैकरस रूपोऽहं चिन्मात्रोऽस्म्यहं सदा । ,, ,, ,, ।

६ ॐ अहं सत्य स्वरूपोऽस्मि अहं चैतन्यमेव हि । ,, ,, ,, ।

७ ॐ ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः । ,, ,, ,, ।

८ अहं शुद्धोऽस्मि बुद्धोऽस्मि नित्योऽस्मि प्रभुरस्म्यहम् ।
ॐ, ॐ, ॐ ।

९ ॐ आदिचैतन्य मन्त्रोऽहं अखण्डैकरसोऽस्म्यहम् । ,,
१० ,, केवलज्ञानरूपोऽहं केवलं परमोऽस्म्यहम् । ,,
११ ,, केवलं नित्यरूपोऽहं केवलं शाश्वतोऽस्म्यहम् । ,,
१२ ,, भूमानन्द स्वरूपोऽहं ह्यजरोऽस्म्यहम् । ॐ,ॐ,ॐ ।
१३ ,, वस्तुतत्वस्वरूपोऽहं सदा चिन्मात्र विग्रहः । ,,
१४ ,, चिन्मयोऽहं चिन्मात्रं नित्य शुद्धोहस्म्यहम् सदा । ,,

(३)

१ ॐ ज्योतिज्योतिः स्वरूपोऽस्मि ह्यहमात्मा सदाशिवः ।
ॐ, ॐ, ॐ ।

२ ,, आत्मारामस्वरूपोऽस्मि सत्यानन्दोस्म्यहं सदा । ,,
३ ,, चिदानन्दस्वरूपोऽस्मि चिदानन्दमयोऽस्म्यहम् । ,,
४ ,, सर्वत्र परिपूर्णोऽहं ज्योतिस्वरूपोस्म्यहं सदा ,,
५ ,, परब्रह्म स्वरूपोऽहं परमानन्दमस्म्यहम् । ॐ,ॐ, ॐ ।
६ ,, सदाचैतन्यरूपोऽस्मि चिदानन्दमयोस्म्यहम् । ,,
७ ,, नित्य स्वस्थस्वरूपोऽस्मि नित्यानन्दोऽस्म्यहं सदा ।
ॐ, ॐ, ॐ ।

८ ,, सर्वप्रकाशरूपोऽहं परावरसुखोऽस्म्यमम् । ,,
९ ,, आनन्दघन एवाहमहं ब्रह्मास्मि केवलं । ,,
१० ,, स्वयमेव स्वयंज्योतिः स्वयमेव स्वबं महः । ,,
११ ,, केवलंनित्यंरूपोऽहं केवलंशाश्वतोऽस्म्यहम् । ,,
१२ ,, केवलाकार रूपोऽस्मि शुद्धरूपोऽस्म्यहं सदा । ,,
१३ ,, भूमानन्दस्वरूपोऽस्मि चिदाकाशमयोऽस्म्यहम् । ,,
१४ ,, विज्ञानमात्ररूपोऽहं सच्चिदानन्दलक्षणः । ,,

(४)

१ ॐ सर्वत्र पूर्णरूपोऽहं भूमानन्द मयोऽस्म्यहम् । ॐ, ॐ, ॐ,
२ ॐ अह शुद्धोऽस्मि बुद्धोऽस्मि नित्योऽस्मि प्रभुरस्म्यहम् ।
ॐ, ॐ, ॐ ।
३ ॐ अकर्त्ताऽहं अभोक्ताऽहं असंगोऽहमस्मि अव्ययः । ,,
४ ॐ ॐकारार्थस्वरूपोऽस्मिनिष्कलङ्कमयोऽस्म्यहम् । ,,
५ ॐ आदि चैतन्य मात्रोऽहमखण्डैक रसोऽस्म्यहम् । ,,
६ ॐ तुरीयातीता स्वरूपोऽहं नित्योऽस्मि प्रभुरस्म्यहम् ।
ॐ, ॐ, ॐ ।
७ ॐ चिदाकार स्वरूपोऽस्मि नाहमस्मि न सोऽहस्म्यहम् ।
ॐ, ॐ, ॐ ।
८ ॐ एकमेवाद्वितीयं स्वब्रह्मैवाहं न संशयः । ,,
९ ॐ बन्ध मुक्तिविहीनोऽहं शाश्वतानन्द विग्रहः । ,,
१० ॐ साक्षी तुरीयंद्रष्टाऽहं सकलागमगोचरः । ,,

ऊपर चार मन्त्र समूह दिये गये हैं। इनमें से अपनी रुचि के अनुसार कोई भी चुन लें। ध्यान तो एक मन्त्र का ही सम्भव है। जिस मन्त्र के ध्यान में सुविधा हो अथवा यह अनुकूल दिखाई दे, उसको स्थायी रूप से चुन लें। उसका अभ्यास करें और ब्रह्म भावना का कभी त्याग न हो पाए। यह साधना अज्ञान और अविद्या की ग्रन्थियों को आच्छादित करने वाली है।

सिद्धि के मूलभूत सिद्धान्त व क्रियाएँ

संकल्प व दृढ़ इच्छा शक्ति—

मन्त्र सिद्धि में दृढ़ संकल्प और इच्छा शक्ति का विशिष्ट महत्व है। इच्छा जब बुद्धि द्वारा परिष्कृत होकर दृढ़ निश्चय का रूप धारण कर लेती है, तब वह संकल्प कहलाती है। बिना इच्छा के किसी क्रिया

का आरम्भ नहीं होता। उस क्रिया में यदि दृढ़ता का समावेश न हो तो सफलता में संदेह रहता है।

संकल्प लुप्त शक्तियों को जगाने का माध्यम है। विस्फोटक पदार्थ स्वयम् नहीं फटते, अग्नि के सहयोग से ही उनकी शक्ति विकसित होती है। मनुष्य के पास अनेक शक्तियाँ हैं, परन्तु वह उनका उपयोग करना नहीं जानता। संकल्प वह वैज्ञानिक विधि व्यवस्था है जिससे वह उन उपकरणों का उपयोग करता है। संकल्प ही शक्तियों के एकत्रीकरण का कार्य करता है। संकल्प एक विद्युत है जो प्राप्त शक्तियों के अणु-अणु में गति लाने की सामर्थ्य रखता है। गति ही प्रत्यक्ष शक्ति का दूसरा नाम है।

'संकल्प मानसं देवि चतुर्वर्गप्रदायकम्।'

'मन के संकल्प में धर्म अर्थ काम और मोक्ष दिलाने वाली सभी शक्तियाँ भरी पड़ी हैं।'

संकल्प शक्ति की अपार सफलताओं को देखकर ही ऋषियों ने इसे ब्रह्म की संज्ञा दी है और संकल्प ब्रह्म की उपासना के लिए प्रेरित किया करता है। इस मूल्यांकन से स्पष्ट रूप में विदित होता है कि उन्होंने इसकी महान् शक्तियों का अनुमान लगा लिया था।

संकल्प का इच्छा शक्ति से घनिष्ट सम्बन्ध है वास्तव में जीवन की सफलता, उत्कर्ष-अपकर्ष, उन्नति-अवनति, उत्थान-पतन सब मनुष्य की इच्छा शक्ति की सबलता और निर्बलता के ही परिणाम हैं। सबल और दृढ़ इच्छाशक्ति सम्पन्न लोगों को अशुद्ध विचार, कुकल्पनायें, भयानक परिस्थितियाँ, व उलझनें भी विचलित नहीं कर सकतीं। वे अपने निश्चय पर दृढ़ रहते हैं। उनके विचार स्थिर और निश्चित होते हैं। उन्हें बार-बार नहीं बदलते। प्रबल इच्छा शक्ति से शारीरिक कष्ट भी उन्हें अस्थिर नहीं कर सकते। ऐसे व्यक्ति हर प्रकार की परिस्थितियों में अपना रास्ता निकाल कर आगे बढ़ते रहते हैं। अपने व्यक्तिगत हानि-लाभ से भी प्रभावित नहीं होते।

दृढ़ इच्छा-शक्ति मानसिक क्षेत्र का वह दुर्ग है जिसमें किसी भी बाह्य परिस्थिति, कल्पना, कुविचारों का प्रभाव नहीं हो सकता। दृढ़ इच्छा-शक्ति सम्पन्न व्यक्ति जीवन के भयंकर झंझावातों में अजेय चट्टान की तरह अटल और स्थिर रहता है। ऐसा मनुष्य सदैव प्रसन्न और शान्त रहता है। जीवन का सुख, स्वास्थ्य, प्रसन्नता, शान्ति उसके साथ रहते हैं।

संसार में जितने भी महान् कार्य हुए हैं, वे मनुष्य की प्रबल इच्छा शक्ति का संयोग पाकर ही हुए हैं। दृढ़ इच्छा शक्ति सम्पन्न व्यक्ति ही महान् कार्यों का संचालन करता है। वही नव सृजन, नव निर्माण, नव चेतना का शुभारम्भ करता है। अपने और दूसरों के कल्याण, विकास एवं उत्थान का मार्ग खोजता है।

अटूट श्रद्धा—

श्रद्धा साधना की नींव है। जहाँ श्रद्धा है, वहीं सिद्धि है। जहाँ श्रद्धा का अभाव है, वही सन्देह, कुतर्क आदि की उत्पत्ति होती हैं, जो सफलता के प्रतिबन्ध माने जाते हैं। अतः श्रद्धा के बिना सफलता की आशा करना व्यर्थ है। जिस साधना से सिद्धि प्राप्त करने का प्रयत्न आरम्भ किया जा रहा है, उसके प्रति दृढ़ आस्था (महर्षि पतञ्जलि के शब्दों में अगर बुद्धि के साथ-सत्कार के) होनी चाहिए जो साधना का मेरुदण्ड मानी जाती है। जिस साधना पर श्रद्धा नहीं है, उसे केवल परीक्षा के लिए करना अपना समय व्यर्थ खोना है क्योंकि उससे विशेष लाभ प्राप्त करने की आशा नहीं करनी चाहिये। जब सफलता का प्रथम सौपान ही साधना-में सम्मिलित नहीं तो सफलता और सिद्धि कैसी ? सिद्धि द्वार की पहली शर्त है श्रद्धा। अतः जो साधक सिद्धि प्राप्त करना चाहता हो, उसे इष्टदेव के प्रति पूर्ण श्रद्धा होनी चाहिये और यदि उसे कोई सन्देह है तो गुरुजनों से कुतर्क और दुराग्रह से नहीं— जिज्ञासा की दृष्टि से अपनी शंकाओं और भ्रमों को दूर कर लेना चाहिए। सद्गुरु शिष्य के सभी भ्रमों को दूर करने में प्रसन्नता अनुभव करते हैं।

सन्देह दूर होने पर ही श्रद्धा में दृढ़ता आती है। यह दृढ़ता अपनी सुषुप्त शक्तियों को जाग्रत करने का माध्यम बनती है। इसलिए हमारे शास्त्रों ने एक स्वर से इसकी परम आवश्यकता को अनुभव किया है।

भावना शक्ति–

मन्त्र साधना और भावना का घनिष्ट सम्बन्ध है। साधक जैसी भावना करता है, वैसी ही सफलता उसे प्राप्त होती है। भावना से साधना में गति आती है। मन्त्र सिद्धि के लिए भावना शक्ति का होना आवश्यकता है। शास्त्र भी इस तथ्य की पुष्टि करता है।

"मन्त्रे, तीर्थे द्विजे देवे दैवेज्ञै भैषजे गुरौ।
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी ॥

"मन्त्र, तीर्थ, ब्राह्मण, देवता, ज्योतिषी, दवा तथा गुरु में जिस तरह की भावना होती है, उसके अनुसार उसे सिद्धि प्राप्त होती है।"

साधक की सुप्त शक्तियो को जाग्रत करने का काम भावना करती हैं। भावना से अन्य प्रकार से लाभ उठाने की भी एक वैज्ञानिक पद्धति है। अभाव की पूर्ति के लिए गिड़गिड़ाना उचित नहीं है। उससे आत्म-हीनता की भावना उत्पन्न होती है और आशा-जनक लाभ नहीं होता है। भावना के समय अशुभ के स्थान पर वैभव और ऐश्वर्य के संकेत मन को देने चाहिए। जिस दृष्टि की पूर्ति करने की इच्छा है, उतने भावना-नेत्रों से पूरा होता देखें। यह संकेत जितना तीव्र और सुदृढ़ विश्वास पर आधारित होगा सफलता उतनी ही शीघ्रता से प्राप्त होगी।

इस शुभ संकेतों का सीधा प्रभाव हमारे गुप्त मन पर पड़ता है। गुप्त मन ईश्वर-प्रदत्त शक्ति का भण्डार है. दैवी शक्तियों का वह मूल स्रोत है। ईश्वर से उत्तराधिकार में मिली समस्त शक्तियाँ वहीं सोई

पड़ी हैं। उन्हें प्राप्त करने के लिए उन्हें जगाना होगा। उसका उपाय शुभ संकेत ही हैं। यह हमारे गुप्त मन का नव-निर्माण करते हैं और हमारे चारों ओर का संसार भी वैसा बनता चला जाता है। भावना का यह मनोवैज्ञानिक आधार है।

तपश्चर्या–

जीवन के किसी भी क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिए अथक परिश्रम करना अनिवार्य है। छप्पर फाड़कर देने वाली कहावत कहीं-कहीं आकस्मिक ही चरितार्थ होती है। इसी परिश्रम करने को धार्मिक भाषा में तप कहते हैं। सिद्धि व वरदान अनायास ही नहीं मिल जाते। उनके लिए घोर तप करने पड़ते हैं। आज जब कि सारा वातावरण दूषित हो चुका है, लोग कुछ दिन ही उल्टे-सीधे, बिना विधि विधान के अधूरी श्रद्धा भावना से, मन्त्र जप करके सिद्धि प्राप्त करने की बात सोचते हैं और कुछ प्राप्त न होने पर अविश्वास करने लगते हैं। परन्तु प्राचीन काल में सात्विक वातावरण में ऋषि कितनी घोर तपस्याएँ लम्बे समय तक किया करते थे, इसकी आज कल्पना भी नहीं की जा सकती। च्यवन और वाल्मीकि के उदाहरण समक्ष हैं। उन्होंने इतने लम्बे समय तक तन्मयता से तप किया कि शरीर के आस-पास धूल की चट्टान-सी बन गई, उस पर छोटे-छोटे पेड़-पौधे उगने लगे और पक्षी चहचहाने लगे। आज इसे—असम्भव और अल्पना की संज्ञा ही दी जाएगी। जिस तरह यह तप कल्पना माने जाते है, उसी तरह यह सिद्धियाँ भी कल्पना बन गई हैं क्योंकि सिद्धि प्राप्त करने के लिये उसके अनुरूप जब तप नहीं किया जायेगा तो निश्चित रूप से सिद्धि प्राप्त करना भी अशक्य रहेगा। सिद्धि दैवी वरदान के रूप में नहीं मिला करती, उसके लिए उसका मूल्य चुकाना पड़ता है।

जहाँ तप है, वहाँ शक्ति, मुक्ति, स्वर्ग, सुख, शांति, आनन्द, धन, ज्ञान, कीर्ति और संसार का सब कुछ है। जो जीने योग्य जीवन जीना

चाहता है, उसे जप को अपना जीवन साथी बना लेना चाहिए । जो इस विवेकपूर्ण निर्णय की उपेक्षा करता है, वह आज नहीं तो कल दीन-हीन, दुःखी और विपन्निग्रस्त बनकर रहेगा ।

एकाग्रता—

साधना के लिए चित्त का स्वस्थ व शान्त होना आवश्यक है । हृदय में श्रद्धा और भक्ति भावना हो, मन को सब ओर से हटाकर तन्मय किया जाये और चित्त को एकाग्र किया जाय, तभी साधना में सफलता और सिद्धि प्राप्त होती है अन्यथा निराशा ही हाथ लगती है । जब मन में अशान्ति, चिन्ता, उत्तेजना, भय व सन्देह हो, उसका एक स्थान पर स्थिर होना कठिन है । वह इधर-उधर भागेगा । ऐसी स्थिति में न जप में मन लगता है न ध्यान में । साधक माला तो घुमाता रहता है मन्त्र भी बोलता रहता हैं, चित्त इधर-उधर भागता है, सफलता की आशा रखने वाले साधक के लिए यह अच्छे लक्षण नहीं हैं सब ओर से मन हटाकर, श्रद्धा भक्ति से तन्मयता-पूर्वक साधना से ही वह आकर्षण शक्ति उत्पन्न होती है । जिसमें अभीष्ट सिद्धि प्राप्त हो ।

मन को एकाग्र व स्थिर करने के लिए लम्बे समय के अभ्यास की अपेक्षा है । संसार के बड़े से बड़े, कठि,न असम्भव कार्य भी अभ्यास से पूर्ण हो जाते हैं । अभ्यास से मनुष्य तो क्या पशु भी आश्चर्यजनक प्रकृति विरुद्ध काम करते हैं । यद्दि चिरसंचित बहिर्मुखी संस्कार इस कार्य में बाधक होते हैं, फिर भी दृढ़ता पूर्वक अभ्यास करते रहने से वह भी शमन हो जाते हैं । परन्तु योग दर्शनकार चेतावनी देते हैं कि यह अभ्यास बहुत काल तक लगातार सत्कार से ठीक-ठीक किया जाए तभी इसमें दृढ़ता आती है (१-१४) अभ्यास और वैराग्य के इस मिले जुले प्रयत्न से चित्तवृत्तियों का निश्चत रूप से निरोध होता है और मन एकाग्र होता है । यही मन्त्र-सिद्धि का मार्ग है ।

प्राणायाम—

मन्त्र साधना का एक आवश्यक अंग प्राणायाम है । साधक अपने

इष्टदेव का ध्यान करता है। मन को उस पर जमाता है। मन चंचल है। वह इधर-उधर भागता है। उसी एकाग्रता में ही शक्ति का रहस्य छिपा है। वहीं साधक की साधना की सफलता है। प्राणायाम से मन स्थिर रखने में सहायता मिलती है। धीरे-धीरे एकाग्रता बढ़ने लगती हैं। शास्त्र का भी यही वचन है, "मन प्राण के अधीन है। जैसे पक्षी रज्जु से बंधा रहता है, वैसे ही चित्त प्राण से सम्बन्धित है। विचार मन को वश में करना असम्भव ही होता है। मन को एकाग्र करने का एक मात्र उपाय प्राणायाम हैं।" भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है— "प्राणायाम के द्वारा ध्यान करने से वशीभूत हो जाने पर जैसे एक ज्योति में दूसरी ज्योति मिलकर एक हो जाती है, ऐसे ही साधक अपने में मुझे और मुझ परमात्मा में अपने को मिला देता है।" योग दर्शन २।५३ में भी कहा गया है कि प्राणायाम के निरन्तर अभ्यास के मन की चंचलता नष्ट होती है और उससे धारणा की योग्यता आ जाती है। अतः प्राणायाम द्वारा साधक अपना शारीरिक, मानसिक विकास करता है। और आत्मिक क्षेत्र में प्रवेश करता है।

ध्यान–

संसार के सभी महत्वपूर्ण कार्यों की सफलता के लिए मनोयोग अथवा ध्यान की, एकाग्रता की आवश्यकता होती है। इसमें भी आध्यात्मिक ज्ञान तो बिना ध्यान के निश्चित हुए हो ही नहीं सकता। ध्यानपूर्वक विचार करने से ही हम किसी वस्तु के मूल स्वरूप और उसकी वास्तविकता को जान सकते हैं। यदि हमारा ध्यान इधर-उधर बँटा रहता है, तो हम किसी विषय का गहराई में वैठकर यथातथ्य ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते। जिस तरह से आतशी शीशे से सूर्य की बिखरी किरणों को एकत्रित करके किसी कपड़े या कागज पर फेंका जाता है तो वह जलने लगता है, पर बिना एकत्रित हुये साधारणतः वह उसे जलाने की सामर्थ्य नहीं रखतीं, उसी तरह किसी समस्या पर गम्भीरता पूर्वक विचार करने पर, एकाग्रता पूर्वक मनन करने पर उलझी हुई गुत्थियों

का भी सरल समाधान प्राप्त हो जाता है। कारण स्पष्ट है कि मन की बिखरी हुई शक्तियाँ एकत्रित हो जाती हैं। एकता शक्ति का दूसरा नाम है। मन की अपार सामर्थ्य को एक निश्चित मार्ग में लगा देने से शक्ति के द्वार खुल जाते हैं। इसी को सिद्धि कहा जाता है। इसीलिए ध्यान योग का साधक सिद्धि के मार्ग की ओर पग बढ़ाता है, उसे हर क्षेत्र में सिद्धि ही दिखाई देती है। असफलता या असम्भव का एक कण भी उसे सारी सृष्टि में दृष्टिगोचर नहीं होता। वह सफलता के झण्डे गाड़ता हुआ निरन्तर आगे ही बढ़ता रहता है।

अर्थ-चिन्तन-

नियत ध्वनियों के समूह को मन्त्र कहते हैं। मन्त्र में ध्वनियों की तो विशेषता रहती है इसलिए मन्त्र में स्वर पर ही विशेष ध्यान दिया जाता है। उसी से शक्तियों का विकास होता है। मन्त्रों के निर्माण का भी एक स्वतन्त्र विज्ञान है। प्रत्येक मन्त्र का गठन कुछ ऐसे व्यवस्थित विधि विधान से किया जाता है कि उनका सीधा प्रभाव हमारी सूक्ष्म ग्रन्थियों, षट्चक्रों और शक्ति केन्द्रों पर पड़ता है जिससे सूक्ष्म जगत् के शक्ति केन्द्र जागृत होते हैं।

इन ध्वनि समूहों में शक्तियों के अतिरिक्त मन्त्रों में उत्तम शिक्षायें और प्रेरणाएँ भी होती हैं। जिनका मनन, चिन्तन करने से वह जीवन का कायाकल्प ही कर देती है। मन्त्र का अर्थ ही मनन विद्या और ज्ञान होता है। यदि उसके अर्थों का मनन न किया जाए तो साधना अधूरी ही रहती है। जब इष्ट मन्त्र का जाप किया जाता है, तो नेत्र बन्द करके मन्त्र के एक-एक अक्षर के अर्थ पर रुक-रुक कर विचार करना चाहिये और मन क्षेत्र पर उसे प्रतिष्ठित करना चाहिये जैसे वह मूर्त रूप में सामने आ रहे हैं और साधक उनका श्रद्धापूर्वक ध्यान और चिन्तन कर रहा है। जिन विचारों का नित्यप्रति बार-बार चिन्तन किया जाता है, उनका मन में पहले से स्थित विचारों से संघर्ष आरम्भ

हो जाता है। जो समूह प्रभावशाली होता है, उसी की विजय होती है। मन में जो पहले जन्मों के संस्कार जमे होते हैं, वह उखड़ने लगते हैं और नए संस्कार प्रदीप्त होना आरम्भ होते हैं और साधक अपने लिए एक नई सृष्टि का निर्माण करता है। यह तभी होना सम्भव होता है जब वह नियमित रूप से लम्बे समय तक निरन्तर उन्हीं विचारों की प्रक्रिया से, जिस मन्त्र में अगाध श्रद्धा और विश्वास होता है, उसके अर्थ तो जीवन का एक अङ्ग बन जाते हैं। साधना की सफलता इसी में है कि साधक मन्त्र के साथ एकाकार कर ले। उसकी विधि एकाग्रता पूर्वक जप के साथ अर्थ चिन्तन की है। जप की प्रमुखता तो है ही। उससे लाभ होता ही है परन्तु उनके अर्थों की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। साधना की पूर्णता इसी में है कि जप के साथ अर्थों का चिन्तन हो। ओंकार के अर्थ व उसकी, चिन्तन विधि इस प्रकार है–

ॐ शब्द 'अव' धातु से बना है। 'अब' धातु के १९ अर्थ होते हैं। इतने अर्थ किसी भी धातु के नहीं होते। वह अर्थ इस प्रकार है:–

१. रक्षण—संसार सागर से रक्षा करने वाला। २. गति—सर्व व्यापक संसार चक्र को चलाने वाला और सर्व ज्ञाता ३. कान्ति—विश्व का प्रकाशक ४. प्रीति-भक्तों को प्रसन्न करने वाला ५. तृप्ति—तृप्ति और सन्तोष देने वाला ६. आवगम-सर्वज्ञाता ७. प्रवेश-सब में प्रवेश करने वाला ८. श्रवण—सुप्त से सुप्त शब्दों को सुनने की क्षमता वाला ९. स्वाम्यार्थ-शासक १०. याचन—जहाँ से ऐश्वर्यों की याचना की जाए ११. इच्छा क्रिया—संसार चक्र का संचालक १२. इच्छित-जीवों की शुभ कामनाओं का प्रदायक १३. दीप्ति—अज्ञानान्धकार को दूर करने वाला १४. वाप्ति-अन्तःकरण में स्व-स्वरूप प्रदर्शक १५. आलिंगन—सब का सम्बन्धी रहना १६. हिंसा-अज्ञान को नष्ट करने वाला १७. दान-उपयोगी पदार्थों की उपयोगिता का शिक्षक

१८. भोग–प्रलय के समय सारे संसार को लीन करने वाला, १६. बुद्धि सूक्ष्मता से स्थूलता की ओर लाने वाला।

ओंकार के उपरोक्त प्रत्येक अर्थ पर विचार करना चाहिए। यह आवश्यक नहीं कि उपरोक्त सभी अर्थों पर एक ही बैठक में चिंतन कर लिया जाय। यह समयसाध्य साधना है। इस पर काफी समय लग सकता है। अतः यह साधना धैर्य पूर्वक करनी चाहिए। इस साधना में विशिष्ट लाभों का वर्णन भी शास्त्रकारों ने किया है—

योग-दर्शन (१-२८) में महर्षि पतञ्जलि ने लिखा है 'प्रणव का जप और अर्थ बिचारने से अत्यधिक लाभ होता है।' महर्षि का आदेश है कि प्रणव का केवल जप ही पर्याप्त नहीं है वरन् जप के साथ उसका चिन्तन भी आवश्यक है। उससे चित्त की चंचलता नष्ट होती है। 'ॐ' में तीन अक्षर हैं—अ, उ, म। अकार से हिरण्यगर्भ, शंकर, तैजस आदि का अभिप्राय लिया जाता है। 'मकार' से ईश्वर प्राप्ति, प्रकृति आदि का बोध होता है। इसका स्थूल अर्थ इस तरह समझा जा सकता है—'अ' से सृष्टि की उत्पत्ति 'उ' से स्थिति और 'म' से प्रलय का अर्थ ध्वनित होता है। यह ॐ का स्वाभाविक अर्थ है क्योंकि 'अ' के उच्चारण से मुख खुल जाता है, 'उ' से वह विस्तृत होता है और 'म' से वह वन्द हो जाता है। प्रणवोपनिषद् के अनुसार 'अ' में ऋग्वेद, गार्हपत्य (अग्नि), पृथिवी व ब्रह्मा, 'उ' में यजुर्वेद, आकाश, दक्षिणाग्नि और देव श्रेष्ठ भगवान् विष्णु और 'म' में सामवेद, स्वर्ग आह्वानीय (अग्नि) परम देव शंकर स्थित हैं। 'ॐ' की जप साधना के साथ इस प्रकार उसका अर्थ चिन्तन करना योग दर्शन का अभिप्राय है।

संस्कारित साधना-स्थल:–

स्थान का चुनाव मन्त्र साधना का एक आवश्यक अङ्ग है। शास्त्रों में सिद्धि के जो साधन बताये गये हैं, वह किसी भी स्थान पर केवल जप की संख्या पूरी करने से हर अनुकूल परिणाम प्रस्तुत कर दें, यह

आवश्यक नहीं है। साधना के लिए एकाग्रता चाहिए और एकाग्रता की प्राप्ति के लिए एकान्त, शान्त, पवित्र और संस्कारित भूमि चाहिये। जिस स्थान में यह गुण हों वही स्थान साधना के लिये उपयुक्त माना जाता है।

शास्त्रों में इन स्थानों को अनुष्ठान के लिये विहित माना गया है—एकान्त, उद्यान, पवित्र वन, संगम, तीर्थ-गुहा सरिता तट, पुण्य क्षेत्र, सिद्धपीठ, विल्व वृक्ष, पर्वत की तराई, तुलसी कानन, गोशाला जिसमें बैल न हों, अपने घर के एकान्त स्थान में, जल में, पीपल या आँवले के नीचे, देवालय आदि।

उपरोक्त घोषणा का यह अर्थ नहीं है कि घर पर की गई साधना निकृष्ट होती है और उसका कोई विशेष लाभ नहीं होता। मुख्य सिद्धान्त तो यह है कि जहाँ चित्त की एकाग्रता प्राप्ति में सहायता मिलती है, वही स्थान जप के लिए उपयुक्त है। घर का साधना स्थल यदि एकान्त, शान्त और दिव्य वातावरण से ओत-प्रोत है और कभी-कभी वहाँ हवन होता रहता है तो उसी स्थान से अभीष्ट लाभ की आशा की जा सकती है। वहाँ पर परिवार के सदस्यों का आना जाना कम हो, कोलाहल कम हो ताकि साधना में बाधा न पड़े। निरन्तर साधना करते रहने पर वह स्थान भी संस्कारित होने लगता है और फिर कम समय में अधिक लाभ की सम्भावना हो सकती है। सिद्ध पीठ, पुण्य क्षेत्र और तीर्थ पर साधना करने पर इसलिए सिद्धि मिलती है क्योंकि उस भूमि पर सिद्ध साधकों ने लम्बे समय तक घोर तपश्चयाएँ की हैं, उनका प्रभाव वह भूमि ग्रहण किये रहती है। जिस भूमि पर जितनी अधिक साधना की जाती है, वहाँ पर उतनी ही शीघ्रता से सिद्धि मिलती है।

असंक्रामक आसन-

आसन उस वस्तु का बनाया जाता है जो असंक्रामक (नान-

कन्डक्टर) हो। इससे पार्थिव विद्युत् पृथ्वी में प्रवाहित नहीं हो सकती। बिजली वाले बिजली फिटिंग व मरम्मत करते हुए ऐसी वस्तुओं को माध्यम बनाते हैं। जो असंक्रामक हों जैसे-रेशम, मिट्टी-चीनी, रबड़ लकड़ी आदि। इसमें विद्युत दूसरी ओर प्रवाहित नहीं हो सकेगी। लोहा, पीतल आदि धातुएँ ऐसी हैं जिन्हें संक्रामक (कंडक्टर) की संज्ञा दी जाती है। यदि इन्हें माध्यम बनाया जाय तो विद्युत से हानि हो सकती है।

इसी सिद्धान्त को दृष्टि में रखते हुए कुश का आसन, मृगचर्म, व्याघ्र चर्म, ऊन का आसन, काष्ठ की चौकी और गोबर के चौके को पूजा-पाठ के कार्यों में प्रयुक्त किया जाता है क्योंकि वह असंक्रामक—नान-कन्डक्टर गुण से युक्त हैं और पृथ्वी और साधक में एक ऐसे माध्यम का काम देते हैं जिनसे शक्ति का प्रवाह नीचे की ओर न हो। इसके विपरीत वस्त्र और पत्थर के आसन वर्जित माने गये हैं क्योंकि यह दोनों संक्रामक (कन्डक्टर) हैं। इनसे पार्थिव विद्युत् प्रवाहित हो सकती है। पत्थर पर घण्टों उपासना के लिए बैठा जाये तो उसके कड़ेपन के कारण गुदा सम्बन्धी रोगों की सम्भावना भी हो सकती है।

दिशा--

मन्त्र जाप में दिशा का भी विशिष्ट स्थान है। अपनी इच्छा से किसी भी उद्देश्य की पूर्ति के लिए किसी दिशा में बैठकर वांछित लाभ की प्राप्ति करना कठिन है। हर प्रकार की साधना को अलग-अलग दिशाओं का निर्धारण किया गया है।

प्रातः कालीन सन्ध्या जप के लिए पूर्व की ओर मुख करने का विधान है। पूर्व देवताओं की दिशा मानी गई है। शतपथ ब्राह्मण (१।७।१।१३) में कहा है:—

"प्राची हि देवानां दिक्।"

'देवताओं की दिशा पूर्व ही है।"

सन्ध्या में पूर्व की ओर बैठने का प्रमुख कारण यह है कि सूर्य पूर्व की ओर से उदय होता है। सूर्य अग्नि और तेजस्विता का प्रतीक और प्राण शक्ति का महाभण्डार है, उसकी हर किरण में आरोग्य ओत-प्रोत है। इसलिये सूर्य को स्थावर जंगम की आत्मा कहा जाता है। सूर्य से प्राण शक्ति को आकर्षित करने के लिये आवश्यक है कि उसकी ओर ही मुख किया जाए। सूर्य शाम को पश्चिम की ओर चला जाता है। इसलिए सायंकालीन साधना पश्चिम की ओर मुख करके की जाती है। अपनी प्राण विद्युत को विश्व की महानतम प्राणविद्युत् के स्रोत सूर्य के अनुकूल प्रवाहित करने से साधना की सफलता में सुविधा रहती है। विपरीत धारा में चलने से कठिनाई स्वाभाविक है। ईसाई अपने गिरजाघरों के द्वार पूर्व की ओर ही रखते हैं। पारसी, बौद्ध और जैनियों की भी यही मान्यता है।

सायंकालीन सन्ध्या पश्चिम की ओर मुख करके होती है क्योंकि सूर्य पश्चिम में अस्त होता है। जिधर कार्य की दिशा होगी, उधर ही मुख करने का विधान है प्रातः पूर्व की ओर, सूर्य की ओर मुख करके साधना करने से जो लाभ प्राप्त होने चाहिए, वही लाभ सायं पश्चिम की ओर मुख करने से प्राप्त होना स्वाभाविक है।

उपवास--

उपवास का विधान विशेष प्रकार से आत्मिक उत्थान के लिए ही निर्धारित किया गया था क्योंकि उपवास काल में साधक की आत्मिक शक्तियाँ जागृत, चैतन्य व तीव्र होती हैं। यह एक प्रकार की तपश्चर्या है जिसमें सोई हुई शक्तियाँ क्रियाशील हो उठती हैं, विचारों में नवोत्थान आता है, विवेक बुद्धि का विकास होता है, विषयों और वासनाओं के प्रति विद्रोह खड़ा करने का साहस उत्पन्न होता है, एक क्रमबद्ध जीवत व्यतीत करने की प्रेरणा मिलती है, अपनी आत्मिक मलिनताओं के प्रति घृणा जाग उठती है और जिनके बन्धन से छुटकारा प्राप्त करने के लिए मन बद्ध-पक्षी की तरह छटपटाता है।

विषय भोगों की जकड़ से मुक्त होने की तीव्र इच्छा होना शुभ लक्षण माने जाते हैं। उपवासकाल में ऐसे ही अनुभव होते हैं।

उपवास मन को गीली मिट्टी की तरह बना देता है। गीलीमिट्टी से कुम्हार जैसे चाहे वर्तन बना सकता है। उपवास के साथ स्वाध्याय, मनन, चिन्तन, ध्यान आदि जो भी साधनायें की जाती हैं, उनकी अमिट छाप मन पर पड़ती है। उपवास की अग्नि मन को पिघला देती है, उस समय उसका जैसा भी आकार बनाना चाहें, बन सकता है। उपवास के दिन जो व्यक्ति अपनी सकाम साधना करते हैं तो उनकी इच्छा-पूर्ति होती है। सदाचार, ब्रह्मचर्य, संयम कामवासनाओं पर नियन्त्रण करना चाहें तो यह आशीर्वाद भी प्राप्त हो सकता है। ऋद्धि-सिद्धियों का भी यह मार्ग है। अपने आंतरिक शत्रु जो हमें दिन-रात घुन की तरह खाते रहते हैं और शारीरिक व आत्मिक दृष्टि से खोखला बना देते हैं, उन पर विजय प्राप्त करना भी सरल हो जाता है। उपवास शक्ति का भण्डार है।

यह अनुभव-सिद्ध तथ्य है कि उपवास के साथ की गई साधना शीघ्र फलदायक होती हैं। इन दिनों जो भी मनन, चिन्तन और विचार साधना की जाती है, उसकी एक अमिट छाप मानसिक क्षेत्र पर अंकित हो जाती है और साधक का व्यावहारिक जीवर उसी ओर प्रवाहित हो जाता है। प्राणायाम, ध्यान, धारणा, समाधि व मन्त्र सिद्धि में उपवास एक सहायक साधन है क्योंकि अन्य विभिन्न प्रकार के तपों की तरह उपवास भी एक प्रकार का तप है जिसकी अग्नि में जलकर मन पर जमे मल-विक्षेप धुलने लगते हैं। मन की पवित्रता और शुद्धता ही शक्ति और सिद्धि की ओर ले जाती है। अतः सिद्धि इच्छुक साधक उपवास की साधना को न भूलें।

संयम-

इन्द्रिय-निग्रह को ही संयम कहते हैं। संयम का अभिप्राय है-- शक्तियों के अपव्यय को रोकना, हमारे शरीर व मन में ईश्वर प्रदत्त

अपार शक्तियाँ भरी पड़ी हैं। यदि इनका उचित रीति से उपयोग किया जा सके तो हर व्यक्ति महानतम कार्यों का सम्पादन कर सकता है। शक्ति नाश का मार्ग है—यह इन्द्रियाँ यदि इनका असंयम बरता गया तो अपनी सारी सामर्थ्य की बर्बादी हो जायेगी और शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक व आत्मिक हर दृष्टि से व्यक्ति दिवालियाँ हो जायेगा। ऐसा व्यक्ति भौतिक व आध्यात्मिक किसी भी क्षेत्र में सफल नहीं हो सकता। इसके विपरीत जो संयम का पालन करता है, वह अपनी शक्तियों का संचय करता है। इस सञ्चय से वह अपनी शक्तियों के अटूट भण्डार को सुरक्षित रखता है और किसी भी अभीष्ट दिशा में आशाजनक सफलता प्राप्त कर सकता है।

मन्त्र साधना का उद्देश्य अपनी सुप्त शक्तियों को जागृत करके अभीष्ट कार्यों की पूर्ति करना है। शक्ति विकास के पथ पर चलने वाले साधक की दृष्टि चारों ओर से अपनी अमूल्य सम्पदा को सुरक्षित रखने की ओर ही रहती है। शक्ति तब बढ़ती है जब शक्ति का सहयोग मिलता है। यदि अपने शक्ति भण्डार में से शक्तियों का ह्रास होता रहे, तो शक्ति विकास साधना में बाधा पड़ती है। शक्ति - विकास की विशिष्ट साधना-अनुष्ठान में ऐसे नियमों के पालन का आदेश दिया गया है जिससे संयम का अभ्यास बढ़ता है। जो साधक इनका पूर्ण रूप से पालन कर पाता है, वह सिद्धि के मार्ग को प्रशस्त करने में सफल हो जाता है। उपेक्षा करने वाले की सिद्धि भी उपेक्षा करती है। मन्त्र साधक को स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि यदि वह मन्त्र साधना में सफलता प्राप्त करना चाहता है तो उसे इन्द्रियां पर नियन्त्रण रखना होगा। यदि इन्द्रियों को मनमानी करने दी गई तो मन्त्र सिद्धि में व्यवधान आना स्वाभाविक है। अतः मन्त्र साधना में सफलता के लिए संयम अनिवार्य है, जो इसका मेरुदण्ड है।

मौन—

मौन से शक्ति का ह्रास रुकता है, उसकी सुरक्षा रहती है।

शारीरिक अङ्गों में नई फुरती आती है, मानसिक शक्ति की वृद्धि होती है, बुद्धि का विकास होता है, आत्म बल बढ़ता है। यह सभी शक्तियां मनुष्य जीवन के विकास में सहायक व आवश्यक होती हैं। इनका अभाव जीवन की असफलता है और वृद्धि सफलता की सूचक है। जिस तरह बैटरी को चार्ज करके उसे पुनः काम के लिये बनाया जाता है, इसी तरह जब शरीर में विद्युत् कम होने लगती है तो उसे पुनः लाने के लिये मौन रूपी 'चार्ज' की आवश्यकता रहती है। अतः मौन हर प्राणी के लिए आवश्यक और अनिवार्य है। इस अस्त्र का प्रयोग अचूक और लाभदायक रहता है।

मौनव्रत मन्त्र साधना का एक आवश्यक अंग माना गया है। मौन रहना शक्ति सञ्चय की साधना है। उपवास, ब्रह्मचर्य, व्रत, अस्वाद व्रत आदि अनेकों ऐसे साधन हैं जिसका उपयोग मन्त्र उपासना काल में किया जाता है। उनके साथ-साथ मौनावलम्बन भी साधना की सफलता के लिए सहायक सिद्ध होता है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि बिना मौन रहने के मन्त्र सिद्धि दुर्लभ है परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता कि मौन के अभ्यास से शक्तियाँ सुरक्षित रहती हैं जो मन्त्र सिद्धि को सुलभ बनाती हैं। जो साधक इष्ट मन्त्र से शीघ्र सफलता प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें इस सहायक साधना का प्रयोग अवश्य करना चाहिये।

आहार-शुद्धि—

यह निश्चित सिद्धान्त है कि मनुष्य जैसा अन्न खाता है, वैसा ही उसका मन बनता है। सात्विक अन्न खाने से सात्विक व राजसिक, तामसिक अन्न ग्रहण करने से राजसिक व तामसिक मनोभूमि तैयार होती है। इसलिये विधान बनाया गया कि जो साधक अपने जीवन का निर्माण करना चाहते हैं, उन्हें सात्विक प्रकृति का व शुभ कर्मादि का अन्न ही खाना चाहिए क्योंकि दुःख, और बन्धन मुक्ति का यही कारण है, स्वस्थ मन में ही चिन्ता, निराशा, दुःख, कलह, क्लेश,

ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ आदि की दुर्भावनाएँ उपज सकती हैं। स्वस्थ मन इन वृत्तियों के लिए वन्जर भूमि सिद्ध होता है और इनके लिए आहार की आन्तरिक पवित्रता आवश्यक है।

शिव पार्वती सम्वाद में एक स्थान पर शिव ने कहा है—'जिनकी जिह्वा परान्न से जल गई है, जिनके हाथ प्रतिग्रह से जले हुए हैं और जिनका मन पर स्त्री चिन्तन से जलता रहता है, उन्हें भला मन्त्र सिद्धि कैसे प्राप्त हो सकती है।'

अतः मन्त्र साधना में सफलता प्राप्ति के लिए आहार शुद्धि को साधना का एक आवश्यक अङ्ग माना जाना चाहिये। यदि उसकी उपेक्षा की गई तो इसे साधना में एक व्यवधान समझना चाहिए।

ध्वनि-समूह को मन्त्र कहते हैं। ध्वनि का प्रभाव निश्चित रूप से होता है, यह वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर सिद्ध है। परन्तु उन विशिष्ट ध्वनियों का प्रयोग जिस माध्यम से किया जाता है, उनका भी सबल होना आवश्यक है। प्रयोग का विधि विधान भी ऐसा हो कि उसका निशाना लक्ष्य स्थल पर अचूक रहे। यह तभी सम्भव है जब मन्त्र शक्ति के विकसित व जाग्रत होने के आधार भूत तथ्यों की ओर ध्यान दिया जावेगा। अतः यह सहयोगी प्रक्रियाएँ मन्त्र सिद्धि में महत्व-पूर्ण भूमिका प्रदर्शित करती हैं।

+++

साधना के आवश्यक नियम

साधना की सिद्धि के लिए नियमों का पालन आवश्यक है। अतः उनकी जानकारी यहाँ दे रहे हैं—

१—शरीर की शुद्धि आवश्यक है। बाह्य शुद्धि स्नान द्वारा ही मानी जाती है। अतः स्नान करके ही साधना पर बैठना चाहिए।

अधिक सर्दी हो, ऐसा रोग हो जिसमें स्नान न किया जा सके या कोई विवशता हो तो हाथ-मुँह धोना या गीले कपड़े से शरीर पोंछना ही पर्याप्त समझना चाहिए।

२—शरीर पर कम से कम वस्त्र रखने चाहिये। सर्दी के मौसम में कम्बल का प्रयोग किया जा सकता है।

३—साधना का स्थान शान्त व सात्विक हो। वैसे तो सरिता तट, मन्दिर, बाग आदि ही एकान्त स्थान चुन लेना चाहिए जहाँ अन्य सदस्यों का अधिक आना न हो।

४—दिन भर पहने हुए वस्त्रों को पहन कर ही साधना नहीं करनी चाहिए।

५—साधना के लिये ऐसे आसन पर बैठना चाहिए जिसमें अधिक देर तक बैठने में कष्ट न हो। पालथी मारकर सीधे-साधे ढङ्ग से बैठना उपयुक्त रहता है।

६—मेरुदण्ड सदा सीधा हो ताकि सुषुम्ना में प्राण का प्रवाह सुविधा पूर्वक हो सके।

७—कुश के आसन पर बैठकर साधना करनी चाहिये। इसका प्रयोग सात्विक उपासना में चलता है। रजोगुणी उपासना में सूत का आसन और तमोगुणी उपासना में ऊन के आसन का विधान है बिना आसन बिछाए नग्न भूमि पर न बैठना चाहिए।

८—साधारणतः तुलसी की माला का प्रयोग होता है। सकाम साधना में चन्दन की माला और तमोगुणी साधना में रुद्राक्ष की माला प्रयुक्त होती है।

९—प्रातः काल का समय श्रेष्ठ माना जाता है। ब्रह्ममुहूर्त में उठकर साधना करनी चाहिए। कोई विवशता हो तो सूर्यास्त होने के एक घण्टे बाद तक की जा सकती है।

१०—साधना नियमित और निश्चित समय पर होनी चाहिये।

११–जप माला से करना चाहिए। मन्त्र शक्ति का अनुभव करने के लिये कम से कम ११ माला नित्य करनी ही चाहिये। अपनी सुविधा के अनुसार १, ३, ५, ७, ६ माला का जप किया जा सकता है।

१२—दिशा का विचार आवश्यक है। प्रातः काल पूर्व की ओर और सायंकाल पश्चिम की ओर मुख करके बैठना चाहिये। विशिष्ट साधनाओं में साधना के अनुसार दिशा का विचार करना चाहिए।

१३—सामूहिक साधना में या जहाँ और व्यक्तियों का आना जाना हो माला वस्त्र से ढक लेनी चाहिये या गोमुखी में रखनी चाहिये। एकान्त स्थान होने पर इसे खुले रूप में जपा जा सकता है।

१४—जप इस तरह से करना चाहिये कि कण्ठ से ध्वनि तो होती रहे और होंठ भी हिलते रहें परन्तु पास में बैठा व्यक्ति उसे सुन न सके।

१५–एक माला पूरी होने पर सुमेरु का उल्लंघन नहीं किया जाता बल्कि उसे मस्तक तथा नेत्रों से स्पर्श करके पीछे की तरफ उल्टा कर पुनः जप आरम्भ कर दिया जाता है।

१६–मन्त्र साधना में और लोगों को प्रेरित करना ही परमार्थ का कार्य है परन्तु अपनी साधना और अनुभवों से दूसरों को परिचित कराना न आवश्यक है और न अभीष्ट।

१७—साधारणतः पूजा में पुष्पों का प्रयोग होता है। इनके अभाव में चावलों का प्रयोग किया जा सकता है।

१८–जैसा अन्न होता है, वैसा ही मन बनता है। इसलिये तमोगुणी और रजोगुणी आहार से यथा सम्भव बचना चाहिए और सात्विक आहार करना चाहिए।

१९—व्यवहार जितना सात्विक हो, उत्तम है। झूठ, छल, कपट, निन्दा, वेईमानी, भ्रष्टाचार आदि से बचना चाहिए।

२०—कामोत्तेजक चलचित्रों और उपन्यासों से बचें। धार्मिक व अन्य प्रेरक पुस्तकों का अध्ययन करना चाहिए। अध्ययन में विशेष सावधानी बरतनी चाहिये। अध्ययन के साथ मन चिन्तन भी होना चाहिये।

२१—पूजा से बचे पदार्थों को जहाँ तहाँ नहीं फेंकना चाहिये। इन्हें किसी तीर्थ, नदी, मन्दिर आदि में विसर्जित करना चाहिये। चावल चिड़ियों को खिला देने चाहिये। जल से सूर्य को अर्घ्य दान देना चाहिए। नैवेद्य का प्रसाद के रूप में वितरण कर देना चाहिए।

२२—किसी अनुभवी गुरु के निर्देशन में साधना करनी चाहिए जो साधना में आने वाले विघ्नों और बाधाओं को दूर करने की क्षमता रखते हों।

२३—सफर में या रोग की स्थिति में जब विधि-विधान से जप करना सम्भव न हो तो मानसिक जप चलते-फिरते अथवा बिस्तर पर भी किया जा सकता है।

२४—वैसे तो साधना से उठना उपयुक्त नहीं माना जाता परन्तु जब मल मूत्र त्याग या और किसी विवशता से उठना पड़े तो हाथ-मुँह धोकर पुनः साधना पर बैठ जाना चाहिये और एक माला प्रायश्चित्त स्वरूप अतिरिक्त जपनी चाहिए।

२५—वैसे तो प्रतिदिन की नियमित साधना ही श्रेष्ठ स्वीकार की गई है परन्तु कोई बाधा उपस्थित हो जाए और साधना न हो सके तो दूसरे दिन एक माला प्रायश्चित्त स्वरूप जपनी चाहिए।

२६—जन्म या मृत्यु के सूतक होने पर विधि विधान से की गई साधना का निषेध है। इस काल में मानसिक जप किया जा सकता है।

२७—इष्ट देव के प्रति अटूट श्रद्धा और विश्वास होना अनिवार्य है। यही साधना की नींव है।

२८—साधना में अनेकों विघ्न आते हैं। उनसे निराश नहीं होना चाहिए। शीघ्र लाभ प्रतीत न होने पर साधना पर अविश्वास नहीं करना चाहिये वरन् अपनी साधना की कमियों का गम्भीरतापूर्वक निरीक्षण करना चाहिये और उन्हें दूर करके पुनः साधना में लग जाना चाहिए। साधना में दृढ़ता पूर्वक लगे रहना आवश्यक है।

२९—नित्य प्रति निर्धारित समय पर हीं साधना करनी चाहिये। समय बदलना नहीं चाहिये।

३०— मन के चंचल स्वभाव से वह इधर-उधर घूमता रहता है, उसे बार-बार इष्टदेव के चित्र पर जमाने का अभ्यास करना चाहिए।

उपरोक्त नियमों का पालन करने पर ही साधना में सफलता मिलती है।

॥ ओंकार सिद्धि समाप्त ॥

—+—

उत्कृष्ट व मौलिक अद्वितीय ग्रन्थ

१. शिव सिद्धि	=	१०)
२. भैरव सिद्धि	=	१०)
३. दुर्गा सिद्धि	=	१४)
४. मन्त्र शक्ति से रोग निवारण	=	१६)
५. मन्त्र शक्ति से विपत्ति निवारण	=	१६)
६. मन्त्र शक्ति से कामना सिद्धि	=	१६)
७. मन्त्र शक्ति के अद्भुत चमत्कार	=	१२)
८. ओंकार सिद्धि	=	१५)
९. तन्त्र महासाधना	=	२६)
१०. मानस मन्त्र सिद्धि	=	१०)
११. शारदा तिलक	=	२६)
१२. लक्ष्मी सिद्धि	=	१२)
१३. शाबर मन्त्र सिद्धि	=	११)
१४. गणेश सिद्धि	=	१६)
१५. विष्णु रहस्य	=	१०)
१६. शिव रहस्य	=	१४)
१७. हस्तरेखा महाविज्ञान	=	२५)
१८. ज्ञानेश्वरी भगवद्गीता	=	३२)
१९. प्राणायाम के असाधारण प्रयोग	=	१६)
२०. दास बोध	=	२२)
२१. षोडश संस्कार विधि	=	१८)
२२. दृष्टान्त सरित सागर	=	२५)
२३. हनुमत सिद्धि	=	१६)
२४. बगलामुख सिद्धि	=	१५)
२५. चिन्तायें कैसे दूर हों ?	=	११)
२६. काली सिद्धि	=	१४)
२७. सुन्दर कैसे बनें ?	=	११)

प्रकाशक-संस्कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब

बरेली-२४३००१ (उ० प्र०)

श्रेष्ठतम मन्त्र साहित्य

मन्त्र–तन्त्र साहित्य

- शक्ति से राग निवारण
- शक्ति से विपत्ति निवारण
- शक्ति से कामना सिद्धि
- शक्ति के अद्भुत चमत्कार
- सिद्धि
- सिद्धि
- सिद्धि
- मन्त्र सिद्धि
- र मन्त्र सिद्धि
- श सिद्धि
- त सिद्धि
- ामुखी सिद्धि
- ी सिद्धि
- ृत्युंजय साधना (भा. टी.)
- जय सिद्धि
- महाविज्ञान २ खण्ड
- विज्ञान
- रहस्य
- ा तिलक
- महासिद्धि
- ी सिद्धि
- त्रेय तन्त्र (भा. टी.)
- ा तन्त्र (भा. टी.)
- ामल तन्त्र (भा. टी.)

गायत्री व ओंकार साहित्य

- गायत्री पुराण (भाषा)
- गायत्री रहस्य
- गायत्री महाविद्या
- गायत्री सिद्धि
- गायत्री तन्त्र
- महामन्त्र–गायत्री
- गायत्री साधना के चमत्कार
- सरल गायत्री साधना
- गायत्री रत्नावली
- स्त्रियाँ गायत्री उपासना क्यों करें
- गायत्री सहस्त्रनाम
- ओंकार सिद्धि
- हिन्दू एकता का प्रतीक–ओंकार
- ओंकार का अर्थ चिन्तन
- ओंकार है स्वर्ग का द्वार
- ओंकार शक्ति के चमत्कार
- भगवान शिव और ओंकार साधना
- भगवान राम और ओंकार साधना
- भगवान कृष्ण और ओंकार साधना
- राष्ट्रीय एकता का प्रतीक ओंकार
- श्रेष्ठतम उपासना – ओंकार
- प्राचीनतम गुरुमंत्र–ओंकार
- विश्व धर्म–ओंकार
- ओंकार साधना का अधिकार
- त्रिदेवों का प्रतीक–ओंकार
- ओंकार और विद्यार्थियों की समस्यायें
- ओंकार हवन विधि
- ओंकार लेखन साधना

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब, (वेदनगर) बरेली–२४३ ००३ (उ. प्र.)

फोन :(0581) 474242